अयोध्या में प्रभु श्रीराम के बाल-रूप की प्राण-प्रतिष्ठा

(22 जनवरी, 2024)

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

राम हमारी आत्मा हैं, हमारे प्राणतत्व हैं, जो हमेशा से हमें सत्-कार्य करने की प्रेरणात्मक ऊर्जा प्रदान करते रहे हैं, और करते रहेंगे।... राम स्वयं- राम की महिमा से अभिभूत हुए हैं और महिमामंडित भी। किन्तु यह भी जानना चाहिए कि दशरथ पुत्र राम से बहुत पहले 'राम नाम के चिंतनधारा' की एक महान साधनात्मक परम्परा रही है। भगवान शिव भी इसी राम-नाम के परम भक्त रहे हैं, और हैं। कबीर आदि संतों में भी- राम के इसी भाव का गुणगान है। तुलसी के राम भी- इसी राम-नाम के मूल स्वरूप हैं।

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥

- डॉ. सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर, उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

आलोचन दृष्टि वर्ष-9 अंक-35 जनवरी - मार्च, 2024 ISSN : 2455-4219

विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 09	अंक : 35	जनवरी - मार्च, 2024
Year - 09	Volume - 35	January - March, 2024

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष : 09 अंक : 35 जनवरी - मार्च, 2024
Year - 09 Volume - 35 January - March, 2024

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 09	अंक - 35	जनवरी-मार्च, 2024
Year - 09	**Volume - 35**	**January-March, 2024**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** चंद्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा (बिहार)।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

छठवें दशक की एक महत्त्वपूर्ण घटना है, खासतौर पर साहित्य, समाज और संस्कृति के लिए विशेष रूप से। घटना ये है कि सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' और भारत के प्रथम एवं पूर्व प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू– दोनों संसद से निकलकर सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे। तभी अचानक पं. नेहरू के पैर लड़खड़ा जाते हैं और हट्टे–कट्टे तन–मन से बलिष्ट दिनकर जी उन्हें थाम लेते हैं। इस तरह पं. नेहरू गिरने से बच जाते हैं। अस्तु, धन्यवाद देते हुए उन्होंने दिनकर जी से कहा कि– आप मुझे पकड़ न लेते तो मैं लड़खड़ाकर गिर जाता। तब दिनकर जी ने जवाब देते हुए कहा कि– **जब–जब राजनीति लड़खड़ाती है, साहित्य ही उसे थामता है।**

इस बात को जब मैं आज के संदर्भ में देखता हूँ तो कई बार मुझे कबीर की उक्ति– **अंधा अंधे ठेलिया**.... की याद आती है। जो साहित्य कभी लड़खड़ाती हुई राजनीति को संभालने का काम करता था, वही साहित्य स्वयं लड़खड़ाती हुई राजनीति के चक्रव्यूह में फँसना हुआ– लड़खड़ाता जा रहा है। वह अब ऐसे लड़खड़ा गया कि केवल राजनीति का पिछलग्गू बन गया। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए चापलूसी की हद तक उतर गया है। थोड़ा–सा इनाम पाने के लिए सिर्फ हाँ–हजूरी की हद तक गिर गया है। कई बार तो ऐसा भी लगता है कि वह **खींसे–निपोर** रहा है। तब यह प्रश्न बनता है कि– यह साहित्य सच्चे अर्थ में साहित्य है क्या! जो कभी **सुरसरि सम सब कहँ हित होई** की तरह था, वह व्यक्तिवादी स्वार्थ का परम अनुयायी कैसे बन गया! साहित्य जो आदर्श, नैतिकता एवं मानवता की छवि गढ़ते हुए मानसिक–दृष्टि से लोगों को दृढ़ एवं पवित्र बनाता था, वह अब यथार्थ के नाम पर मन में कलुषता के तमाम बीज–भाव बोता हुआ– नजर आता है। जब साहित्य का ऐसा हाल हो गया है तो समाज और संस्कृति के विषय में क्या कहा जाय! राजनीति और साहित्य गुरू–चेला की तरह एक–दूसरे को बस ठेलते हुए नजर आ रहे हैं। यह एक पतन की स्थिति है, जिससे बचने के लिए अब हमें कोशिश करनी चाहिए।

इधर 22 जनवरी, 2024 के दिन एक बड़ी उपलब्धि दिखाई देती है– अयोध्या में राम मंदिर की स्थापना। इसने निश्चित रूप से पूरे भारत में स्वप्निल–मानवीय–आकांक्षा की ओर बढ़ने का– एक राजमार्ग तैयार किया है। बस, राम के मूल्यों को आत्मसात करते हुए आगे बढ़ने की जरूरत है।

इस बीच राम को लेकर सैकड़ों लेख, शोध–लेख– तमाम पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। हर एक घर में राम की तस्वीरे भेजने की कोशिश हुई। हर एक गली–चौराहे में राम–नाम के झंडे लगाये गये। सप्ताह भर, राम मंदिर की स्थापना के अतिरिक्त अन्य सभी बातें एवं खबरें समाचार चैनलों से दरकिनार कर दी गई।...

राम हमारी आत्मा हैं, हमारे प्राणतत्व हैं, जो हमेशा से हमें सत्–कार्य करने की प्रेरणात्मक ऊर्जा प्रदान करते रहे हैं, और करते रहेंगे।... राम स्वयं– राम की महिमा से अभिभूत हुए हैं और महिमामंडित भी। किन्तु यह भी जानना चाहिए कि दशरथ पुत्र राम से बहुत पहले **'राम–नाम के चिंतनधारा'** की एक महान साधनात्मक परम्परा रही है। भगवान शिव भी इसी राम–नाम के परम भक्त रहे हैं, और हैं। कबीर आदि संतों में भी– राम के इसी भाव का गुणगान है। तुलसी के राम भी– इसी राम–नाम के मूल स्वरूप हैं। जो अकथ कहानी प्रेम के रूप में भी– कई जगह वर्णित हैं। जिनके विषय में प्रायः यह कहा ही जाता है कि–

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी।

तब राम की यह मूर्ति हमारे भाव का प्रतिबिंबन तो बन सकती है, आलंबन तो बन सकती है, लेकिन राम नाम की वह छवि इसमें नहीं है, जो हमारे नित्य, पवित्र, कर्मगत उपासना से जुड़ी हुई परम्परा की

द्योतक रही है, जो निस्वार्थ भावना से फलित भी होती रही है, और होती है, जो कस्तूरी की तरह हमारे अंदर ही समाहित है, जिसको किसी अन्य जगह ढूंढ़ा तो जा सकता है, किन्तु पाया नहीं जा सकता, सिर्फ स्वयं में महसूस अवश्य किया जा सकता है। इसी लिए मैं इसे उपलब्धि का आधार तो मानता हूँ, लेकिन उपलब्धि कदापि नहीं।

विद्याश्री न्यास, वाराणसी की ओर से हिंदी साहित्य के उद्‌भव और विकास को लेकर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी का आयोजन– 13 से 15 जनवरी 2024 के बीच हुआ। इस संगोष्ठी में देश भर के हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान सहभागिता करते हैं और अपने महनीय विचारों से हमें अवगत कराते हैं। इस संगोष्ठी की मुख्य विशेषता यह रही कि जिन बातों को साहित्य में विचारणीय रूप से छोड़ दिया गया है, उन वैचारिक–गुत्थियों को सुलझाने का काम– इसमें हुआ, जिसके लिए विद्याश्री न्यास के सचिव दादाजी (डॉ. दयानिधि मिश्र) को मैं सादर आभार व्यक्त करते हुए– प्रणाम निवेदित करता हूँ, जिन्होंने बुद्धिजीवियों के लिए साहित्य एवं साहित्य के इतिहास को देखने की– एक नयी दृष्टि प्रदान की।...

पत्रिका निकालना भी, एक कठिन धर्म का निर्वहन है। इस धर्म को निभाते–निभाते **आलोचन दृष्टि** पत्रिका ने अपने 8 वर्ष पूरे करके 9वें वर्ष में प्रवेश किया है, और अपने वैचारिक 35 सोपान भी पूरे कर लिए हैं। इसके लिए **आलोचन दृष्टि** के सक्रिय **संपादक–मंडल** और **संरक्षक एवं सलाहकार मंडल** का– मैं विशेष रूप से आभार मानता हूँ। मैं उनके योगदान पर अनुगृहीत भी हूँ, किंतु जो लोग **संपादक–मंडल** और **संरक्षक एवं सलाहकार मंडल** में रहते हुए भी पत्रिका के लिए समय नहीं निकाल पाये हैं, उन्हें **आलोचन दृष्टि** पत्रिका से कार्यमुक्त किया जाता है। इस तरह से एक थोड़े–बहुत परिवर्तन के बाद एक नए तरह का **संपादक–मंडल** और **संरक्षक एवं सलाहकार मंडल** का निर्धारण हुआ है। यह निर्धारण तीन वर्षों के लिए मान्य रहेगा। इसके बाद इसके जुड़े हुए सदस्यों के योगदान को लेकर पुनः निरीक्षण किया जायेगा, जिसके आधार पर भविष्य में बदलाव अपेक्षित होंगे।

उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 22 शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 18 (अठारह) शोध–पत्र एवं 1(एक) समीक्षात्मक लेख, संस्कृत–भाषा का– 1 (एक) और अंग्रेजी–भाषा के 2 (दो) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अंक में **कमलाकांत त्रिपाठी** जी का **'तुलसी का योगदान'** (भाग : 6 से लेकर 10 तक) प्रकाशित हो रहा है। इसके पहले के अंक में– भाग : 1 से लेकर भाग 5 तक, प्रकाशित हो चुका है। यह लेख स्वाधीन–बौद्धिक–चिंतन के धरातल से तुलसी का मूल्यांकन करता है। डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी जी का लेख **कट्टरतावाद** चिंतन की सूक्ष्म दृष्टि का रेखांकन करता है, सोचने–समझने की नवीन एवं महत्त्वपूर्ण शक्ति विकसित करता है।

अंत में, इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि–परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, मैं कृतज्ञ हूँ। शेष....

31 मार्च, 2024।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. कट्टरतावाद 1-2
डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

2. तुलसी का योगदान (भाग : 6-10) 3-22
कमलाकांत त्रिपाठी

3. वैश्विक परिवेश की सामाजिक-संस्कृति 23-30
डॉ. सुनील कुमार मानस

4. अलका सरावगी के कथा साहित्य में धार्मिक मान्यताओं से संघर्ष 31-34
डॉ. मीनाक्षी गुप्ता

5. राजस्थान की समकालीन कविता की विकास-यात्रा 35-42
डॉ. प्रणु शुक्ला

6. प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री-चिंतन 43-47
डॉ. शशि पाण्डे

7. फोर्ट विलियम कॉलेज के साहित्यिक कार्य और भाषा-नीति 48-53
डॉ. रवीश कुमार

8. अज्ञेय की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर 54-58
डॉ. ओम प्रकाश प्रजापति एवं छविन्दर कुमार

9. संत-काव्य में शून्य चर्चा 59-61
शत्रुहन प्रसाद

10. हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी-स्त्री और पर्यावरणीय चेतना (विशेष संदर्भ...) 62-67
देवाशीष कुमार

11. गांधीवादी मूल्यबोध के आलोक में 'रंगभूमि' के नायक सूरदास का मूल्यांकन 68-72
कुमार गौरव मिश्रा

12. मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों का प्रत्यक्षण 73-80
डॉ. हरीश पाण्डेय

13. वैदिक काल से पूर्व मध्यकाल तक भारत में जाति व्यवस्था 81-84
सौरभ सिंह

14.	**विकास के दौर में बदलते गाँव** *डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चाडसणिया*	85-88
15.	**भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास का मूल्यांकन** *जीवण सिहं किशनावत*	89-96
16.	**मनरेगा की क्रियान्वयन की स्थिति का अध्ययन** *ओम प्रकाश सिंह राजपूत एवं डॉ. स्नेह कुमार मेश्राम*	97-103
17.	**आरम्भिक उपन्यासों में स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति का विवेचन** *रन्जू बिन्द*	104-106
18.	**डायस्पोरिक समुदायों की गतिकी के मध्य धर्म : सैद्धांतिक सर्वेक्षण** *डॉ. मोनिका वर्मा*	107-111
19.	**भट्टोजिदीक्षितनागेशभट्टाभिमतकारकलक्षणसमीक्षा** *डॉ. नीरजकुमारभार्गवः*	112-117
20.	**A Study of Pandava Kingdom of Mekala** *Dr. Heera Singh Gond*	118-121
21.	**Climate ChangeA nd Gender : Understanding the Vulnerabilities of...** *Jyotasana*	122-127
22.	**'घर को याद किया दिनभर' की मर्म-स्पर्शिता (पुस्तक-समीक्षा)** *डॉ. सुनील कुमार मानस*	128-128

ഇ★ര

कट्टरतावाद

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी*

कट्टरतावाद को लेकर एक बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है, लेकिन यदि एक वाक्य में ही कहना हो तो वह वाक्य होगा– "जो मैं समझ रहा हूँ और जितना समझ रहा हूँ एक मात्र वही सत्य है और सत्य उतना ही है, इसके अलावा सब झूठ है, बकवास है। "अथवा" मैं और केवल मैं ही सच हूँ। "वास्तव में कट्टरता अहंकार केंद्रित होती है, उसमें यह भावना बलवती हो जाती है कि सृष्टि के केंद्र में मैं ही हूँ। यह भावना अंधविश्वास का रूप ले लेती है। अपने से भिन्न मत के प्रति वह हिंसा की सीमा तक असहिष्णु हो जाता है।

इंटरमीडिएट में इतिहास की कक्षा में सुना था कि गजनवी भारत से धनदौलत के साथ ग्रन्थों को भी ले गया! इतने ग्रन्थ थे कि गजनी में एक बडा पुस्तकालय बना दिया। उसने बडे गर्व से यह सोचा कि खलीफा को बुला कर दिखाऊं, वह बहुत खुश होगा! खलीफा को बुलाया, खलीफा ने पूरा पुस्तकालय देखा लेकिन कुछ भी नहीं बोला। जब चलने लगा तो गजनवी ने ही पूछा कि– खलीफा! बताया नहीं कि पुस्तकालय आपको कैसा लगा? खलीफा बोला कि मैं तो खुद ही आपसे पूछने वाला था कि इनमें क्या लिखा है? ये पुस्तकें कुरान के खिलाफ हैं या कुरान के मुआफिक हैं? गजनवी ने कहा कि कुछ कुरान के खिलाफ भी हो सकती हैं और कुछ मुआफिक भी हो सकती हैं। खलीफा ने कहा कि जो कुरान के खिलाफ हैं, उन्हें जला देना चाहिये। जो मुआफिक हैं, उन्हें चाहो तो रखो वरना वे जगह ही तो घेरती हैं! हमारे पास कुरान के रूप में सबसे बडा ज्ञान मौजूद ही है, हमें अब कौन से ज्ञान की दरकार है? खलीफा आज भी मौजूद है।

वे कुछ लोग खलीफा ही तो हैं, जो समझते हैं कि सबसे बडा सत्य सिर्फ और सिर्फ उनके ही पास है, वे हिन्दू हों, या मुसलमान, या अन्य किसी भी दल या संगठन के प्रवक्ता हों! उन खलीफा लोगों की एक सीमा है, वे नहीं समझ सकते कि सत्य व्यापक है। वह किसी एक परिधि में समा ही नहीं सकता! यह एक तरह का यूटोपिया होता है– मन की एक अवस्था। जिसमें मनुष्य कल्पना करता है कि संसार में सभी लोग मेरी तरह से ही सोचने लग जांय तो संसार में सुख शांति हो सकती है। सारे लोग एक ही धर्म के अनुयायी हो जांय, मेरा वाला धर्मग्रंथ तो ईश्वर की वाणी है। वही सच है। राजनैतिक विचारधारा वाले भी अपने–अपने परिवेश वाले विचारकों, दार्शनिकों के विचार को परम सत्य मान कर इसी प्रकार सोचते हैं। सारे लोग इस या उस दार्शनिक के कहे अनुसार चलें तो दुनियाँ बदल जाय या वर्गविहीन समाज बन जाय!

वास्तव में यह उस विचार–समूह का यूटोपिया होता है। इस यूटोपिया के लिये सेना बनायी जाती हैं, संगठन बनाये जाते हैं, ब्रेनवाश किया जाता है, बालमन को दीक्षित किया जाता है, आस्था की प्रतिज्ञा कराई जाती है, दिनरात प्रचार किया जाता है। मन की यह अवस्था ममताबोध का ही रूप है। इस संबंध में ध्यान देने योग्य है कि महावीरवर्धमान ने अनेकांत का सत्य जाना था– स्याद्वाद। यह ही नहीं, यह भी।

व्यापक सत्य तो विराट और असीम है। हम उसे अपने दायरे में बांधने का प्रयास करते हैं। जब समाज को अनेक कारणों से खंड–खंड किया जाता है,या दायरे बनाये जाते हैं, तब वह अपनी–अपनी में सोचता है। मैं और मेरा उसके चिन्तन पर हावी हो जाता है। समष्टि का भाव सो जाता है। वह भूल जाता है कि मैं सर्व के अन्तर्गत हूँ, मैं विश्व में हूँ, सर्व या विश्व मेरे अन्तर्गत नहीं है।

हम गजान्ध–न्याय से प्रायः खंडसत्य को पूर्णसत्य मान लेते हैं। हाथी आया अन्धों के गांव में किसी ने सूंड को टटोला किसी ने पूंछ को। किसी ने पेट का नाप लिया। किसी ने खंभ की तरह के पैर

***प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 1828, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, 13–17, पानीपत, हरियाणा– 132103।**

टटोले। हाथी पर बहस होने लगी कि किसी ने कहा कि वह खंभा होता है, किसी ने सूंड जैसा बतलाया। वे सभी ठीक तो थे किन्तु वे खण्ड सत्य को संपूर्ण सत्य मान बैठे थे।

कट्टरतावाद कहें या जडता कहें, रूढिवाद हो या फिर फंडामेंटलिज्म हो! संसार में कहीं न कहीं सभी उसका सामना कर रहे हैं। कट्टरतावाद की सही–सही पहचान हो, सवाल यह है कि समष्टिचित्त में कट्टरता का जन्म कैसे होता है? क्या इसका कारण–तत्व देश–काल है? यदि कट्टरता बुरी है, तो वह धर्म–पन्थ की हो या किसी भी विचारधारा की हो किसी भी धर्मपन्थ या विचार की कसौटी तो अन्ततः मनुष्य का जीवन और विराट प्रकृति ही है, कोई किताब नहीं। प्रत्येक किताब का अपना देशकाल होता है, और देशकाल नित–नित परिवर्तनीय है।

यहाँ यह ध्यान रहे कि मनुष्य की मूलवृत्तियां वही हैं, परिवेश बदलता है और इस बदलाव में इन मूलवृत्तियों की बडी भूमिका है। हजार साल से भी पहले कालिदास ने कहा था– **पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यं सन्तःपरीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः।**

कोई पुरानी होने के कारण ही अभिनन्दनीय नहीं हो जाती और नये होने के कारण निन्दनीय भी नहीं हो जाती। विवेकीजन जीवन में उसकी परीक्षा करके उसे स्वीकार करते हैं किन्तु मूढ़– परायी बुद्धि–विश्वास (भेडचाल) से चलता है। भाव, विचार और विश्वास– ये तीनों ही मनुष्य के मन–मस्तिष्क की ऊर्जा अथवा शक्तियाँ और गतियाँ हैं!

ये तीन तो हैं लेकिन ये एक–दूसरे में कब और कैसे समा जाती हैं, कब भाव– विचार बन जाता है और कब विचार– भाव का रूप ग्रहण कर लेता है, यह संश्लिष्ट–प्रक्रिया बड़ी जटिल है! अन्तःकरण में भाव रूपान्तरित होकर विचार बनता है, दूसरी ओर विचार क्रियावस्था से पूर्व भाव के रूप में संक्रमण करता है। जीवन में अनेक प्रकार की (परिवेशगत या शारीरिक–मानसिक) व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याएँ आती हैं! व्यष्टि और समष्टिगत विचार समस्या के समाधान की खोज में कल्पना के पंख खोल कर असीम संभावनाओं के आकाश में निकल पड़ता है।

देशकाल में ही नहीं, किसी सीमा तक देशकाल का अतिक्रम करके भी। विचार जीवन की धरती पर उतरता है तब वह भाव का रूप ग्रहण करता है! जब तक कोई विचार भाव रूप में परिणत नहीं होता, तब तक वह निष्क्रिय ही रहता है। विचार का महत्व है किन्तु भाव के बिना वह निस्तेज होता है! विचार और भाव दोनों ही जब एक ताल और सम पर मिलते हैं, तभी आंदोलन खड़े होते हैं और तभी क्रांतियां होती हैं। विचार भाव रूप में परिणत होता है, भाव के प्रति यह दृढ़ता धीरे–धीरे विश्वास का रूप ग्रहण करती है! इस अवस्था में आकर विचार क्रमशः भाव और विश्वास के रूप में परिणत होता चला जाता है! लेकिन परिस्थिति तो परिवर्तनशील है! एक देशकाल का विचार परिवर्तन की निरन्तर प्रक्रिया में विश्वास बन गया! परिवेश में परिवर्तन हो जाने के बावजूद विश्वास बना रहता है!

विश्वास के कारण मनुष्य उस विचार को– विचारक को और विचार की उस पोथी को– पूजने लगता है! लेकिन जीवन और प्रकृति तो गतिशील और परिवर्तनशील हैं, परिवेश में निरन्तर परिवर्तन हो जाने के कारण एक स्थिति ऐसी आती है, जब विश्वास तो वहीं रह जाता है और विचार किसी अन्य नयी परिवेशगत या शारीरिक–मानसिक समस्या के समाधान की खोज में चला जाता है! तब विचार और विश्वास का वह संबंध विच्छिन्न हो जाता है! वह विश्वास न जाने कब आग्रह बन जाता है, कट्टरता बन जाता है! उग्रवाद बन जाता है!

★

तुलसी का योगदान

कमलाकांत त्रिपाठी*

भाग- छह (क्रमशः)

वाल्मीकीय रामायण का मूल स्वरूप-घ

(बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में अवांतर प्रसंग)

वाल्मीकीय रामायण में बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त होने के मुद्दे पर दो विशेषज्ञ विद्वानों का मत हम देख चुके हैं। जैसा कि पहले कहा गया, किसी को खाँटी जिज्ञासा हो और वह थोड़ा श्रम और समय व्यय करने को तैयार हो तो इस मुद्दे पर विशेषज्ञों की शरण में जाने की ज़रूरत ही नहीं। थोड़ा समय देकर इन दोनों काण्डों की विषय–वस्तु का हम स्वयं जाइज़ा ले सकते हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या, पढ़े–लिखे को फ़ारसी क्या! इन दोनों काण्डों में दो तरह की सामग्री है–

1. अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की रामयात्रा की कथा में आ चुके कुछ प्रसंगों की पुनरावृत्ति जिनमें इन प्रसंगों के भिन्न, असंगत और अयुक्तिपूर्ण पाठ जोड़ दिये गये हैं।
2. रामकथा से असम्बद्ध और परस्पर भी असम्बद्ध फुटकर पौराणिक आख्यान।

रामकथा से असम्बद्ध पौराणिक आख्यान

बालकाण्ड :- सर्ग–1 से सर्ग–4ः (पहले विवेचित) वाल्मीकि आख्यान। सर्ग–8–14ः दशरथ द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प, काश्यप–पौत्र एवं विभांडक–पुत्र मुनि ऋष्यश्रृंग की पौराणिक कथा, राजा रोमपाद के राज्य अंगदेश में दुर्भिक्ष, उससे मुक्ति के लिए अंग–नरेश द्वारा दृढ़व्रती मुनिकुमार ऋष्यश्रृंग (जिन्होंने कभी किसी स्त्री का दर्शन नहीं किया था) को वेश्याओं की सहायता से अंगदेश लाया जाना और उनके साथ रोमपाद की पुत्री शांता का विवाह। सुमंत्र द्वारा दशरथ को एक भविष्यवाची पौराणिक कथा सुनाये जाने पर दशरथ का अपनी रानियों और मंत्रियों के साथ अंगदेश की यात्रा। रोमपाद से उनकी पुत्री शांता तथा उसके पति ऋष्यश्रृंग को अयोध्या भेजने का निवेदन। तदनुरूप ऋष्यश्रृंग का सपत्नीक अयोध्या आगमन। ऋष्यश्रृंग के निर्देशन में दशरथ द्वारा अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन। (इसके बाद ही 15वें सर्ग में ऋष्यश्रृंग की सलाह और उनके निर्देशन में पुत्र–प्राप्ति के लिये दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि अनुष्ठान के सम्पादन का प्रसंग आता है जिसके अग्निकुंड से प्रकट हुआ पुरुष वह खीर प्रदान करता है जिसे खाकर दशरथ की तीनों रानियाँ गर्भ धारण करती हैं, वह रामकथा का अंश ज़रूर है किंतु राम–यात्रा का नहीं।)

सर्ग–32 : ब्रह्मापुत्र कुश के चार पुत्रों– कुशाम्ब (कौशाम्बी नगर के संस्थापक), कुशनाभ, असूर्तरजस और वसु––का आख्यान, कुशनाभ की असाधारण रूप–लावण्य–सम्पन्न सौ युवा पुत्रियों पर मोहित वायुदेव द्वारा उनसे पत्नी बनने का प्रस्ताव, जिसे अस्वीकार करने पर कुपित वायुदेव द्वारा उनमें प्रवेशकर उन्हें कुब्जा (कुबड़ी) कर देना। सर्ग–33ः महातेजस्वी चूली महर्षि की सेवा में रत सोमदा नामक गंधर्वकुमारी के याचना करने पर महर्षि द्वारा तपशक्ति (मानसिक संकल्प) से उसे पुत्र प्रदान करना। ब्रह्मदत्त नामक उस पुत्र से राजा कुशनाभ की सौ कुब्जा कन्याओं का विवाह होते ही उनके वायु–जन्य वातरोग (कुब्जत्व) का दूर हो जाना और पूर्व–सौंदर्य लौट आना। सर्ग–34 : विश्वामित्र के पिता गाधि का आख्यान– ब्रह्मदत्त के साथ सौ पुत्रियों के विवाह के बाद उनके ससुराल चली जाने पर पुत्रहीन राजा कुशनाभ का पुत्रहेतु पुत्रेष्टि अनुष्ठान करना जिससे धर्मात्मा गाधि का जन्म। राजा कुश (प्रपितामह) के कुल में उत्पन्न होने से गाधि–पुत्र विश्वामित्र का 'कौशिक' कहलाना। विश्वामित्र की बड़ी बहन ऋचीक मुनि को ब्याही सत्यवती की सशरीर

***प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 40/891, कुवेम्पू नगर, हिण्डालगा, बेलगावी, कर्नाटक–591108।**

स्वर्ग पधारने की कथा जो कौशिकी नदी बनकर भूतल पर प्रवाहित है। नेपाल से बिहार तक बहती आज की कोसी ही पुराणकाल की कौशिकी हैं। सर्ग–35 : गंगा की उत्पत्ति की विलक्षण कथा। हिमालय सभी पर्वतों का राजा है। उसकी पत्नी मेरु पर्वत की सुंदरी पुत्री मेना है, जिसकी दो पुत्रियों में ज्येष्ठ गंगा हैं और कनिष्ठ हैं उमा। गिरिराज हिमालय का उमा (पार्वती) को तपस्या में रत शिव से ब्याह देना। देवताओं का गंगा को देवकार्य की सिद्धि के लिये गिरिराज से माँग लेना और बाद में स्वर्ग से त्रिपथगा के रूप में अवतीर्ण होकर गंगा का तीनों लोकों में प्रवाहित होना।

सर्ग–36ः शिव–पार्वती के सम्बंध में ऊल–जलूल कथा। उमा से शिव के विवाह के बाद दोनों का सौ दिव्य वर्षों तक रति–क्रीडा मे निमग्न रह जाना। देवताओं की चिंता– इतने वर्षों के बाद शिव के तेज (वीर्य) से उमा गर्भ धारण कर जो अति–तेजस्वी प्राणी उत्पन्न करेंगी उसका तेज कौन बर्दाश्त करेगा! शिव के पास आकर देवगण की प्रार्थना– आप रति–क्रीडा से विरत हों। शिव का मान जाना किंतु क्रुद्ध हुई पार्वती का देवताओं को शाप– मैं पुत्र–प्रप्ति की इच्छा से पति के साथ रमण कर रही थी, तुम लोगों ने बाधा डाली, तुम्हारी पत्नियाँ भी संतान उत्पन्न करने में अक्षम हो जायेंगी। सर्ग–37ः अग्निदेव द्वारा शिव के तेज को गंगा के दिव्य रूप में स्थापित किया जाना और उससे एक पुत्र का जन्म। कृत्तिका नक्षत्र–पुंज की छहों कृत्तिकाओं का नवजात शिशु को दुग्धपान कराकर उसे जीवन देना जिससे उसका नाम कार्तिकेय पड़ना।

सर्ग–38ः भृगु मुनि के वरदान से पुत्रहीन इक्ष्वाकुवंशी राजा सगर (राम के पूर्वज) की दो पत्नियों में से एक, विदर्भकुमारी केशिनी, के एक पुत्र तथा दूसरी (अरिष्टनेमि कश्यप की पुत्री एवं पक्षिराज गरुड की बहन) सुमति से साठ हज़ार पुत्रों के जन्म की अलौकिक कथा। सर्ग–39ः सगर के अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा इंद्र द्वारा चुराया जाना और सगर के साठ हज़ार पुत्रों द्वारा उसे खोजने के लिए पृथ्वी का भीषण उत्खनन। सर्ग–40 : एक बार असफल होने पर पिता के आग्रह पर इन पुत्रों द्वारा पृथ्वी का पुनः उत्खनन। पौर्वत्य पृथ्वी के उत्खनन से पर्वताकार विशाल गजराज विरूपाक्ष का दर्शन जिसने अपने मस्तक पर पृथ्वी को धारण कर रखा है और मस्तक हिलने से भूकम्प आता है। दाक्षिणात्य पृथ्वी के उत्खनन से दूसरे विशाल गजराज महापद्म, पाश्चात्य पृथ्वी के उत्खनन से गजराज सौमनस, पृथ्वी के उत्तर खंड के उत्खनन से गजराज श्वेतभद्र का दर्शन। पूर्वोत्तर के उत्खनन से भगवान् कपिल तथा उन्हीं के पास चरते हुए यज्ञ के घोड़े का दर्शन। कपिल को चोर समझकर सगर–पुत्रों द्वारा उन्हें फटकार लगाना और उससे रुष्ट कपिल के मुँह से निकली हुंकार से उनका भस्म हो जाना। सर्ग–41ः सगर की पहली पत्नी से उत्पन्न पुत्र असमंजस के पुत्र अंशुमान का अपने पितृव्यों द्वारा उत्खनित मार्ग से नीचे पहुँचने पर भस्मीभूत पितृव्यों और पास में चर रहे घोड़े का दर्शन। शोकाकुल अंशुमान की पितृव्यों को जलांजलि देने की इच्छा पर पितृव्यों के मामा गरुड की गंगा को वहाँ लाकर उनके जल से पितृव्यों का उद्धार करने की सलाह। अंशुमान के घोड़ा लेकर ऊपर आने पर सगर द्वारा यज्ञ का समापन और तीस हज़ार वर्ष शासन करने के उपरांत उनका स्वर्ग–गमन। सर्ग–42ः सगर के बाद अंशुमान का राज्य, फिर पुत्र दिलीप को राज्य देकर तपस्या हेतु अंशुमान का हिमालय के लिये प्रस्थान। बत्तीस हज़ार वर्षों तक वहाँ तपस्या और देहांत। अपने भस्म पूर्वजों को जलांजलि देकर उनका उद्धार करने की कामना लिये दिलीप का भी अवसान। उनके पुत्र भगीरथ द्वारा गंगावतरण के लिए गोकर्ण तीर्थ जाकर, पंचाग्नि का सेवन करते हुए, एक–एक महीने उपरांत आहार ग्रहण करते हुए, घोर तपस्या। तपस्या से प्रसन्न देवताओं के साथ ब्रह्मा का आगमन। हिमालय–पुत्री गंगा के अवतरण पर पृथ्वी की उनका वेग सहन करने की अक्षमता का ज़िक्रकर ब्रह्मा का भगीरथ को सलाह देना कि गंगा को धारण करने के लिए वे शिव को तैयार करें। सर्ग–43 : देवताओं के साथ ब्रह्मा के लौट जाने पर भगीरथ का मात्र अँगूठे के अग्रभाग को पृथ्वी पर टिकाकर खड़े–खड़े एक वर्ष तपस्या कर, शिव को संतुष्ट करना और शिव द्वारा गंगा को अपने मस्तक पर धारण करने का आश्वासन। गंगा का संकल्प कि वे बृहत् रूप धारण कर अपने वेग से शिव को लिये–दिये पाताल लोक चली जायेंगी। गंगा के अहंकार से कुपित शिव का उन्हें अपने जटामंडल में अदृश्य कर देना। भगीरथ द्वारा पुनः तपस्या। उससे प्रसन्न शिव का गंगा को बिंदुसरोवर में छोड़ना और गंगा का सात धाराओं में विभक्त होकर, तीन धाराओं (ह्लादिनी, पावनी, नलिनी) का पूर्व दिशा में, तीन

धाराओं (सुचक्षु, सीता और सिंधु) का पश्चिम दिशा में और एक धारा का दिव्य रथ पर आरूढ़ भगीरथ के पीछे–पीछे चलना। देवता, ऋषि, गंधर्व, यक्ष गण का नगर के समान आकार वाले विमानों, घोड़ों तथा हाथियों पर बैठकर आकाश से पृथ्वी पर गंगा की शोभा निहारना। गंगा द्वारा उसी समय यज्ञ कर रहे प्रतापी राजा जह्नु के यज्ञपमंडप को बहा ले जाना, कुपित हुए जह्नु का गंगा का समस्त जल पी जाना; देवताओं, गंधर्वों, ऋषियों द्वारा जह्नु की स्तुति कर गंगा को उनकी पुत्री बना देना जिससे प्रसन्न हुए जह्नु का गंगा को अपने कानों के छिद्र से पुनः प्रकट कर देना (जिससे गंगा का जाह्नवी कहलाना)। अंततः भगीरथ के रथ के पीछे–पीछे प्रवाहित गंगा का समुद्र (गंगासागर) में समा जाना और भगीरथ के साठ हज़ार पितरों (सगर–पुत्रों) के उद्धार के लिये रसातल पहुँच जाना। भगीरथ का भी यत्नपूर्वक गंगा के साथ रसातल जाना, पितरों को अचेतावस्था में देखना और गंगा द्वारा उनकी भस्मराशि को आप्लावित कर उन्हें स्वर्ग पहुँचा देना। सर्ग–44: रसातल में ब्रह्मा का प्रकट होना, भगीरथ को गंगाजल से पितरों का तर्पण करने की आज्ञा देना और उन्हें आश्वस्त करना कि जब तक संसार में सागर का जल रहेगा, सगर–पुत्र देवताओं की तरह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित रहेंगे। भगीरथ से यह भी कहना कि गंगा अब तुम्हारी ज्येष्ठ पुत्री होकर रहेंगी और भागीरथी नाम से जगत् में विख्यात होंगी। भगीरथ का इस कार्य को सम्पन्न कर अपने नगर लौट जाना। मंगलमय गंगावतरण उपाख्यान की फलश्रुति।

यह बालकाण्ड के 77 सर्गों में से 44वें सर्ग तक आये रामकथा से असम्बद्ध, अलौकिक और असंभाव्य पौराणिक आख्यानों की अतिसंक्षिप्त बानगी है।

बालकाण्ड के शेष सर्गों में समुद्र–मंथन और उससे निकलने वाले हालाहल (कालकूट) विष, धन्वन्तरि, साठ करोड़ अप्सराओं, वरुण की पुत्री व सुरा की अधिष्ठात्री देवी वारुणी, उच्चैःश्रवा घोड़े, कौस्तुभ मणि और अंत में अमृत की उत्पत्ति की कथा; कश्यप ऋषि की पत्नियों दिति और अदिति तथा उनसे देवों और असुरों की उत्पत्ति की कथा; गौतम तथा अहिल्या की कथा; गौतम ऋषि द्वारा इंद्र को शाप देने तथा अहिल्या के उद्धार का उपाय बताने की कथा; शतानंद द्वारा विश्वामित्र का वंश–वर्णन; वशिष्ठ–विश्वामित्र संघर्ष; विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ की गाय कामधेनु के बलात् अपहरण से दुःखी कामधेनु का वशिष्ठ की आज्ञा से हुंकार भरकर महाबली पह्लव और काम्बोज तथा अपने थन से बर्बर, योनिस्थान से यवन, शकृस्थान (गोबर करने के स्थान) से शक, रोमकूपों से म्लेच्छ, हारीत व किरात सैनिकों को उत्पन्न करना जो विश्वामित्र के सौ पुत्रों में से निन्यानवे का संहार कर विश्वामित्र को अपने बचे हुए एक पुत्र को राज्याधिकार सौंपकर तपस्या के लिए निकल जाने को बाध्य करते हैं। (रामायण काल में ये पह्लव, काम्बोज, बर्बर, यवन, शक और म्लेच्छ कहाँ से आ गये?) फिर सर्ग–57 से सर्ग–60 तक विश्वामित्र–त्रिशंकु की विस्तृत कथा, अम्बरीष और शुनःशेप की कथा, शुनःशेप को यज्ञ–पशु बनाये जाने के निष्फल प्रयास की कथा, विश्वामित्र की तपस्या और इंद्र–प्रेरित मेनका द्वारा उसे भंग किये जाने की कथा, विश्वामित्र द्वारा पुनः तपस्या करने, इस बार इंद्र–प्रेरित रम्भा द्वारा उन्हें मोहित करने के उद्योग की कथा। ध्यान–भंग होने पर विश्वामित्र द्वारा रंभा को एक हज़ार साल के लिए प्रस्तर–प्रतिमा बन जाने का शाप और अंततः उनका ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने में सफल हो जाना।

पूरे बालकाण्ड में ऐसे ही अनेक अवांतर प्रसंग भरे हुए हैं जिनमें पौराणिक कथाओं का ठीक पौराणिक शैली में लौकिक–अलौकिक, संभव–असंभव की विभाजन रेखा का अतिक्रमण करते हुए अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक वाल्मीकि के जिस सुगठित और सूत्रबद्ध कथा–विधान के दर्शन होते हैं, ये कथायें उसके विरूपण का आईना हैं। अधिकांश कथाएँ विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण के सामने वर्णित हैं और कई के केंद्र में विश्वामित्र स्वयं हैं। विशेषज्ञ विद्वानों का मत अपनी जगह, आप खुद पारायण करें और तय करें यह रामायण का बालकाण्ड है या विश्वामित्र–काण्ड, जिसमें यत्र–तत्र बालकाण्ड के कथा–सूत्र भी बिखेर दिये गये हैं।

उत्तरकाण्ड : बालकाण्ड की रामकथा के लिये वाल्मीकीय रामायण से इतर एक बना–बनाया ढाँचा उपलब्ध है। तुलसी का रामचरितमानस तो है ही, अनगिनत देशी–विदेशी राम–कथाओं में भी भिन्न–भिन्न रूपों में यह

ढाँचा मिल जाता है। पद्मभूषण फ़ादर कामिल बुल्के की प्रसिद्ध पुस्तक 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास' एक श्रमसाध्य, सुचिंतित और यथासंभव वस्तुपरक शोध ग्रंथ है जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर माताप्रसाद गुप्त के निर्देशन में किये गये शोध का प्रतिफल है, जिस पर उन्हें पी–एच. डी. की उपाधि मिली थी। कामिल बुल्के बेल्जियम से भारत आये एक ईसाई मिशनरी थे, उनका विवेकसम्मत भारत–प्रेम उनके इस एक कथन से ही स्पष्ट है– संस्कृत भारतीय भाषाओं में महारानी है, हिंदी बहूरानी और अँग्रेजी बहूरानी की सेविका। उन्होंने प्राचीन रामकथा– वाल्मीकीय रामायण, बौद्ध रामकथा (दशरथ जातक), जैन रामकथा (विमलसूरि कृत पद्मचरित और गुणभद्र कृत उत्तरपुराण)– अर्वाचीन रामकथा (बलरामदास कृत उड़िया रामायण, कृत्तिवास कृत बँगला रामायण और कश्मीरी रामायण) के अतिरिक्त कम्बोडिया की 'रामकेर्ति' तथा तिब्बत, श्याम (थाईलैंड), बर्मा आदि देशों में उपलब्ध रामकथाओं के अनुशीलन से अपना मत स्थिर किया है।

बालकाण्ड की तरह उत्तरकाण्ड की रामकथा का कोई ढाँचा उपलब्ध नहीं है। तुलसी ने अपना उतरकाण्ड भरत–हनुमान मिलन, राम के अयोध्या आगमन, राम के राज्याभिषेक, वानरों और निषाद की विदाई (जो प्रसंग वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड में ही समाहित हैं), रामराज्य के वर्णन और राम, भरत, लक्ष्मण, और शत्रुघ्न के दो–दो पुत्रों की उत्पत्ति के बाद शेष उत्तरकाण्ड विभिन्न संवादों के माध्यम से तत्व–विवेचन और ज्ञान–भक्ति निरूपण को समर्पित कर दिया है। अन्य रामकथाओं में भी वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड का कथानक लगभग नदारद है। ऐसे में वाल्मीकि के 'उत्तरकाण्ड' (?) में उपलब्ध सामग्री की प्रकृति इस काण्ड के प्रक्षिप्त होने या न होने की एकमात्र कसौटी रह जाती है।

वाल्मीकीय रामायण के 'उत्तरकाण्ड' की विषयवस्तु का विहंगावलोकन : उत्तरकाण्ड में कुल 111 सर्ग हैं। यह काण्ड शुरू होता है राम–दरबार में महर्षियों के आगमन और उनसे संक्षिप्त वार्तालाप के साथ। ऋषि अगस्त्य द्वारा रावण के पितामह ऋषि पुलस्त्य के गुणों और उनकी तपस्या का वर्णन। पुलस्त्य–पुत्र मुनि विश्रवा से वैश्रवण (कुबेर) की उत्पत्ति। वैश्रवण की तपस्या तथा लंका में उनका निवास। राक्षस–वंश का वर्णन– हेति, विद्युत्केश और सुकेश की उत्पत्ति। सुकेश के पुत्र माल्यवान, सुमाली और माली की संतति–परंपरा का आख्यान। राक्षसों के संहार के लिए, शंकर की सलाह पर देवताओं का विष्णु की शरण में जाना और विष्णु का आश्वासन। देवताओं पर राक्षसों का आक्रमण और विष्णु की सहायता से उनका संहार एवं उनका पलायन। विष्णु (यहाँ उन्हें श्रुति साहित्य की तरह इंद्र का कनिष्ठ भ्राता दिखाया गया है) द्वारा पीछा किये जाते राक्षसों में माल्यवान का लौट पड़ना, विष्णु से उसका युद्ध, गरुड पर उसका आक्रमण और उनके पंख की हवा से उसका और अन्य राक्षसों का उड़ जाना, फिर लंका की ओर पलायन। किंतु वहाँ से भी भागते–भागते रसातल पहुँच जाना और कुबेर का लंका में निवास। राक्षस सुमाली की पुत्री कैकसी की मुनि विश्रवा से पुत्र पाने की अभ्यर्थना करने पर उनसे रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण का जन्म। रावण आदि की तपस्या के लिये गोकर्ण–तीर्थ की यात्रा। वहाँ घोर तपस्या के उपरांत ब्रह्मा का प्रकट होना और रावण, विभीषण और कुम्भकर्ण को वर देना। रावण के संदेश पर कुबेर का लंका छोड़कर कैलास जाना और लंका में रावण का राज्याभिषेक। रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा उनकी बहन शूर्पणखा का विवाह और रावण के पुत्र मेघनाथ का जन्म। रावण के अत्याचार, यक्षों पर उसका आक्रमण और उनकी पराजय। रावण द्वारा कुबेर को पराजित कर उनके पुष्पक विमान का अपहरण। रावण की शंकर के वाहन नंदी से भिड़ंत, एक हज़ार वर्षों तक उसके द्वारा नंदी का स्तवन, शंकर का प्राकट्य और उनसे रावण को चंद्रहास खड्ग की प्राप्ति। रावण की समस्त पृथ्वी पर दिग्विजय यात्रा। यमलोक पर उसका आक्रमण, उसके वध के लिए यमराज का कालदण्ड उठा लेना किंतु ब्रह्मा के आग्रह पर उसे लौटा लेना।

रावण और उसके परिजनों की कथा का विस्तार सर्ग–34 तक फैला हुआ है। सर्ग–31 में उसका आगमन नर्मदा तट पर स्थित माहिष्मती नगरी में होता है। वहाँ के राजा अर्जुन को वहाँ न पाकर रावण मंत्रियों सहित नर्मदा में स्नान कर उसके तट पर शिव की आराधना करने लगता है। आख़िर उसकी भिड़ंत अर्जुन से हो ही जाती है। उस समय अर्जुन अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा में जलक्रीडा कर रहा था। उसके हज़ार भुजाएँ थीं। भुजाओं का बल आँकने के लिये उसने उनसे नर्मदा का प्रवाह अवरुद्ध कर दिया। जल

उल्टी दिशा में बहने लगा और शिव की पूजा कर रहे रावण द्वारा शिव को अर्पित पुष्पोपहार बहा ले गया। फिर तो रावणादि राक्षसों से अर्जुन का युद्ध होना ही था। महापराक्रमी अर्जुन ने रावणको हराकर क़ैद कर लिया और माहिष्मती ले गया। किसी तरह पुलस्त्य ऋषि ने रावण को अर्जुन की क़ैद से छुड़ाया (सर्ग–33)।

क़ैद से छूटने पर रावण फिर मदमस्त विचरता किष्किन्धापुरी जा पहुँचा और बालि को युद्ध के लिए ललकार बैठा। महाबली बालि ने उसे पकड़कर काँख में दबा लिया और दूर–दूर तक घूमने लगे। अंत में किष्किन्धा लौटकर उसे उतारा। फिर तो नीतिज्ञ रावण ने अपनी चाटुकारिता से बालि को खुशकर उसे अपना मित्र बना लिया (सर्ग–34)। (इस सर्ग तक ऐसा लगता है जैसे यह रामायण का उत्तरकाण्ड न होकर रावणकाण्ड हो।)

इसके आगे दो सर्गों में हनुमान की उत्पत्ति और उनके जीवन का वर्णन कर राम के राज्याभिषेक में आमंत्रित राजाओं, वानरों और विभीषणादि राक्षसों की विदाई के युद्धकांड में आ चुके आख्यान की पुनरावृत्ति होती है, जिसे यहाँ अनावश्यक, अंतर्विरोधी और असम्बद्ध विस्तार दिया गया है (इसके पहले की पोस्ट में आ चुका है)। सर्ग–44 से 49 तक लोकापवाद से विचलित राम द्वारा सीता–निर्वासन की कथा वर्णित है (वह भी उसी पोस्ट में आ चुका है)। सर्ग–54 से 57 तक इक्ष्वाकुवंशी राजा निमि और वशिष्ठ का एक–दूसरे के शाप से देहत्याग और वशिष्ठ के अजीबोग़रीब ढंग से, कुछ अश्लील–सी, पुनर्जन्म की कथा आती है जो प्रक्षेपकों के दिमाग़ की ही उपज हो सकती है (सर्ग–55–57)। सर्ग–59 में बिना किसी संदर्भ के ययाति और उनके पुत्र पुरु (कौरवों–पांडवों के पूर्वज) की प्रसिद्ध कथा आती है जिसमें विषय–भोग से अतृप्त वृद्ध ययाति अपने युवा पुत्र पुरु को अपना बुढ़ापा देकर उसका यौवन ले लेते हैं और दीर्घकाल तक किये गये विषय–भोग से तृप्त होकर उसका यौवन लौटा देते हैं। अपने पुत्रों में पुरु के द्वारा किये गये त्याग से संतुष्ट उसी को राज्य का उत्तराधिकारी बनाते है।

फिर राम के सामने ब्राह्मण द्वारा प्रतारित एक कुत्ते की न्याय–याचना का प्रसंग आता है जिसमें राम प्रतारक ब्राह्मण को मठाधीश बनने का दंड देते हैं। इस न्याय से संतुष्ट कुत्ता अपने पूर्वजन्म में मठाधीश होने और उसमें निहित अकृत्यों के कारण कुत्ता–योनि पाने का रहद्योद्घाटन करता है।

फिर लवणासुर के अत्याचारों से पीड़ित च्यवन आदि ऋषियों का राम की राजसभा में उपस्थित होकर उसके बल का वर्णन करते हुए उसके कारण अपने त्रास के निराकरण के लिए राम से प्रार्थना करते हैं। राम की आज्ञा से शत्रुघ्न इस अभियान का नेतृत्व करते हैं और 12 सालों के कठिन अभियान से लवणासुर का वध करने में सफल होते हैं (सर्ग–60–69)। इसी अभियान के सिलसिले में दो बार उनका वाल्मीकि आश्रम जाना और सीता के जुड़वाँ पुत्र होने पर उनका दर्शन होता है किंतु अयोध्या लौटने पर वे इसकी कोई सूचना राम को नहीं देते। यह प्रसंग आ चुका है। सात दिन अयोध्या में रहकर वे लवणासुर के मधु राज्य की व्यवस्था सुधारने उसकी राजधानी मधुपुरी निकल जाते हैं। इसी के बाद शम्बूक प्रसंग आता है (सर्ग–73––77)।

इसके बाद राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का आयोजन जिसमें वाल्मीकि के साथ प्रकट होकर सीता पृथ्वी की गोद में समा जाती हैं और राम शोक और पश्चात्ताप में डूब जाते हैं (सर्ग : 84–98)। यह प्रसंग भी आ चुका है।

केकय देश से ब्रह्मर्षि गार्ग्य का आगमन और उनसे प्रेरित होकर राम द्वारा भरत के नेतृत्व में सेना भेजकर गंधर्व देश पर आक्रमण, उस पर आधिपत्य और भरत द्वारा वहाँ दो सुंदर नगर बसाकर, अपने दोनों पुत्रों को वहाँ का कार्यभार सौंपकर, अयोध्या लौटना (सर्ग––100कृ101)। काल का आगमन, उसके द्वारा भेजा गया ब्रह्मा का राम के नाम संदेश जिसे वे एकांत में सुनते हैं और स्वीकार कर लेते हैं (सर्ग–103)। लक्ष्मण द्वारा दुर्वासा के आगमन पर, उनके शाप के भय से इसकी सूचना देने के लिए राम के एकांत का नियम–भंग करना, फलस्वरूप राम द्वारा लक्ष्मण का परित्याग और लक्ष्मण का सशरीर स्वर्गारोहण (सर्ग : 105–106)।

कुश और लव का राज्याभिषेक और राम का परमधाम के लिये प्रस्थान। साथ में समस्त अयोध्यावसियों का प्रस्थान (सर्ग–109)। भाइयों सहित राम का विष्णुस्वरूप में प्रवेश और साथ आये अन्य लोगों को 'सन्तानक' लोक की प्राप्ति (सर्ग–110)। रामायण काव्य का उपसंहार और फलश्रुति (सर्ग–111)।

विषयवस्तु के अंतःसाक्ष्य के आधार पर हम खुद तय कर सकते हैं, उत्तरकाण्ड मूल वाल्मीकीय रामायण (राम की यात्रा) का प्रक्षिप्त है या मूल रचना का अविभाज्य अंग।

भाग–सात

क्या तुलसी ने वर्णाश्रम की पुनःप्रतिष्ठा के लिए षड्यंत्र (या कोई अन्य उद्योग) किया?

संदर्भ : मुक्तिबोध का आलेख 'मध्ययुगीन भक्ति–आंदोलन का एक पहलू' (जन विकल्प, सितंबर 2007)

अंधभक्ति किसी के प्रति हो, त्याज्य है। मुक्तिबोध जैसों ने स्वयं अंधभक्ति का प्रत्याख्यान रचा; उनके प्रति अंधभक्ति उनकी आत्मा का तिरस्कार है। अपने अनुयायियों में अंधभक्ति की लहर देखकर ही अंततः मार्क्स को कहना पड़ा था, वे मार्क्स हैं, मार्क्सिस्ट नहीं। मानव–मस्तिष्क की सीमाओं के आलोक में यह स्वतःसिद्ध है कि अतिशय पारदर्शी ईमानदारी के बावजूद आकलन में विचलन हो सकता है। तो असहमति और विमर्श की गुंजाइश हमेशा बनी रहेगी।

अपने आलेख 'मध्ययुगीन भक्ति–आंदोलन का एक पहलू' में मुक्तिबोध ने बिंदु–दर–बिंदु पाँच निष्कर्ष निकालने (आगे देखें) के बाद यह स्थापित किया है कि निर्गुण मतवाद के जनोन्मुख रूप और उसकी क्रांतिकारी, जाति–विरोधी भूमिका के विरुद्ध तुलसीदास ने पुराण–मतवादी स्वरूप प्रस्तुत किया जिससे आगे चलकर वर्णाश्रम धर्म की पुनर्विजय की घोषणा हुई। सवाल है, क्या तुलसी ने इसे सायास, किसी षड्यंत्र के तहत किया ?

अपने आलेख में मुक्तिबोध स्वीकार करते हैं कि तुलसी निःसंदेह एक सच्चे संत थे और उनका रामचरितमानस साधारण जनता में भी उतना ही प्रिय रहा जितना उच्चवर्गीय लोगों में। यह भी कि कट्टरपंथियों ने अपने उद्देश्यों के अनुरूप तुलसी का उपयोग किया, जिस तरह आज (मुक्तिबोध के समय में) कट्टरपंथी हिन्दू शिवाजी और रामदास का कर रहे हैं, लेकिन मुक्तिबोध ने आश्चर्य भी व्यक्त किया है कि आजकल (मुक्तिबोध के समय में) प्रगतिवादी तबकों में तुलसीदास के संबंध में जो कुछ लिखा गया है, उसमें जिस सामाजिक–ऐतिहासिक प्रक्रिया के तुलसी अंग थे, उसको जान–बूझकर भुला दिया गया है।

अपने पहले निष्कर्ष में मुक्तिबोध भक्ति–आंदोलन की शुरुआत दक्षिण भारत से मानते हैं जो एक ऐतिहासिक तथ्य है। लेकिन आगे उन्होंने लिखा है कि दक्षिण से शुरू हुए इस आंदोलन को वेद–उपनिषद्वादी शक्तियों ने प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि आलवार संतों और उनके प्रभाव में रहनेवाले जन–साधारण ने किया; इसके प्रारम्भिक चरण में निम्नवर्गीय तत्त्व सर्वाधिक सक्षम और प्रभावशाली रहे, जब कि हिंदू सामंती वर्गों के समर्थक कट्टरपंथी तत्व इस नवीन सांस्कृतिक चेतना के एकदम विरुद्ध थे। यहाँ मुक्तिबोध आलवार संतो की सगुण भक्ति को विशिष्टाद्वैत का सुगठित दार्शनिक कलेवर प्रदान करनेवाले और जाति–पाँति विरोधी श्रीवैष्णव सम्प्रदाय की स्थापना और पूरे देश में उसके प्रचारार्थ भ्रमण करनेवाले रामानुजाचार्य की पूर्ण अवहेलना कर दी। इसी तरह दक्षिण के कर्नाटक इलाक़े में बसवन्ना द्वारा सम्पन्न हुए एक सशक्त और काफ़ी हद तक सफल जाति–विरोधी, ब्राह्मणी व्यवस्था–विरोधी आंदोलन की अवहेलना कर दी। वसवन्ना वेद–उपनिषदवादी धारा में ही पले–बढ़े एक विद्वान ब्राह्मण थे। उनके जाति–विरोधी आंदोलन की परिणति लिंगायत/वीरशैव समुदाय के प्रादुर्भाव में हुई जो आज तक न केवल जीवित है बल्कि फल–फूल रहा है। हिंदू धर्म से पृथक् एक अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में उसकी मान्यता की याचिका सम्प्रति केंद्र सरकार के पास लम्बित है, लेकिन मुख्य मुद्दा यह है कि दक्षिण में वे कौन–सी शक्तियाँ थीं जिन्होंने आलवार संतों, रामानुज के श्रीवैष्णव सम्प्रदाय और बसवन्ना के क्रांतिकारी प्रभाव को नष्ट कर दिया,

जिस काम के लिए, मुक्तिबोध के अनुसार, उत्तर भारत में तुलसी के रामचरितमानस का उपयोग हुआ। बंगाल में क्या प्रक्रिया हुई, इसका तो मुक्तिबोध के लेख में कोई सुराग़ तक नहीं मिलता, जब कि वहाँ भी (तुलसी के बाद के समय में) 'भद्र लोक' और श्रमजीवी जातियों के बीच वैसी ही खाई मौजूद पाई गई।

मुक्तिबोध ने केवल उत्तर भारत और महाराष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास के हवाले से भक्ति–आंदोलन की धारा और उसकी परिणति का लेखा–जोखा लिया है। उनकी स्थापना है कि उत्तर भारत में कट्टरपंथी तत्वों में से कई निर्गुण संतों के भक्ति–आंदोलन के प्रभाव में आ गए थे, लेकिन आगे चलकर उन्होंने भक्ति–आंदोलन को अपने तरीक़े से प्रभावित भी किया। उनके पुराणवादी संस्कारों से प्रेरित भावावेशवादी कृष्णभक्ति निर्गुण मत के विरुद्ध संघर्ष करने लगी, जिसने एक क़दम आगे बढ़कर तुलसी की रामभक्ति का रूप धारण कर लिया और वर्णाश्रम धर्म की पुनःप्रतिष्ठा कर दी। महाराष्ट्र के बारे में उन्होंने लिखा है कि ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि संतों की व्यापक मानवतावादी वाणी ने हिन्दू–मुस्लिम दोनों प्रकार के सामंती उच्चवर्गों से पीड़ित, ग़रीब, किसान जनता का मार्ग प्रशस्त किया, जिसके बाद सनातनी, ब्राह्मणवादी संत रामदास इन्हीं मानवतावादियों से आ मिले; उन्होंने शिवाजी के रूप में एक नायक खड़ा किया। शिवाजी के छापामार युद्धों के सैनिक और सेनाध्यक्ष समाज के ग़रीब और शोषित जातियों–कुनबियों, धनगरों, मराठों––से आए और एक नवीन सैन्य सामंतवाद को जन्म दिए। किन्तु शिवाजी के बाद राजसत्ता उच्च कुलोत्पन्न ब्राह्मण पेशवाओं के हाथ में आ गई, जब कि सैन्य सत्ता उन्हीं शोषित जातियों से आए नए सामंतवादियों के हाथ में रही, और जातिवादी पुराणधर्म पुनः प्रतिष्ठित हो गया। तो, मुक्तिबोध के अनुसार, जो काम उत्तर भारत में निर्गुण धारा में घुसे सवर्णों की भावावेशवादी कृष्णभक्ति ने एक सोपान आगे बढ़कर तुलसी की रामभक्ति के रूप में किया, वही काम महाराष्ट्र में ब्राह्मण पेशवाओं और शोषित जातियों से आए सैन्य सामंतवादियों के गठजोड़ ने किया।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि मुक्तिबोध ने दोनों में से किसी को किसी षड्यंत्र का हिस्सा नहीं बताया है। षड्यंत्र का आरोप तो उत्तरभारत की हिंदी पट्टी की जातीय वोट–बैंक की राजनीति की देन है जिसका अकादमिक आधार शून्य है।

इतिहास पर एक तटस्थ दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाएगा कि मुक्तिबोध ने महाराष्ट्र की एक जटिल ऐतिहासिक प्रक्रिया का अतिसरलीकरण कर दिया है– सिर्फ़ दो उदाहरण। एक, शिवाजी की निर्मिति में माँ जीजाबाई के साथ शुद्ध सनातनी ब्राह्मण दादा कोण्डदेव की भूमिका को उन्होंने बिल्कुल नज़रअंदाज़ कर दिया है। दो, जीजाबाई की ओर से देवगिरि के प्रसिद्ध यादवों तथा पिता शाहजी की ओर से मेवाड़ के सिसोदियों का वंशज होने का दावा करने के बावजूद शिवाजी को छत्रपति के रूप में राज्यारोहण के समय काशी से सनातनी पंडित गंगभट को बुलाने की ज़रूरत क्यों पड़ी ? इसका कोई उत्तर मुक्तिबोध के आलेख में नहीं मिलता। उत्तर भारत में मुक्तिबोध ने जो सवर्णों की कृष्णभक्ति शाखा के तुलसी की रामभक्ति के रूप में प्रस्फुटन को वर्णाश्रम धर्म की पुनर्स्थापना के लिए ज़िम्मेदार ठहराया है, वह तो एकदम कल्पना–प्रसूत लगता है।

बौद्धिकों से एक सामान्य, प्रकृतिगत भूल, जो अक्सर हो जाती है, वह यह है कि वे समाज और मानव–व्यवहार की धारा को बदलने में विचारों की भूमिका को बहुत बढ़ा–चढ़ाकर देखते हैं। एक रैदास आते हैं और उनकी वाणी से समाज का सोया हुआ शोषित वर्ग करवट लेने लगता है। फिर उसी धारा में रुक–रुककर या एक ही समय में कबीर, नाभा सिंपी, सेना नाई अदि आते हैं और सामाजिक क्रांति उठ खड़ी होती है। लेकिन आगे चलकर उसी धारा में उच्चवर्गीय कृष्णभक्त कवि घुस जाते हैं तो क्रांति की धारा कुंद पड़ने लगती है। फिर रामभक्ति लेकर तुलसी आते हैं और वह धारा उलट जाती है तथा वर्णाश्रम धर्म की पुनःप्रतिष्ठा हो जाती है।

विचारणीय यह है कि शोषित वर्ग के इन निर्गुण संतों में से किसी के पास कोई मठ या आश्रम नहीं था, न ही आज की तरह के प्रचारकर्ता थे, न छापाखाना था, न मीडिया था, न द्रुत आवागमन के सर्वसुलभ साधन थे। इनकी कृतियों की हस्तलिखित प्रतियाँ इनके जीवनकाल में कुछ गिने–चुने लोगों तक ही पहुँची

होंगी। तो इनकी वाणी इनके इर्द–गिर्द जुटी जनता और उसके सम्पर्क में आनेवालों तक ही सीमित रही होगी। क्या इनके काव्य–जगत के नए रुझानों ने सामाजिक संरचना के यथार्थ और मानव–व्यवहार में कोई बदलाव किया?– इतिहास में इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता। मान्यता है कि कबीर ने एक लंबी उम्र पाई थी लेकिन जीवन के अंत तक उनकी वाणी में सामाजिक आडंबरों और ऊँच–नीच के भेद को लेकर उतनी ही तल्ख़ी बनी रही, जो इसी बात की परिचायक हो सकती है कि उनके जीवनकाल में तो कोई अपेक्षित परिवर्तन आया नहीं।

वर्तमान भारतीय परिदृश्य पर भी एक नज़र डाल लेना मुफ़ीद होगा। मैंने जब से होश सँभाला है, देश के बौद्धिक वर्ग को प्रायः वामपंथी रुझानवाला, प्रगतिशील, नारीवादी, साम्प्रदायिकता–विरोधी, जाति–विरोधी और दलित, पिछड़ा व स्त्री अस्मिता का समर्थक ही देखा है। हंस–जैसी कई पत्रिकाएँ इस दिशा में निरंतर कार्य करती रहीं। लेकिन अगर संवैधानिक और जनतान्त्रिक व्यवस्था में वयस्क मताधिकार के प्रतिफल के रूप में बहुसंख्यक निचली और पिछड़ी जातियाँ सत्ता में भागीदारी न प्राप्त करतीं तो ये सारे प्रयास शायद ही कुछ हासिल कर पाते।

अब संप्रदायिकता की उठान को देखिए। आधा गाँव, टोपी शुक्ला, आख़िरी कलाम जैसे अनेक सांप्रदायिकता–विरोधी उपन्यास केवल हिन्दी में आए। कविता–कहानी की तो कोई गिनती ही नहीं। मराठी में सर्वाधिक दलित साहित्य का सृजन हुआ। यह तब है जब प्रचार माध्यमों द्वारा साहित्य और उसके रुझानों का समाज में जिस तरह से प्रचार–प्रसार होता है, कबीर आदि के युग में उसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। वामपंथी दलों ने भी संप्रदायवाद पर लगाम लगाने का निरंतर प्रयास किया और आज भी कर रहे हैं, लेकिन हासिल क्या है– कोई भी निष्पक्ष प्रेक्षक यही पाएगा कि देश भर में मोटे तौर पर दोनों ही फ़रीकों में सांप्रदायिकता की भावना कम होने के बजाय बढ़ी है।

इस संदर्भ में विश्व में वामपंथी विचार की व्यावहारिक परिणति के इतिहास से भी कोई आशाजनक दृश्य नहीं उभरता। मार्क्स ने न केवल साम्यवादी विचार दिया, अपने मित्र एंजेल्स के साथ मिलकर लगातार यूरोप के समाजवादी आंदोलन में सक्रिय भूमिका भी निभाई। सन् 1848 में साम्यवादी घोषणापत्र के छपने से लेकर पूरे योरोप के तमाम बौद्धिक लोग इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में प्राण–प्रण से जुटे रहे। यूरोप के विभिन्न देशों के वामपंथी समूहों और मज़दूर संगठनों को 1864 में फ़र्स्ट इंटरनेशनल के झंडे तले एकत्र किया गया। लेकिन 1871 में पेरिस विद्रोह हुआ तो इस आंदोलन के चलते नहीं, बल्कि प्रशा के साथ हुए युद्ध में फ्रांस की पराजय से उत्पन्न हताशा के चलते, जिसे तुरंत दबा भी दिया गया। जब (प्रथम) विश्व युद्ध आया, लेनिन ने भविष्यवाणी की कि दुनिया भर के श्रमिक मिलकर पूँजीवादी सरकारों का तख़्ता पलट देंगे। हुआ ठीक उल्टा। युवा श्रमिकों और किसानों ने अपने–अपने राष्ट्र की ओर से लड़ते हुए दूसरे राष्ट्रों के अपने श्रमिक–किसान भाइयों का ही खून बहाया। क्रांति हुई तो मार्क्स के विचार के अनुरूप किसी उन्नत पूँजीवादी देश में नहीं, बल्कि रूस में, जो अभी तक सामंतवाद की जकड़ से ही मुक्त नहीं हुआ था। और क्रांति में मुख्य भूमिका निभाई जर्मनी से पराजय की ओर उन्मुख रूस के हताश सैनिकों ने। खंदकों में ठंड और भूख से पीड़ित, ज़ार के लिए लड़ रहे इन हताश सैनिकों में जूते, कंबल और डबल रोटी बाँटकर जर्मनों ने उन्हें मोरचा छोड़कर भागने के लिए प्रेरित किया, और सोवियतों (समितियों) में श्रमिकों के साथ मोरचा छोड़कर भागे इन्हीं सैनिकों की भूमिका क्रान्ति में निर्णायक सिद्ध हुई। राष्ट्रीय युद्धों में पराजयोन्मुख राष्ट्र के सैनिकों की उस राष्ट्र में सर्वहारा क्रांति लाने में भूमिका मार्क्सवादी प्रमेय में सर्वथा अकल्पनीय है।

रूस में क्रांति के लिए जो विशेष अवसर प्रथम विश्व युद्ध और उसमें रूस की पराजयोन्मुख हताशा ने प्रदान किया था, वैसा ही अवसर द्वितीय विश्वयुद्ध के ठीक पहले चीन पर जापानियों का बर्बर आक्रमण और युद्ध के दौरान जापानी क़ब्ज़े से चीन के मुक्ति–संघर्ष ने उपस्थित किया। साम्यवादियों द्वारा मुक्त किए गए इलाक़ों में जनता का जापानियों के अत्याचार से छुटकारा पाना– माओ के विपुल जन–समर्थन का कारण बना। इस जन–समर्थन के चलते ही अमेरिका से राष्ट्रवादी जनतत्र के समर्थक च्यांग काई शेक की मदद में आए हथियार साम्यवादियों के हाथ में पहुँचते गए, जिससे अक्टूबर, 1949 तक पूरे चीन पर माओ

का क़ब्ज़ा संभव हो सका, और पूर्वी जर्मनी सहित पूर्वी व केंद्रीय योरोप के देशों तथा उत्तरी कोरिया में तो साम्यवाद लाने में किसानों–मज़दूरों या जनता के किसी तबक़े की कोई भूमिका ही नहीं रही, वहाँ तो एक अनन्य परिघटना के तौर पर नाज़ियों/जापानियों को हराते हुए सोवियत सेना जहाँ तक पहुँच सकी, वहाँ तक साम्यवाद आ गया। मार्क्स ने इस तरह की क्रांति की क्या तो परिकल्पना की होगी!

फिर आख़िर क्या हुआ कि पूर्वी जर्मनी के लोग जान जोखिम में डालकर बर्लिन की दीवार फाँदने लगे और अंततः उसे तोड़ना पड़ा, और हंगरी (1956), चेकोस्लोवाकिया (1968) तथा पोलैंड (1982–83) में साम्यवादी रूस के वर्चस्व के विरुद्ध हुए विद्रोह का जिस क्रूरता से दमन हुआ उसी का नतीज़ा है कि मिलान कुंडेरा जैसे तमाम लोगों को भागकर पश्चिमी योरोप के देशों में (कुंडेरा को फ़्रांस में) शरण लेनी पड़ी; कुंडेरा के लगभग सभी उपन्यासों में पहले नाज़ी जर्मनी और फिर साम्यवादी शिकंजे में कसे इन देशों का आतंकित जन–मानस कहीं न कहीं से परिलक्षित हो ही जाता है।

तो एक बात जो समझ में आती है वह यह कि मानव–व्यवहार और इसलिए समाज–व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन लाने में विचारों की भूमिका बहुत धीमी, बहुत क्षीण रही है। लोग प्रायः ग़लत–सही, न्याय–अन्याय की अवधारणा से नहीं, बल्कि अपनी अवैज्ञानिक और बहुत हद तक अपरिभाषेय प्रवृत्तियों और स्वभाव व चरित्र के विचलनों से परिचालित होते रहे हैं और किसी विचार के साथ जुड़े होने का बस नाट्य करते रहे हैं। असली मौक़ा आने पर स्वार्थ, सुरक्षा, शोषण और वर्चस्व जैसे तत्वों के घालमेल से बनी यही प्रवृत्तियाँ हावी हो जाती हैं और इनसे उपजे निहित स्वार्थ यथास्थिति की ऐसी क़िलाबंदी कर देते हैं कि वह विचारों और आदर्शों के तोड़े नहीं टूटती, और ये प्रवृत्तियाँ वर्गों और जातियों से परे होती हैं– सभी जगह अपवाद भी मिलते हैं, इसीलिए इन्हें अपरिभाषेय कहा।

इन्हीं सहजात मानव–प्रवृत्तियों के चलते जाति–उन्मूलन की लड़ाई वर्चस्व की लड़ाई में बदल जाती है और पहले की दुर्व्यवस्था ही फिर से उलटकर खड़ी होने लगती है। जातीय श्रेष्ठता, यहाँ तक कि जातीय अस्मिता की भावना मिथ्या ही नहीं, अमानवीय है, यह एक तरह का नस्लवाद है, मनुष्यता के लिए अभिशाप है और इसी रूप में इससे निपटा जाना चाहिए। यह कहकर कि जातियाँ तो रहेंगी और सबका अपना गौरवशाली इतिहास है, सबकी अपनी पहचान है, जिसे दबाया गया है, उनकी पुनःप्रतिष्ठा की जानी चाहिए, हम फिर उसी ख़तरे की पूर्व–पीठिका तैयार कर रहे हैं, जिसने इस देश में बढ़ते–बढ़ते सुरसा का रूप धारण कर लिया था, और आज तक पीछा नहीं छोड़ रहा है। एक सुलभ शोषण के औज़ार के रूप में इसका बहुत क्रूर इस्तेमाल हुआ था और किसी न किसी रूप में आज भी हो रहा है।

शोषण वह मानवीय प्रवृत्ति है जो व्यक्ति–केन्द्रित है। सभी जातियों, सभी वर्गों और सभी धर्मों में अच्छे, सदाशय लोग मौजूद हैं और खुला, पूर्वाग्रह–मुक्त दिमाग़ रखनेवाले किसी भी व्यक्ति को दिख भी जाएँगे. तो सारे दुर्गुण न तो जाति–प्रसूत हैं, न निजी सम्पत्ति की देन हैं। मार्क्स की निजी सम्पत्ति–केंद्रित वर्ग–चेतना और वर्ग–स्वभाव में फ्रायड के अवचेतन और सत्ता–कामना का तड़का लगा होता तो वह शायद सत्य के ज़्यादा क़रीब होता, और यदि उन्हें आधुनिक जेनेटिक्स की वैसी जानकारी होती जैसी आज हमें उपलब्ध है तो शायद उनका प्रमेय ही कुछ और होता। जेनेटिक्स ने इस जनतान्त्रिक प्रमेय को सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि जाति, रंग और नस्ल की श्रेष्ठता या हीनता की सारी धारणाएँ शुद्ध बकवास हैं, और आर्थिक वर्ग की सभी मानवीय इकाइयाँ भी किसी भट्ठे से निकली ख़ास नंबर की ईंटों जैसी एकरूप नहीं होतीं। धूर्त और मासूम, पाखंडी और जेन्युइन हर वर्ग में पाए जाते हैं, और विश्व में मार्क्सवाद के क्रियान्वयन का इतिहास मानव–स्वभाव के इसी विचलन का इतिहास बन जाता है।

तुलसीदास के जीवन के जितने प्रसंग मिलते हैं, उनसे तो यही लगता है कि वे अपनी ही जाति से अपमानित, उसके आडंबरपूर्ण द्वेष के शिकार, भाषा–जैसे कई मुद्दों पर गर्हित–प्रतारित और भांति–भांति के लोगों द्वारा सताए हुए थे। भावुक, सहृदय व्यक्ति थे। ऐसे में उन्हें वाल्मीकि से चली आ रही उसी ब्राह्मणी परंपरा में राम–भक्ति का एक अवलंब मिला जो उन्हें अपने परिवेश, जाति और गुरु से प्राप्त हुई थी। उसे गले से लगाकर वे राममय हो गए। रामचरितमानस पढ़ते हुए लगता है, तुलसी के राम एक कल्पित किन्तु

भाव–साकार इयत्ता के रूप में सदैव उनके सामने मौजूद हैं, जिसमें तुलसी वह सब कुछ भर देना चाहते है जो मनुष्य के बारे में उनकी आकांक्षा का चरम है। 'नानापुराणनिगमागम' से पुराणवादी परंपरा का संकेत भले मिलता हो, उत्तरकाण्ड में जो ज्ञान–भक्ति निरूपण है वह उपनिषदों के शुद्ध, निर्गुण एकात्मवाद से भक्तिवाद का सहमेल है। राम की सगुण भक्ति और औपनिषद् निराकार तत्वज्ञान के साथ उसके संश्लेषण से इतर रामचरितमानस में जो कुछ है, उसका प्रतिपाद्य नहीं, मात्र आनुषंगिक है, और आज तक की सामान्य सवर्ण मानसिकता को देखते हुए काफ़ी उदार और समावेशी भी। ऐसे में रामचरितमानस को सायास वर्णाश्रम धर्म की पुनःप्रतिष्ठा का 'श्रेय' देना गले नहीं उतरता, वह चाहे बाबा नागार्जुन करें, चाहे मुक्तिबोध, चाहे कोई और।

वर्णाश्रम धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा तुलसी के वश का रोग ही नहीं था, किसी भी एक व्यक्ति या ग्रंथ के वश का नहीं था, और वश में होता भी तो, उसकी ज़रूरत ही नहीं थी। वर्णाश्रम धर्म कहीं गया ही नहीं था, बहुत मज़बूती से निहित स्वार्थों और शोषक मानव–प्रवृत्तियों से पोषित–संरक्षित अपनी जगह अटल था। जो काम महात्मा बुद्ध और काफ़ी समय तक राजाश्रय में रहे बौद्ध धर्म से नहीं हुआ, वह रैदास और कबीर आदि के करने से होनेवाला नहीं था।

कबीर का तत्वज्ञान निश्चय ही अधिक समतामूलक, आडंबर–विरोधी और मानवतावादी है और इस अर्थ में अधिक वैज्ञानिक और 'आधुनिक' भी, लेकिन हठयोग और तंत्र–विद्या के बीच झूलता उनका इंगला–पिंगलावाला रहस्यवाद तुलसी के उत्तरकाण्ड के औपनिषद् रहस्यवाद से कहीं ज़्यादा अटपटा, मध्ययुगीन और प्रतिक्रियावादी है। मुक्तिबोध ने ठीक ही लिखा है कि हम कबीर से जनवादी संदेश तो लेना चाहते हैं लेकिन उनके रहस्यवाद से मुँह मोड़ना चाहते हैं, जो तत्कालीन विचारधारा की सीमाओं का द्योतक होने से केवल समाजशात्रीय अध्ययन का विषय हो सकता है। उसी तर्ज़ पर तुलसी का वर्णाश्रमवाद भी उनके समय और उनके जातीय परिवेश के समाजशास्त्रीय अध्ययन का विषय हो सकता है, लेकिन कहीं से उनके द्वारा किए गए किसी षड्यंत्र का द्योतक नहीं। किसी तरह के षड्यंत्र का विचार उनके सरल, सहृदय, भक्तिमय व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता। ख़ासकर जब वे अपने ही वर्ग से भाषा आदि अनेक पहलुओं पर निंदित–प्रतारित रहे थे।

कबीर और उनके अनुयायी श्रमजीवी शोषित जातियों में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान तो भर सकते थे लेकिन ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना में दरार पैदाकर उस आत्मसम्मान को सामाजिक स्वीकृति नहीं दिला सकते थे। वे ब्राह्मणवादियों के सामने बस रहस्य के थोड़ा और ऊंचे आसन पर बैठकर मुँह चिढ़ा सकते थे और, जैसा की संकेत है, तुलसी के समय में उनके अनुयायी यही कर रहे थे। पर यह कोई नई बात नहीं थी। बहुत प्राचीन काल से लोकायतों और आजीविकों की कर्मकांडविरोधी, वर्णविरोधी, अनीश्वरवादी और इहलोकवादी परंपरा चली आई थी। ये लोकायत और आजीविक ब्राह्मणवादियों को ताल ठोंककर शास्त्रार्थ के लिए ललकारा करते थे। बाद में वेदान्त के उत्कर्ष ने उन्हें इस क़दर निगल लिया कि उनके केवल विद्रूपात्मक संदर्भ माधवाचार्य के सर्वदर्शनसंग्रह (तेरहवीं शताब्दी) में शेष रह गए। तो तुलसी और कबीर दोनों में जो सार्थक और समीचीन है उसे लेकर, उनके समय–सीमित और आज के लिए अप्रासंगिक हो उठे को छोड़ना पड़ेगा। परंपरा में यदि कुछ सारतत्व है तो उसके साथ तभी न्याय होगा। जहाँ नहीं वहाँ षड्यंत्र सूँघनेवाला (इसके लिए कुछ लोगों द्वारा एक जगह जुटकर की गई दुरभिसंधि का साक्ष्य अनिवार्य है) और छूटते ही नीयत पर निराधार शक कर देनेवाला इस तरह का सरलीकृत विमर्श गँदले पानी को और गँदला करने के सिवा और कुछ नहीं करेगा।

भाग–आठ

शूद्र और नारी के प्रति तुलसी की संकुचित दृष्टि का यथार्थ – क

तुलसी ने अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में बहुत कम लिखा है, किंतु जो भी लिखा है– एकदम बेबाक और निःशंक। दिन के प्रकाश की तरह उससे स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी अपने आराध्य राम की सगुण भक्ति के प्रति इस क़दर एकनिष्ठ और स्वभाव से इतने दृढ़ थे कि किसी भी बिंदु पर किसी तरह का

समझौता करना उनके लिए असंभव था। बचपन से जीवन–रक्षा के लिये उन्हें अप्रतिम संघर्ष करना पड़ा था जिसने उनके व्यक्तित्व में उत्कट क़िस्म का आत्मविश्वास भर दिया था।

ध्यान देने की बात यह है कि रामचरितमानस संभवतः उनकी प्रथम कृति है, उसकी रचना के समय उनकी युवावस्था रही होगी। वर्णाश्रम धर्म को लेकर रामचरितमानस में कहीं–कहीं अतर्क्य आग्रह दिखता है किंतु उनकी बाद की कृतियों में यह आग्रह लुप्त ही नहीं होता, वर्णव्यवस्था के उन्मुक्त तिरस्कार में अंतरित हो जाता है। उन पर वर्णाश्रम की पुनःप्रतिष्ठा का आरोप तो आधारहीन है ही, बाद के तुलसी सर्वसुलभ सगुण भक्ति के पक्ष में वर्णाश्रम या किसी भी रूढ़िगत सामाजिक व्यवस्था से विद्रोह करते प्रतीत होते हैं।

टुकड़े–टुकड़े जोड़कर जो तस्वीर बनती है, उसमें तुलसी बचपन में निराश्रित और साधनहीन, एक–एक अन्न के लिए भटकते–डहडहाते दिखाई पड़ते हैं, जिसमें वर्णव्यवस्था के संस्कार पड़ने का कोई अवसर नहीं था–

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो, सुनि भयो परितापु पापु जननी जनक को।
बारें ते ललात–बिललात द्वार–द्वार दीन, जानत हो चारि फल चारि ही चनक को।
तुलसी सो साहेब समर्थ को सुसेवकु है, सुनत सिहात सोचु बिधिहू गनक को।
नामु राम रावरो किधौं बावरो, जो करत गिरीतें गरु तृनतें तनक को।

–कवितावली, उत्तरकाण्ड, 73

(भिक्षा माँगनेवाले कुल में पैदा हुआ, फिर भी जन्म पर बधाई बजी। उसे सुनकर (दरिद्र) माता–पिता को कष्ट और अपराध–बोध ही हुआ। बचपन से ही अत्यंत दीन होने के कारण द्वार–द्वार ललचाता–बिललाता फिरा। चने के चार दाने मिल जाएँ तो उन्हें चार फल समझता था। वही तुलसी आज समर्थ स्वामी रामचंद्र का सेवक है, यह सुनकर अपने को ब्रह्मा–तुल्य माननेवाले ज्योतिषी ईर्ष्या करते हैं, दुःखी होते हैं। हे राम, आपके नाम में जाने कैसा पागलपन है जो तृण से भी हल्के को पहाड़ से भी ज़्यादा वज़नदार बना देता है।)

जो भी कारण रहा हो, बचपन में तुलसीदास को कहीं से कुछ भी माँगकर पेट की आग शांत करनी पड़ी या भूखे रह जाना पड़ा– जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस, खाये टूक सबके बिदित बात दुनी में। (कवितावली, उत्तरकाण्ड, 72) (मैंने पेट की आग शांत करने के लिये जाति (अपनी जाति) सुजाति (ऊँची कही जानेवाली जाति) और कुजाति (नीची कही जानेवाली जाति) सभी के टुकड़े माँग–माँग कर खाए हैं, यह बात दुनिया को मालूम है।)

वर्णव्यवस्था और जाति–पांति के भेद से तुलसी का विद्रोह निरतिशय है–

मेरें जाति–पाँति न चहौं काहू की जाति–पाँति, मेरे कऊ काम को न हौं काहू के काम को।
लोकु परलोकु रघुनाथ ही हाथ सब, भारी है भरोसो तुलसी कें एक नाम को।
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग, साह ही को गोतु गोतु होत है गुलाम को।
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोचु कहा, का कहू के द्वारे परौंपरौं, जो हौं सो हौं राम को।

– कवितावली, उत्तरकाण्ड, 107।

(मेरी कोई जाति–पाँति नहीं, न मैं किसी की जाति–पाँति देखता हूँ। मेरा लोक–परलोक सब रघुनाथ जी के हाथ में है। तुलसी को तो बस एकमात्र रामनाम का भरोसा है और जबर्दस्त भरोसा है। लोग तो इतने अनजान हैं कि उस कहावत का मतलब तक नहीं समझते– स्वामी का गोत्र ही सेवक का गोत्र होता है (मेरा वही गोत्र है जो मेरे स्वामी राम का है)। मैं साधु हूँ या असाधु, भला हूँ या बुरा, मुझे परवाह नहीं, मैं किसी के द्वार पर तो पड़ा नहीं हूँ (किसी का आश्रित तो नहीं हूँ), जैसा भी हूँ, अपने श्रीराम जी का हूँ।)

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबौ, मसीत को सोइबो, लैबो को एक न दैबो को दोऊ।

(कवितावली, उत्तरकाण्ड, 106)

(मुझे धूर्त कहिये, अवधूत (ब्रह्मलीन) कहिये, राजपूत कहिये, जुलाहा कहिये, मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता। मुझे किसी की बेटी से अपने बेटे की शादी तो करनी नहीं है कि उसकी जाति बिगाड़ूँ। तुलसी श्रीराम के सेवक के रूप में प्रसिद्ध है, जिसको जो मन में आये, कहे। मैं तो माँगकर खा लूँगा और मस्जिद में सो लूँगा। मुझे किसी से न लेना एक, न देना दो।)

तुलसी को रामभक्त के रूप में अथाह आत्मविश्वास है, उन्हें न अपनी, न अन्य किसी की जाति से मतलब है, न लोक–स्वीकृति से। उन्हें तो राजपूत और जुलाहा कहे जाने से भी कोई आपत्ति नहीं। ऐसे व्यक्ति को वर्णव्यवस्था का पोषक कैसे कहा जा सकता है, समझ से परे है। जिस तरह वर्णव्यवस्था के प्रति, उसी तरह वेद–पुराणवादी शास्त्र परंपरा के प्रति भी तुलसी की पूर्ण विरक्ति है–

आगम वेद पुरान बखानत मारग कोटिन जाहि न जाने।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईसु कहावत सिद्ध सयाने।
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप, जोग, बिरागु लै जीव पराने।
को करि सोचु मरै तुलसी हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने। (कवितावली, उत्तरकाण्ड, 105)

(शास्त्र (या तंत्र), वेद और पुराण करोड़ों मार्गों का निरूपण करते हैं किंतु उन्हें जानना–समझना कठिन है। और जो मुनि लोग हैं वे स्वयं को ईश्वर, सिद्ध और श्रेष्ठ घोषित करते रहते हैं। सभी धर्मों को कलिकाल ने निगल लिया है। जप, योग और वैराग्य अपने–अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुये हैं। इन बातों को सोच–सोचकर तुलसी हलाकान क्यों हो? वह तो एकमात्र जानकीनाथ रामचंद्र के हाथ बिक चुका है।)

पिछले भाग में संदर्भित मुक्तिबोध के आलेख में कबीर आदि संत कवियों की वाणी से जिस वर्णाश्रम धर्म से समाज की मुक्ति का प्रमेय गढ़ा गया था, उस "मुक्ति" का ज़मीनी यथार्थ प्रस्तुत किया है तुलसी ने। वस्तुतः वह मुक्ति नहीं, वर्णाश्रम धर्म का विरूपण था। उसका विकृत रूप, जिसके विरुद्ध तुलसी विद्रोह करते हैं। इस पर कुछ विस्तार अपेक्षित है।

भाग–नौ

शूद्र और नारी के प्रति तुलसी की संकुचित दृष्टि का यथार्थ– ख

रामचरितमानस में जहाँ भी शूद्र और नारी के विरुद्ध युगानुरूप पूर्वाग्रह की अभिव्यक्ति हुई है, वह पात्रों के संवादों में निहित है और सभी का एक विशेष संदर्भ है। प्रायः इन पात्रों और संवादों का अनदेखा कर, निहित उद्देश्य से उनका संदर्भ–हीन उद्धरण दिया जाता है, जिससे परिहार्य सामाजिक विद्वेष का विस्तार होता है। जनतंत्र की सत्ता–केंद्रित दलीय राजनीति स्खलित होने पर जनमत को साहित्य, कला, संस्कृति, इतिहास की अंध गलियों में भटकाने के लिए अभिशप्त है।

रामचरितमानस एक प्रबंधकाव्य है जिसके नायक दशरथनंदन राम हैं और खलनायक है रावण। नायक–खलनायक के अतिरिक्त इसमें अनेक पात्र हैं जिनमें कुछ खल हैं, कुछ सज्जन, तो कुछ दोनों के मध्यवर्ती। जैसा कि संसार में होता है, कुछ सत्पात्र भी परिस्थिति की चपेट मे खल–जैसा आचरण करने लगते हैं, और तो और, शेषावतार माने गये लक्ष्मण का क्रोध उनकी नाक पर रहता है। कभी–कभी जब वे आपे से बाहर हो जाते हैं, नीति–विरुद्ध, असंयमित बातें करने लगते हैं और राम को बहुत कुशलता से स्थिति को सँभालना पड़ता है।

तो प्रबंधकाव्य की अपनी अनिवार्यताएँ होती हैं। मनुष्य के शुभ–अशुभ सभी रूपों, सभी भावों, सभी आग्रहों–पूर्वाग्रहों का चित्रण करना पड़ता है। नौ रस और वक्रोक्ति, अन्योक्ति, अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों के सम्यक् संयोजन के बिना कोई भी प्रबंधकाव्य साहित्यिक कृति के रूप में पूर्ण नहीं होता। इसलिए कोई बात किस पात्र द्वारा किस अवसर पर कही गई, इस पर विचार किये बिना उसे प्रबंधकार का मंतव्य घोषित कर देना पूर्णतः परिप्रेक्ष्य–विहीन होता है और उद्घोषक की मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति के सिवा उससे कुछ भी निर्धारित नहीं होता। इस परिप्रेक्ष्य में मानस के कुछ विवादित प्रसंगों के पुनःपरीक्षण की ज़रूरत है।

एक

ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी। (मानस, सुन्दरकाण्ड, 58:3—दूसरा अर्द्धांश)

यह समुद्र का वचन है जो संबन्धित प्रसंग में एक नैतिक, शुभ और ज़रूरी कार्य में अनायास अवरोध उत्पन्न करने वाले, हठी, धूर्त, कायर और अवसरानुरूप रंग बदलनेवाले खलनायक के रूप में सामने आता है।

राम वानरों—रीछों की सेना के साथ लंका अभियान के लिए समुद्र तट तक आ गये हैं। समुद्र से लंका का मार्ग देने का अनुनय करते तीन दिन बीत गये हैं। जड़ और कुटिल समुद्र अपनी शठता और अहंकार में डूबा, विनय की भाषा न समझने के हठ पर अड़ा हुआ है——

बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।
लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिखि कृसानू।
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती।
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी।
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा।
संधानेउ प्रभु विसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने।
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना। (सुन्दरकाण्ड, 57, 57: 1—4)

(विनयपूर्वक याचना करते तीन दिन बीत गये किंतु जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तब राम ने क्रोध में आकर कहा, भय के बिना प्रेम नहीं होता। हे लक्ष्मण, धनुष—बाण लाओ। अग्निबाण से मैं समुद्र को सुखा दूँगा। मूर्ख से विनय, कुटिल से प्रेम, स्वभाव से कृपण को उदारता का उपदेश, ममत्व से बिंधे मनुष्य से ज्ञान की कथा, अतिशय लोभी से वैराग्य का आख्यानकृइनका फल वैसा ही होता है जैसे ऊसर ज़मीन में बीज बोने का। ऐसा कहकर प्रभु राम ने धनुष चढ़ा लिया जो लक्ष्मण के मन का काम हुआ। जब राम ने भयानक अग्नि बाण का संधान किया, समुद्र के हृदय में ज्वाला जल उठी। घड़ियाल, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो उठे। समुद्र को जंतुओं के जलने का एहसास हुआ तो उसका अभिमान मिट्टी में मिल गया। सोने के थाल में अनेक रत्नों को सजाकर, वह ब्राह्मण के रूप में राम के सम्मुख प्रकट हुआ।)

और तब—

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी।
तव प्रेरित मायाँ उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए।
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई।
प्रभु कीन्हि भल मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुमही कीन्हीं।
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी। (सुन्दरकाण्ड, 58:1—2)

(भयभीत समुद्र ने राम के चरण पकड़ लिया और बोला— हे नाथ, मेरे दोषों को क्षमा कीजिए। फिर अपनी क्षमा—याचना को बल देने के लिए राम को ही उपदेश देने लगा——हे नाथ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये स्वभाव से ही जड़ हैं। सभी ग्रंथ गाते हैं कि आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें उत्पन्न किया है। ईश्वर की आज्ञा से जो जैसा है, वह उसी में सुख पाता है। आपने अच्छा किया, मुझे दंडित करने के लिए सन्नद्ध होकर सीख दे दी। क्या है कि ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और नारी— ये दंड के ही लायक हैं।)

यहाँ समुद्र एक कुटिल और कायर खललायक के रूप में सामने आता है। विनय की भाषा नहीं समझता किंतु अग्निबाण का संधान होने पर रंग बदलकर स्वयं को जड़ और दंड का अधिकारी बताने लगता है। साथ में चार अन्य को भी अपने समकक्ष घसीट लेता है। धूर्त का यही लक्षण है। ऐसे धूर्त खलनायक का वचन प्रबंधकार का वचन नहीं माना जाता, बल्कि उसका मंतव्य उल्टा समझा जाता है।

इस कथन से तुलसी की अपनी मान्यता का कुछ भी लेना–देना नहीं है।

दो

"जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।" (उत्तरकाण्ड, 99:3 का पहला अर्द्धांश)

कुछ समय पूर्व चर्चा और विवाद में आई इस चौपाई से कोई अर्थ नहीं खुलता जब तक इसको दूसरे अर्द्धांश के साथ न पढ़ा जाया। इस पहले अर्द्धांश में तो वर्णव्यवस्था में निचले स्तर पर स्थित कुछ जातियों/जनजातियों का नामोल्लेख मात्र है। यह नामोल्लेख किस संदर्भ में? अगली चौपाई के साथ पढ़ने पर ही इस नामोल्लेख का संदर्भ ज्ञात होता है–

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी। (वही)

(उत्तरकाण्ड में काकभुशुंडि द्वारा गरुड को संबोधित कलिकाल–वर्णन का प्रसंग है। उस कलिकाल में ही काकभुशुंडि ने शूद्र के रूप में प्रथम जन्म लिया था। चौपाई के अनुसार वर्णव्यवस्था में निचले स्तर पर स्थित तेली, कुम्हार, चांडाल (डोम), किरात (एक वनवासी जनजाति– महाभारत और भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीयम् में अर्जुन से शिव किरात–वेश में लड़ते हैं), कोल (एक अन्य वनवासी जनजाति) और कलवार (वैश्यों की एक उपजाति जो मद्य बनाती और बेचती थी) पत्नी की मृत्यु और सम्पत्ति के नष्ट होने पर सिर मुँड़ाकर सन्यासी हो जाते हैं।)

स्पष्ट है कि उपर्युक्त निचली जातियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित करने का कोई प्रसंग नहीं है। वस्तुतः तुलसी के समय में वर्ण और आश्रम व्यवस्था दोनों का क्षरण हो चुका था और शूद्र या अंत्यज वर्ण के लोग भी जीविकोपार्जन के लिये सन्यासी का महज़ वेश धारण करने लगे थे। इसके आगे की दो चौपाइयाँ इन जातियों/जनजातियों के अन्य कृत्यों और उनके संदर्भ में ब्राह्मणों की स्थिति का एक साथ उल्लेख करती हैंकृ

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।
बिप्र निरक्षर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी। (उ.का. 99:4)

{वे (तेली, कुम्हार आदि) ब्राह्मणों से अपनी पूजा कराते हैं, इस तरह अपना लोक–परलोक दोनों नष्ट करते हैं। ब्राह्मण निरक्षर, लालची और लम्पट हैं। वे आचारहीन तथा मूर्ख हैं और कुलटा स्त्रियों के पति हैं।}

विचारणीय यह है कि परमज्ञानी काकभुशुंडि के माध्यम से तुलसी कलियुग के ब्राह्मणों के प्रति अधिक कटु हैं या वर्णव्यवस्था के निचले स्तर पर विद्यमान उपरोक्त जातियों और वनवासियों के प्रति? यहाँ तो काकभुसुंडि ब्राह्मण ही नहीं, ब्राह्मणियों को भी नहीं छोड़ते, उन्हें कुलटा क़रार देते हैं। ब्राह्मण निरक्षर, लालची, आचारहीन, मूर्ख और कामी (लंपट) हैं, नक़ली संन्यासी बने उपरोक्त जातियों के लोगों को पूजते हैं तो ब्राह्मणों की पत्नियाँ व्यभिचारिणी हैं। संदर्भहीन आपत्ति करनी ही है तो ब्राह्मण और नारीवादी ब्राह्मणियों को करने का मामला बनता है। इस तरह तो रामचरितमानस की प्रतियाँ जलाने का उपक्रम ब्राह्मणों और ब्राह्मणियों को पहले करना चाहिये। चूँकि तुलसी संयोग से ब्राह्मण कुल में पैदा हो गये थे, आज के ब्राह्मणों से सार्वजनिक रूप से क्षमा माँगने का आग्रह! हास्यास्पद!

रामचरितमानस में कलियुग–वर्णन स्वाभाविक रूप से तुलसी के समय के हिंदू–समाज के यथार्थ का आईना है जिसमें वर्णाश्रम व्यवस्था अपने अतिशय कलुषित, विकृत रूप में सामने आती है। इस वर्णन में तुलसी न कोई पक्षपात करते हैं, न किसी वर्ण के प्रति उनका पूर्वाग्रह है। ब्राह्मणों के अलावा वे शासकों को भी नहीं बख़्शते (यह अकबर का शासनकाल था)। कुछ अंश–

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि कर प्रगट किए बहु पंथ। (उ.का. 97–क)
बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी।
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।(97:1)

(कलियुग के दूषित प्रभाव ने सभी धर्मों को निगल लिया है। सद्‌ग्रंथ लुप्त हो चुके हैं। दंभी लोगो ने अपनी मति की कल्पना से अनेक पंथ प्रकट कर दिये हैं। न वर्णधर्म रह गया है, न आश्रम धर्म। सभी स्त्री–पुरुष वैदिक वाङ्‌मय के विरुद्ध आचरण में संलग्न हैं। द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, या केवल ब्राह्मण) वेदों को बेचने में (धनार्जन के लिए वेदों का इस्तेमाल करने मे) लग गये हैं। राजा प्रजा का भक्षण करते हैं (उन्हें अनुचित कराधान के माध्यम से लूटते और सताते हैं)। वेदों के अनुशासन का पालन कोई नहीं करता।)

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।
सोइ सयान जो परधनहारी। जो कर दंभ सो बड़ा आचारी।
जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलयुग सोइ गुनवंत बखाना। (97:2–3)

(जिसको जो अच्छा लग जाए, वही मार्ग है। 'पंडित' वही है जो डींग हाँकने में माहिर है। जो मिथ्या बोलने और आडंबर रचने में रत है उसी को सब संत कहते हैं। जो दूसरों का धन हरने में निपुण है वही होशियार माना जाता है। जो सदाचार का छद्म रचता है और उसी पर दंभ करता है वही सदाचारी है। जो झूठ बोलने और हँसी–दिल्लगी करने में निपुण है, कलियुग में वही गुणी के रूप में मशहूर है।)

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी।
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला। (97:4)

(जो आचारहीन है, वेद–मार्ग को त्याग चुका है, कलियुग में वही ज्ञानी और विरक्त माना जाता है। जिसने बड़े–बड़े नाखून और विशाल जटाएँ रखी हैं वही तपस्वी के रूप में प्रसिद्ध है।)

असुभ बेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलियुग माँहि (98–ख)

(जो कुत्सित वेश धारण करते हैं, भक्ष्य–अभक्ष्य दोनों में कुछ भी खा लेते हैं, वही लोग कलियुग में योगी, सिद्ध और पूज्य माने जाते हैं।)

सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी।
गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी। (98:2)

(पुरुष कामासक्त, लोलुप और क्रोधी हैं। देवों, ब्राह्मणों और संतो के विरोधी हैं। अभागी स्त्रियाँ गुणवान् और सुंदर पति को छोड़कर परपुरुष से सम्बंध रखती हैं।)

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।
तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलियुग कर।(99:1)

(जो परस्त्री में आसक्त हैं, कपटी हैं, मोह, द्वेष और ममता से घिरे हुये हैं, अद्वैतवादी ज्ञानी कहे जाते हैं। (काकभुशुंडि ने गरुड से कहा) कलियुग का ऐसा ही चरित्र देखा मैंने।)

भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग।(100)

(कलियुग में वर्णसंकरता आम है। सभी लोग मर्यादा से च्युत हैं। पाप करते हैं, दुःख पाते हैं और भय, रोग शोक व वियोग से ग्रस्त होते हैं।)

और अंत में–

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना।
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि।
सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।
कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहीं पापा। (102:3–4)
कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।। (103–क)

(कलियुग में योग, यज्ञ, ज्ञान सब लुप्त हैं। श्रीराम का गुणगान ही एकमात्र आधार है। सारे आश्रय भूलकर जो श्रीराम को भजता है और प्रेमपूर्वक उनकी गुणराशि का गान करता है, भवसागर से मुक्ति पा जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। रामनाम की महिमा कलियुग में प्रत्यक्ष है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप भी है, यह

कि इसमें मानसिक पुण्य तो संभव है किंतु मानसिक पाप वस्तुतः पाप नहीं होते। इसलिये, मनुष्य में यदि विश्वास हो तो कलियुग जैसा कोई युग नहीं। श्रीराम के निर्मल गुणों के गायन से इस युग में मनुष्य बिना अतिरिक्त प्रयास के संसार–सागर को पार कर सकता है।)

संदर्भहीन और अपूर्ण प्रसंग के उद्धरण से (पूर्ण होने पर मालूम होता कि उपरोक्त जातियों को कुछ बुरा–भला नहीं कहा गया, सिवा इसके कि वे अर्हता के अभाव में भी आश्रम व्यवस्था के सर्वोच्च चरण सन्यास में दाख़िल होकर निरक्षर, लोलुप और कामी ब्राह्मणों से पूजित हो रहे हैं) अर्द्धसत्य या असत्य भाषण सिद्धांतहीन दलीय राजनीति का सामान्य लक्षण है। इसलिए यह दुराग्रहपूर्ण अधूरा उद्धरण आश्चर्य का विषय नहीं, किंतु द्रष्टव्य यह है कि विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में दिये गये भाषण में इस रूप में इसके अधूरे उद्धरण पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जाता, उद्धरण को सप्रसंग पूरा करने का आग्रह नहीं किया जाता। ऐसे में हमारे शिक्षण जगत् की वर्तमान दशा के सम्बंध में यह चिंता का कारण अवश्य बनता है। ठीक वैसे ही जैसे हम सबके सम्माननीय और निष्ठावान रचनाकार स्वर्गीय मुक्तिबोध के यह निष्कर्ष पर कि रामचरितमानस के तुलसी वर्णाश्रम धर्म की पुनःप्रतिष्ठा के कारक बने (भाग–सात)।

ऊपर जिस तुलसी का दर्शन होता है वे वर्णाश्रम के प्रतिष्ठापक के उलट उसकी विकृति का मर्सिया–गान करते प्रतीत होते हैं। महात्मा बुद्ध ने ठीक ही कहा था, बात किसी की भी हो, बिना स्वयं जान लिये मत मानो। वस्तुतः वर्णाश्रम के क्षरण की प्रक्रिया राजपूत काल में, बल्कि उसके और पहले, हर्षवर्धन के अवसान (646–47 ई.) के उपरांत आगत अंधकार युग से ही शुरू हो गई थी, जब बाह्य आक्रमणकारी समूहों– शक, कुषाण, हूण, गुर्जर, प्रतिहार आदि– के अवशिष्ट को सनातन धारा में आत्मसात् किया गया। कबीर के समय तक उसमें काफ़ी मात्रा में छद्म, पाखंड और वर्णसंकरता का समावेश हो चुका था।

अकबर के समय में उसकी क्या स्थिति थी?

आचार्य रामचंद्र शुक्ल बेलाग लिखते हैं– "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय मे गौरव, गर्व और उत्साह के लिये वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था, और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे, न बिना लज्जित हुये सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी नहीं रह गये। इतनी भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिये भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?.....कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को सँभालने और लीन रखने के लिये दबी हुई भक्ति को जगाने लगे। क्रमशः भक्ति का प्रवाह ऐसा विस्तृत और प्रबल होता गया कि उसकी लपेट में केवल हिंदू जनता ही नहीं, देश में बसनेवाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गये। प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने लाकर भक्त कवियों ने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया और भेदभाव के दृश्यों को हटाकर पीछे कर दिया।'' (हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2025, पृ.63–64)।

तुलसी और अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना की प्रगाढ़ मैत्री और साहित्यिक रुझानों में जो अद्भुत् साम्य मिलता है, आचार्य शुक्ल के इसी निष्कर्ष का पुष्टीकरण है।

अपनी पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास' में आचार्य शुक्ल लिखते हैं– "सूर और तुलसी ने इसी भक्ति के सुधारस से सींचकर मुरझाते हुये हिंदू जीवन को फिर से हरा किया।... पहले भगवान् का हँसता–खेलता रूप दिखाकर सूरदास ने हिंदुओं की निराशा–जनित खिन्नता हटाई, जिससे जीवन में प्रफुल्लता आ गई। पीछे तुलसीदास जी ने उनका लोक–मंगलमय रूप दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया। अब हिंदू जाति निराश नहीं थी।"

तुलसी वर्णाश्रम के कवि नहीं हैं, राम की सगुण भक्ति के कवि हैं। राम, जो अंतिम सत्य, सृष्टि के आदिकारण, परमचेतन, निर्गुण, निराकर, सद्चिदानंद, अद्वैत ब्रह्म के सगुण अवतार हैं, विष्णु के नहीं। वे तो समस्त दृश्यजगत् के द्रष्टा हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नचानेवाले हैं; इसलिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उनका मर्म नहीं जानते–

जगु पेखन तुम्ह देखनहारे। बिधि हरि संभु नचावनहारे।
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा। (अयोध्या काण्ड 126–1)

यह अलग विमर्श का विषय है कि भक्ति और ज्ञान के सामंजस्य में तुलसी रामानुज और रामानंद के विशिष्टाद्वैत के बजाय शंकर के अद्वैत के अधिक निकट हैं। वस्तुतः तुलसी ने भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग के सामंजस्य में शंकर के अद्वैतवाद को भक्ति से अभिन्न सिद्ध किया। इस तरह दर्शन के धरातल पर भी एक सर्वथा मौलिक उद्भावना दी।

रामचरितमानस में कलि–वर्णन के उपरोक्त प्रसंग को तटस्थ भाव से आद्योपांत पढ़ने के बाद इस संदेह की रंचमात्र गुंजाइश नहीं रह जायेगी कि तुलसी की प्रतिबद्धता वर्णाश्रम के प्रति नहीं, सर्वसुलभ सगुण भक्ति के प्रति है, जो वर्णाश्रम का प्रत्याख्यान रचती है। वस्तुतः मानस के तुलसी और कवितावली के तुलसी में कोई तात्विक भेद नहीं हैं। तुलसी एक बेलौस, थोड़ा अक्खड़ क़िस्म के रामभक्त हैं जिनके हृदय में जाति–पाँति, वर्णव्यवस्था जैसे स्थूल तत्वों के लिए कोई स्थान नहीं। जैसा कि भाग–आठ में कवितावली से उद्धृत है, ऐसा व्यक्ति ही डंके की चोट पर कह सकता था–

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबौ, मसीत को सोइबो, लैबो को एक न दैबो को दोऊ।

सवाल है यह "भक्ति" है क्या ? सनातन धारा के दो हज़ार वर्षों से अधिक के चिंतन–मनन की निष्पत्ति। भक्ति माने मनुष्य की भाव–साधना, उसकी संकल्प–सत्ता। मनुष्य की चेतना की प्रकृति और क्षमता का विस्तार विज्ञान के लिये अभी भी रहस्यमय बना हुआ है। मनुष्य अपनी गहन भाव–साधना और दृढ़ संकल्प सत्ता से एक समांतर संसार की रचना करता है। वह संसार उसके मानस की निर्मिति होने के बावजूद उसके लिये उतना ही सत्य होता है जितना भौतिक संसार। ऑटो सजेस्चन के मनोवैज्ञानिक तत्व से भौतिक जगत का घटित भी दृढ़ संकल्प सत्ता से प्रभावित, परिचालित हो सकता है। यह मनोविज्ञान या परामनोविज्ञान की शोध का विषय है। कौन जाने, भविष्य के गर्भ में क्या–क्या छिपा बैठा हो!

(नोट– रामचरितमानस के उद्धरणों का संदर्भ गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित पुस्तक में प्रयुक्त पद्धति (हर काण्ड के दोहों की स्वतंत्र क्रमसंख्या और हर दोहे के बाद अगले दोहे तक की दो–दो चौपाइयों की इकाई की क्रमसंख्या) का प्रयोग किया गया है।)

भाग-दस

शूद्र और नारी के प्रति तुलसी की संकुचित दृष्टि का यथार्थ - ग

"अधम जाति मैं विद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ।" (उत्तरकाण्ड,105–3 का उत्तरार्द्ध)

यह काकभुशुंडि का कथन है, गरुड के साथ उनके संवाद में। इसमें काकभुशुंडि के उस पूर्वजन्म का संदर्भ है जिसमें वे अतिशय खल स्वभाव लेकर शूद्र कुल में पैदा हुये थे।

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड का लगभग दो तिहाई काकभुशुंडि–गरुड संवाद को समर्पित है जिसमें ज्ञान–भक्ति निरूपण, सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा, काकभुशुंडि के पूर्वजन्मों की कथा और कलिकाल–वर्णन के प्रसंग प्रमुख हैं। काकभुशुंडि एक काक यानी कौवा हैं और कौवा ही रहना चाहते हैं क्योंकि इसी योनि में उन्हें राम की सगुण भक्ति का प्रसाद मिला।

लंकायुद्ध के दौरान इंद्रजीत (मेघनाथ) के नागपाश में राम के बँधकर विवश हो जाने पर गरुड ने नागों को अपना आहार बनाकर राम को पाश से मुक्त किया था जिससे गरुड को मोह और अहंकार हो गया था। शंकर ने उनका मोह दूर करने के लिए उन्हें काकभुशुंडि के पास भेजा। काकभुशुंडि (संभवतः केदारनाथ के पास स्थित) सुमेरु पर्वत के उत्तर नील पर्वत पर आश्रम बनाकर रहते थे। वहाँ बरगद, पीपल, पाकड़ और आम के एक–एक विशाल वृक्ष थे। पर्वत के ऊपर एक सुंदर तालाब था। काकभुशुंडि पीपल के नीचे ध्यान लगाते थे और बरगद के नीचे हरि–कथा सुनाते थे जिसे सुनने के लिए अनेक पक्षी वहाँ आया करते थे। वे प्रेम और आदर के साथ रामकथा का गायन करते थे।

गरुड खगपति कहे जाते हैं, वे विष्णु के वाहन हैं जब कि पक्षियों में कौवे का स्थान बहुत निम्नकोटि का है, किंतु रामभक्ति की महिमा, कौवा योनि में उत्पन्न होकर भी काकभुशुंडि परम ज्ञानी हैं। काकभुशुंडि के आश्रम पहुँचते ही, वहाँ के दिव्य वातावरण से गरुड का मोह दूर हो गया। इसके बावजूद गरुड की जिज्ञासा–शांति के क्रम में लम्बा वार्तालाप चला।

कल्प (ब्रह्मा के एक दिन, रात्रि को छोड़कर) के अंत में होनेवाले प्रलय में भी काकभुशुंडि का अंत नहीं होता। उनमें इच्छामृत्यु की क्षमता है, फिर भी वे कौवे का शरीर नहीं छोड़ना चाहते क्योंकि शरीर के बिना भक्ति नहीं और भक्ति के बिना सुख नहीं। भक्ति ही वह अवस्था है जिसमें माया–मोह नहीं व्यापता। इसके पूर्व काकभुशुंडि ने अनेक जन्म लेकर अनेक कर्मकृजप, तप, यज्ञ, दानादि– किये थे किंतु काक योनि वाले जन्म में उन्हें जो सुख मिला, वह कभी नहीं मिला था।

इसी प्रसंग में काकभुशुंडि गरुड को अपने प्रथम जन्म की कथा सुनाते हैं जिसका संदर्भ उपरोक्त चौपाई में आता है। (काकभुशुंडि को अपने कई पूर्व जन्मों की स्मृति है क्योंकि शिव जी की कृपा से उनकी बुद्धि मोहाविष्ट नहीं होती– सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी।') उस जन्म के समय कलियुग चल रहा था। काकभुशुंडि एक शूद्र कुल में पैदा हुए थे। वे मन, कर्म और वचन से शिव–भक्त थे और उन्हें इस भक्ति का अहंकार था। वे दूसरे देवताओं की निंदा करते थे। सम्पत्ति के मद में चूर रहते थे, बहुत वाचाल और उग्र बुद्धि के थे। श्रीराम की राजधानी अयोध्या में रहते हुए भी उसकी महिमा से सर्वथा अनभिज्ञ थे।

एक बार अयोध्या में अकाल पड़ा। वे विपत्ति के मारे, दीन, दरिद्र और दुःखी हालत में वहाँ से पलायन कर उज्जैन पहुँचे। वहाँ कुछ सम्पत्ति अर्जित की और पुनः शंकर जी की आराधना करने लगे। वहीं उनका सम्पर्क एक ब्राह्मण से हुआ जो वैदिक विधि से शिव की पूजा करते थे किंतु विष्णु की निंदा कभी नहीं करते थे। वे बहुत दयालु और नीतिनिपुण थे। शूद्ररूप काकभुशुंडि कपटपूर्वक (ऊपर से नम्र बनकर) उनकी सेवा करते थे। उन्हें नम्र देखकर ब्राह्मण उन्हें पुत्रवत् मानकर पढ़ाते थे। उन्होंने काकभुशुंडि को शिव का मंत्र दिया और सदुपदेश दिया।

काकभुशुंडि कहते हैं, वे दुष्ट, पापमयी, दूषित बुद्धि के कारण मोहवश विष्णु–भक्त द्विजों को देखते ही जल उठते थे और विष्णु से द्रोह करते थे। उनके ब्राह्मण गुरु उनका आचरण देखकर दुःखी रहते थे, तरह–तरह से उन्हें समझाते थे किंतु उनके (काकभुशुंडि के) अतिशय दम्भी होने के कारण गुरु के समझाने पर उन्हें क्रोध आता था।

एक दिन गुरु ने काकभुशुंडि को बुलाकर उन्हें तरह–तरह से नीति की शिक्षा दी और बोले– शिव की आराधना का वही फल है जो राम के चरणो में अनुराग का। हे पुत्र, शिव और ब्रह्मा भी श्रीराम को भजते हैं, तुच्छ मनुष्य की तो बात ही क्या है! जिनके चरणों के अनुरागी शिव और ब्रह्मा हैं, उनसे द्रोह करके तुम सुख चाहते हो तो यह तुम्हारा दुर्भाग्य है।

उस समय गुरु की बातों पर शूद्ररूप काकभुशुंडि की प्रतिक्रिया बहुत उद्धत हुई थी। बहुत काल बीतने और इस बीच अनेक जन्म लेने के बाद, रामभक्ति और तज्जन्य ज्ञान का प्रसाद पा चुके काकभुशुंडि,

उस उद्धत प्रतिक्रिया की अतिरिक्त कठोरता से निंदा करते हैं और उसकी व्याख्या करते हुए गरुण से कहते हैं–

हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ।
अधम जाति मैं विद्या पाएँ। भयउँ यथा अहि दूध पिआएँ।। (उपरोक्त चौपाई, उत्तरकाण्ड, 105:3)

(गुरु ने शिव को विष्णु का सेवक कह दिया। हे खगपति गरुड़, यह सुनकर मैं क्रोध से जल उठा। अधम जाति का मैं विद्या पाकर वैसे ही हो गया था जैसे दूध पिलाने से साँप।)

इस चौपाई का कथ्य परमज्ञानी काकभुशुंडि का है। प्रसंग उनके प्रथम जन्म के उन दिनों का है जब (काकभुशुंडि के ही शब्दों में) उनकी बुद्धि दुष्ट, पापमयी और दूषित थी और वे विष्णुभक्त द्विजों से तथा विष्णु से द्रोह करते थे। लोग केवल 'अधम जाति' को ले उड़े। उस समय के काकभुशुंडि के स्वभाव की दुष्टता, उग्रता, असहिष्णुता, गुरु से कपटपूर्ण व्यवहार आदि को परे कर दिया। संदर्भहीन आक्षेप का एक और उदाहरण। आगे जो हुआ, उससे इन दो शब्दों (अधम जाति) का निहितार्थ और स्पष्ट हो जाएगा।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुरु कर द्रोह करउँ दिन राती।
अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा।
जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहि हति ताहि नसावा।
रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई।
सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा।
कवि कोबिद गावहिं अस नीती। खल सन कलह न भल नहिं प्रीती।

–उत्तरकाण्ड, 105:4–7।

(अभिमानी, कुटिल, अभागा और कुजाति मैं दिन–रात गुरु से द्रोह करता रहा। किंतु अतिशय दयालु गुरु को ज़रा भी क्रोध नहीं आया। वे निरंतर मुझे उत्कृष्ट विद्या की शिक्षा देते रहे। लेकिन क्या होता है कि नीच व्यक्ति जिससे बड़ाई पाता है सबसे पहले उसी का नाश करता है। धूम (बाष्प) ऊष्मा से ही उत्पन्न होता है किंतु बादल बनकर उसके स्रोत अग्नि को बुझा देता है। मार्ग में पड़ी धूल की कोई अस्मिता नहीं होती किंतु जब हवा उसे उड़ाती है, वह उसी में भरकर उसे मलिन कर देती है, फिर राजाओं के नेत्रों में और मुकुटों पर पड़ती है। हे खगपति गरुड़, नीच व्यक्ति की इस प्रकृति को समझकर विद्वान् लोग कभी उसका संग नहीं करते। कवियों और विद्वानों ने इसी नीति का गायन किया है कि खल के साथ न कलह ठीक है, न प्रेम।)

सारा ज़ोर यहाँ दुष्टता और कुटिलता पर है, जाति पर नहीं। दुष्टता या शिष्टता किसी जाति के विशेषाधिकार नहीं, दुष्ट और शिष्ट हर जाति में पाये जाते थे और पाये जाते हैं। कलियुग वर्णन के प्रसंग में वही काकभुशुंडि इस मुद्दे पर ब्राह्मणों की अच्छी ख़बर लेते हैं (देखिये भाग–नौ)। यहाँ दो बिंदु विशेष रूप से ध्यातव्य हैं।

पहला बिंदु, तुलसी में वैसे तो राम अद्वैत वेदांत के सच्चिदानंद, निराकार ब्रह्म के सगुण अवतार हैं किंतु सामाजिक स्तर पर तुलसी शैव–वैष्णव सामंजस्य के प्रबल पक्षधर हैं। राम स्वयं बार–बार शिव का महत्व रेखांकित करते हैं–

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न भावा।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।। (लंकाकाण्ड, 1:4)

राम ने ही सेतु–निर्माण प्रारम्भ होने के पूर्व भारत की ओर के समुद्र–तट के प्रांतर को अत्यंत रमणीक और उत्तम देखकर वहाँ (रामेश्वर) शिवलिंग की स्थापना कर विधिवत् शिव की पूजा की थी––

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाहि नहि बरनी।
करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना।
सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए।
लिंग थापि विधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा। (लंकाकाण्ड, 1:2)

और शिव जी राम को किस रूप में लेते हैं? एक बार त्रेता युग में जब शिव जी सती के साथ ऋषि अगस्त्य के आश्रम गये, वहाँ ऋषि अगस्त्य ने उन्हें विस्तार से रामकथा सुनाई थी। शिव जी सती के

साथ जब वहाँ से लौट रहे थे, राम का अवतार हो चुका था और वे लीला के क्रम में अपहृत सीता के विरह में विकल, उन्हीं की खोज में लक्ष्मण के साथ जंगल में भटक रहे थे। तभी–

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु विसेषा।
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी।
जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन।
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता। (बालकाण्ड, 49:1–2)

(उसी समय शिव जी ने राम को देखा। उनके हृदय में अतिशय और विशेष आनंद उत्पन्न हुआ। किंतु राम को (सीता–वियोग की) अटपटी स्थिति में पाकर उनसे परिचय करना शिव को उपयुक्त नहीं लगा। 'संसार को पवित्र करनेवाले सच्चिदानंद ब्रह्म, आपकी जय हो', इतना कहकर कामदेव के विनाशकर्ता शिव वहाँ से चल पड़े। कृपानिकेत शिव जी बारंबार आनंद से पुलकित होते, सती के साथ चले जा रहे थे।)

तभी सती को संदेह हुआ– माया से परे, सर्वव्यापी, अजन्मा, अगोचर, निष्काम और भेदरहित ब्रह्म क्योंकर मानव–शरीर धारणकर इस तरह भटकेंगे? शंकर ने सती के मन की बात जानकर उन्हें बहुत समझाया किंतु सती के हृदय में उनकी बात नहीं घुसी तो नहीं घुसी। तब शिव ने सती को राम की परीक्षा लेने का सुझाव दिया। वे सीता का रूप धारण कर राम के पास पहुँच गईं। राम ने उन्हें तत्काल पहचान लिया और पिता दशरथ के नाम के साथ अपना परिचय देते हुए उन्हें प्रणाम किया। फिर जंगल में शंकर के बिना अकेले घूमने का कारण पूछा। सती लज्जित होकर शंकर के पास लौट आईं। पर शंकर ने सती के इस संदेह के लिए उन्हें कभी क्षमा नहीं किया। अंततः सती को पिता दक्ष के यज्ञ–कुंड में कूदकर आत्मदाह करना पड़ा। पार्वती के रूप में पुनर्जन्म लेकर, दीर्घ काल तक घोर तपस्या करने के बाद ही शंकर से उनका पुनर्मिलन हुआ। तब जाकर शंकर ने उन्हें विस्तार से राम–कथा सुनाकर उनका मोह दूर किया। रामचरितमानस में तुलसी जो कथा रचते हैं, उसे शिव द्वारा पार्वती को सुनाई गई कथा की पुनरुक्ति घोषित करते हैं। रामचरितमानस में आता है–

संतत जपत संभु अविनासी। सिव भगवान ज्ञान गुन रासी। (बालकाण्ड, 45:2)

(कल्याणरूप, ज्ञान और गुणों के पुंज, अविनाशी भगवान् शिव निरंतर रामनाम का जप करते हैं।)

दूसरा बिंदु, ब्रह्म के सगुण अवतार राम की भक्ति में तुलसी इस क़दर निमग्न हैं कि उनके लिये जातिपाँति, वर्णाश्रम का कोई अर्थ नहीं। पीछे कवितावली के उद्धरणों से यह स्थापित हो चुका है। तुलसी के लिए जब रामभक्ति में डूबे कौवा–जैसे निम्नकोटि के पक्षी काकभुशुंडि का इतना महत्व है कि वे पक्षिराज, विष्णु के वाहन गरुड को उपदेश देने में सक्षम हैं, तो पूर्वजन्म में महज़ शूद्र के रूप मे मनुष्य होने के आधार पर उनके विरुद्ध पूर्वाग्रह क्यों होगा? ऐसा पूर्वाग्रह शबरी के प्रति क्यों नहीं हुआ, निषाद के प्रति क्यों नहीं हुआ? कोई पूर्वाग्रह नहीं, उस जन्म में मनुष्य के रूप मे काकभुशुंडि का खल, दम्भी और कपटी होना ही उपर्युक्त चौपाई के कथ्य के लिए एकमात्र निर्धारक तत्व है। उचित संदर्भ और वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में इस चौपाई के प्रसंग को देखें तो इसमें काकभुशुंडि द्वारा सदाशय गुरु के बरक्स स्वयं के लिए 'अधम जाति' का प्रयोग अतिशय विनम्रता का द्योतक है। निहितार्थ में तुलसी के लिए यह शब्द फालतू और अर्थहीन है, तुलसी की मानसिक संरचना का संकेतक तो कतई नहीं।

.... **क्रमशः – (शेष भाग अगले अंक में)**

वैश्विक परिवेश की सामाजिक-संस्कृति

डॉ. सुनील कुमार मानस*

प्रस्तावना : वैश्विक परिवेश– सीधे–सीधे वैश्वीकरण की प्रक्रिया एवं परिणाम के बनते–बिगड़ते संदर्भों को रेखांकित करता है। इसमें संपूर्ण समाज और संस्कृति के– वे समस्त आयाम संयोजित हो जाते हैं– जो औपनिवेशिक मानसिकता एवं तकनीकी उपलब्धियों के चलते– लगातार अपवर्तित हो रहे हैं, जिसे आज की भाषा में 'अपडेट होना' कहते हैं। ऐसे असंतुलित उपलब्धियों के चलते न तो समाज का संतुलन बन रहा है और न ही समाज की संस्कृति का संतुलन रेखांकित किया जा सकता है। जैसे–जैसे नई पीढ़ी आती जाती है, वह अपनी पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं में अपनी असहमति रखते हुए आर्थिक उन्नति की मानसिकता को ही श्रेयस्कर समझती है और अपनी जीवन–यात्रा के पड़ावों या सोपनो को सिर्फ आय या संपत्ति बढ़ाने तक ही– सीमित करती जाती है।

ऐसे वैश्वीकरण के परिवेश में समकालीन समाज के तरीके लगातार 19वीं सदी के शुरुआत से ही बदलते रह रहे हैं और संस्कृति की जो पूर्व अवधारणाएं रही हैं, वे भी लगातार समय के समस्त सरोकारों को स्वीकार करते हुए इस ओर मुड़ती जा रही है या मुड़ने के लिए अभिशप्त हो गई है, जिस ओर समाज बढ़ता जा रहा है और जिस तरह से बढ़ता जा रहा है, संस्कृति भी उसी के साथ– हाथ में हाथ मिलाकर चलने को विवस है। 'आलोचन दृष्टि' के अंक 18, में संपादक महोदय ने अपनी संपादकीय में लिखा है कि– "समय, संदर्भ और संवेदना की हलचल से हम बच नहीं सकते हैं। कहीं न कहीं इससे हमारा गहरा सरोकार रहता है या होता है। हम इसके बहुरंगी रंग में रंगते हुए भी इसके रंगों में परिवर्तन भी करते रहते हैं या परिवर्तन के आकांक्षी होते हैं। साथ ही इसके चिंतन एवं अनुचिंतन में नए प्रयोग एवं अनुप्रयोग भी करना– हमारे स्वभाव में शामिल हो गया है लेकिन यह चिंतन हमें सदैव नई दृष्टियों से अवगत करते/कराते हैं और विचारों की नवीन सृष्टि से भी, जिसका क्रम निरंतर चलता रहता है।

इस नवीन सृष्टि का अभीष्ट है– हमारी परंपरागत/ढ़ांचागत सोच और समझ को परिवर्तित करना। जिस तरह इतिहास, वर्तमान को प्रभावित करता है, ठीक उसी तरह वर्तमान, इतिहास को भी प्रभावित करता है। टी. एस. इलियट ने इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है कि 'अतीत ही वर्तमान को नहीं प्रभावित करता बल्कि वर्तमान भी अतीत को प्रभावित करता है।' इस प्रयोग और परंपरा के सूत्र निरंतर गतिशील होते हैं या रहते हैं, जिसे हम आज तक जिस रूप में स्वीकार करते हुए चले आए हैं, हमारा अतीत उसे उसी रूप में कभी स्वीकार नहीं कर पाया था और न ही हमारा भविष्य वर्तमान की स्वीकारोक्ति को– कभी स्वीकार कर पायेगा। अस्तु हमें जड़ बनने या बनाने की जरूरत नहीं है और न ही किसी बात को उस रूप में व्यक्त करने की, जिसमें परिवर्तित होने/करने की कोई गुंजाइश ही न हो, जो हो रहा है, वह कल वैसा नहीं होगा– इससे सभी अवगत हैं परंतु इस स्वीकारोक्ति को पूर्णतः स्वीकार कर पाना– सबके लिए संभव भी नहीं होता। यह हमारे लिए कठिन चुनौती भी है और भविष्य की प्रबल संभावना भी। संभावनाओं की तलाश ही हमारा अभीष्ठ है और अभिलक्ष्य भी।"[1] इस आधार पर कहा जा सकता है कि– वैश्विक चिंतन के विविध आयाम हैं, जो आने वाले समय में और बढ़ सकते हैं।

ऐसे में भारतीय चिंतनधारा और पश्चिमी विचारधारा को लेकर जो तमाम अंतर–विरोध है उन्हें भावी भविष्य की मानवीय दृष्टि के आधार पर पुनर्वैश्विक विचारों की स्थापनाओं पर जोर देना चाहिए और जोर देने की जरूरत भी है तभी सही दिशा की ओर बढ़ा जा सकता है। अन्यथा हम उछलते हुए भले ही कितनी ऊंचाई पर पहुंच जायें, अंततः जमीन पर औंधे मुंह गिरना ही पड़ेगा। यह केवल मनुष्य समुदाय का ही नहीं बल्कि प्राणी समुदाय के लिए भी चिंता का सबब है। अस्तु दुनिया के सभी चिंतकों को इस ओर ध्यान देते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना करके, कड़ाई के साथ अपनाना भी चाहिए और यह केवल किसी चिंतक को ही नहीं बल्कि दुनिया

*** अध्यक्ष : हिंदी विभाग, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)**

के सभी देशों के सभी लोगों को स्वीकार करना होगा, तभी जाकर कोई नया परिवर्तन संभव हो सकता है। अन्यथा प्रकृति जो हमें लगातार सुधरने के संकेत दे रही है– कहीं ऐसी जगह ले जाकर डुबो देगी, जहाँ से रास्ता तलाश कर पाना मुस्किल होगा।।

की–वर्ड : वैश्विक परिवेश समाज की अवधारणा, सामाजिक बोध, समकालीन बोध, समकालीन बोध की संस्कृति का स्वरूप और आयाम, वर्तमान में भारतीय चिंतनधारा का महत्व एवं आवश्यकता ।

वैश्वीकरण और वैश्विक परिवेश : वैश्वीकरण आधुनिक युग का सबसे संश्लिष्ट और पेचीदा शब्द है, जो बाजार या बाजारवाद से जुड़ा हुआ है। प्रो. गिरीश्वर मिश्र ने इसी बात को ध्यान में रखते हुए लिखा है कि "इस बीच बाजार ने हमारी मानसिकता पर बड़ा हमला बोला है। हर चीज, यहाँ तक कि नाते–रिश्ते भी बिकाऊ वस्तु की श्रेणी में रख कर तौले जाने लगे हैं। दूसरा प्रभाव प्रौद्योगिकी का है जिसके चलते आदमी का एक यंत्र–मानव में रूपांतरण हो रहा है। मनुष्य ने अपनी स्वतंत्रता के लिए यंत्र का आविष्कार किया परन्तु अब वही यंत्र मनुष्य को अधिकाधिक नियंत्रित करता जा रहा है। घर–परिवार में प्रसन्नता, विश्वास और शान्ति घटती जा रही है। सांस्कृतिक गुणवत्ता का विकास जिसमें जीवन समृद्ध हो और प्रकृति जीवंत हो यह बात विस्मृत होती जा रही है।"[2]

सामान्य या माना जाता है कि वैश्वीकरण का अर्थ तकनीकी व्यवस्था से जुड़ा है जिसका अभिप्राय है वैश्विक स्तर पर लेनदेन की प्रक्रिया को बढ़ावा देना और लाभ कमाना। वैश्वीकरण प्रक्रिया को ज्यादातर आर्थिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर ही देखा जा सकता है। विकास के पहलुओं के आधार पर मूल्यांकित किया जा सकता है। इसी प्रक्रिया के चलते वैश्वीकरण शब्द– श्रम, पूंज, वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रचार प्रसार आदि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अंतरराष्ट्रीय उत्पादन के गठन को भी फलित करने का द्योतक बन जाता है। हालांकि 1990 के दशक से, इस शब्द को समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नेतृत्वशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान और सांस्कृतिक अध्ययन से जोड़कर देखा जाने लगा है जो इसके अध्ययन को विस्तारित करने का काम कर रहा है।

पिछले कुछ समय से 'ग्लोबल सोसाइटी' नाम की एक नई दुनिया बनती जा रही है, जो काम की एक बदलती दुनिया को दर्शाती है जिसमें तमाम तरह के भेदभाव मिट जाते हैं जो उपभोग संस्कृति को बढ़ावा देते हुए एक नए तरह की सांस्कृतिक और सामाजिक दुनिया का निर्माण कर रही है। दुनिया में एक तरफ तो शहरी जीवन से जुड़े हुए कार्यों का विस्तार है तो दूसरी दूसरी ओर हरित क्रांति जैसे तमाम ग्रामीण आंदोलनों से भी जुड़ती है। समाजशास्त्री दृष्टि से इस पर विचार करने वालों ने लिखा है कि– "वैश्वीकरण के सभी आयाम –आर्थिक, तकनीकी, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक– एक ही समय में एक साथ आते प्रतीत होते हैं, प्रत्येक दूसरे के प्रभाव को मजबूत कर रहा है और बढ़ा रहा है। यह वैश्वीकरण की सामाजिक प्रक्रियाओं के बहुआयामी तस्वीर को प्रस्तुत करता हैं, जो किसी एक विषयगत ढांचे तक सीमित होने का विरोध भी करता है।"

वीरभारत तलवार ने लिखा है कि– "19वीं सदी की औपनिवेशिक सरकार भारतीयों को अंग्रेजी में आधुनिक शिक्षा चाहे जिस मकसद से देती रही हो, भारतीयों के लिए इसे पाने का मतलब सरकारी नौकरियाँ मिलने की उम्मीद के अलावा यूरोपीय ज्ञान–विज्ञान और आधुनिक विचारों के संपर्क में आना था। इसके जरिए वे न सिर्फ भारत में ब्रिटिश शासन के आर्थिक–राजनीतिक पक्षों को, उसकी कार्यप्रणाली और नतीजों को बेहतर ढंग से समझ सकते थे बल्कि देश की नई परिस्थितियों के बीच अपना रास्ता खोज निकालने की क्षमता भी हासिल कर सकते थे। नई शिक्षा से उन्हें शासन के विभिन्न अंगों की जानकारी के अलावा पश्चिम में उभरे लोकतंत्र, व्यक्ति की वैयक्तिकता, प्रेस के जरिए सामाजिक जागरूकता लाने के तौर–तरीकों, मौलिक नागरिक अधिकारों और धर्म बनाम नैतिकता के प्रश्नों के साथ–साथ अपनी परंपरा को विवेक की कसौटी पर जाँचने–परखने की अवधारणा भी मिली जो भारतीय नवजागरण का मूल आधार बनी।"[3]

कई बार ऐसा लगता है कि यह दुनिया को सांस्कृतिक रूप से एकरूप बनाने की भी पहल है। जिसके पीछे विकासशील देशों की 'आपसी दौड़' एवं 'आगे निकल जाने की होड़–सी' लगी रहती है। इसके समरूपीकरण और विषमीकरण" की प्रक्रियाएँ कई बार एक साथ चलती है, जो तमाम तरह के अंतर्विरोधों को जन्म देती हैं। इस प्रक्रिया में उपभोक्तावादी संस्कृति को खूब बढ़ावा मिला है जो यांत्रिक उपकरणों से लेकर के

खाद्य सामग्री तक में भी तमाम तरह के प्रयोग करके उपभोक्ताओं को लुभाती रहती है, या कहे कि जिससे मुक्त आज की पीढ़ी रह ही नहीं सकती। सभी कहीं न कहीं उसके फंदें में जकड़ते जा रहे हैं या जकड़ने को विवस है, जिसे अभिसप्त होना भी कह सकते है।

इस तरह से कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया क्रांतिकारी परिवर्तन को जन्म देती है जो तमाम तरह के प्रयोगों में जटिल भी है और हमें लाचार करने में भी। यानी जितना हम इस संस्कृति से जुड़ते जाएंगे उतना ही इस संस्कृति के आधार पर हम लाचार भी होते जाएंगे। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने एक नए तरह के समाज का गठन किया है जो आत्मनिर्भर तो है लेकिन आत्मविश्वासी नहीं। यह आर्थिक दृष्टि के आधार पर तो खूब उन्नति करती है और कराती भी है, लेकिन पारंपरिक दृष्टि से वह हमें पिछड़ा बना देती है। आज भले ही यह कहा जाता हो कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया से स्थानीय एवं क्षेत्रीय संस्कृतिया वैश्विक संस्कृति से जुड़कर एक उपलब्धि हासिल कर ले रही हैं। लेकिन सच यह है कि कि वैश्विक संस्कृति से जुड़ने के बाद उसकी स्थानीयता एवं क्षेत्रीयता प्रायः मृतप्राय ही हो जाती है, जबकि यह कहा जाता रहा है कि वैश्विक संस्कृति स्थानीयता को और क्षेत्रीयता को बनाए रखने का काम करेगी– जो पूरी तरह से अब अपवाद सा बन गया है।

आज दुनिया का कोई भी विकासशील देश भूमंडलीकरण के प्रभाव से कोई अछूता नहीं है। वैश्विक संस्कृति और भूमंडलीकरण का प्रभाव भारतीय समाज पर भी खूब पड़ा है। आज भारतीय लोगों की सोच इसी वैश्विक मिज़ाज के आधार पर ही चलायमान है, वे अपने जीवन, रुचि, फैशन, प्राथमिकता आदि भूमंडलीकरण के दृष्टिकोण के आधार पर तलाशते हैं। समकालीन सामाजिक चिंतकों की यदि बात हम माने तो यह कह सकते हैं कि वैश्विक परिवेश ने समाज में क्रांतिकारी काम किये हैं जिसने तमाम तरह के सामाजिक भेदभाव को मिटा दिया है। एक समरस और समर्थ समाज की स्थापना की है, वैश्विक स्तर पर शिक्षा की एकरूपता को उजागर किया है, एक ही तरह के सभी मनुष्यों के कानून बनाए हैं, स्कूल, शिक्षा, अस्पताल सभी के लिए उपलब्ध करवाए हैं, स्वास्थ्य आदि का ध्यान रखा है। दुनिया से भूख मिटाने का काम किया है।

ये सभी बातें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सच भी जान पड़ती है लेकिन इसके पीछे जो उनकी मुख्य मंशा है वह पूरी तरह से एक नई किस्म का बाजार तैयार करने की है जिसे हम अंग्रेजी में मार्केटिंग रहते हैं। इस मार्केटिंग के आधार पर वह यह दिखाने का काम करते हैं कि वे बहुत सारे मानवीय और मनुष्योचित काम कर रहे हैं पर इसके पीछे भी लाभ कमाने की उनकी मानसिकता बनी रहती है। या इसी बहाने वे अपना प्रचार–प्रसार करते हैं।

1960 के दशक में कनाडाई साहित्यकार और चिंतक मार्शल लोहान ने इस वैश्विक चिंतन में ग्राम शब्द को जोड़ते हैं और यह ग्राम शब्द आगे चलकर तकनीकी स्तर पर खूब फला फूला। 1990 के आसपास इस ग्राम शब्द में थोड़ी सी रफ्तार कम हुई पर 1991 के बाद जब सोवियत संघ का विघटन हुआ और अर्थव्यवस्था के खुले बाजार पूरी दुनिया में अपना प्रभाव जमाने लगे तब यह शब्द खूब प्रयोग आया और आज ग्राम से समाज को जोड़ने का भी एक बड़ा उपक्रम चल पड़ा है, जो निहायत दिखावटी है।

वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का एक नया रूप हमारे सामने लाता है। आज भारत के विविध समाजों और क्षेत्रों में ऐतिहासिक रूप से विद्यमान सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता–राष्ट्रीय पहचान को चुनौती मिल रही है। भारतीय युवाओं पर वैश्वीकरण का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में नगरीय क्षेत्र में अधिक हावी है, जिसके लिये एक गांव से दूसरे गांव, एक जिले से दूसरे जिले एवं राज्य से दूसरे राज्य में लोग पलायन कर रहें हैं। जिन लोगों ने अपने जीवनकाल में रेल तक नहीं देखी थी। आज वे यातायात के आधुनिक साधन वायुयान में भी बैठने लगे हैं। अशोक कुमार कौल इस ओर हमरा ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं कि – "सोवियत संघ के पतन के पश्चात् जब सम्पूर्ण विश्व में "सूचना–तकनीकी" और "इलेक्ट्रॉनिक–क्रान्ति" ने न सिर्फ दुनिया के विभिन्न भागों को परस्पर निकट ला दिया बल्कि इसके विभिन्न हिस्सों में नई सोच और नए–विचारों के बीजारोपण भी कर दिए और पुराने परम्परागत यूरोपीय सिद्धान्तों और उनके पैमानों को विस्थापित कर दिया। इसके दूरगामी परिणाम अब हमें संस्थानों के सिमटते अस्तित्व के रूप में देखने को मिल रहे हैं।"[4]

इसके उद्देश्यों में– ग्रामीण शिक्षित लोगों को रोजगार प्रदान करना, गरीब ग्रामीणों और महिलाओं को सशक्त बनाना, और हाशिए पर पड़े लोगों एवं किसानों को उचित मूल्य की बाजारी सुविधाएं उपलब्ध करना– है। नवीन क्षेत्रों में, भारत के तमाम संघर्ष और सहयोग के जो वैश्विक परिवर्तन चल रहे हैं, उसी के अंतर्गत विश्व बाजारों की अर्थव्यवस्था साथ एकीकरण करते हुए अपनी शाख बढ़ानी हैं और अपने राष्ट्रीय हितों का संरक्षण भी करना है, किन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से, विभिन्न देशों के वैश्वीकरण की जीवन शैली, दृष्टिकोण, पहचान, कार्य संस्कृति, पारिवारिक संरचना, मूल्यों एवं रहन–सहन आदि की आदतों का भी हम पर काफी प्रभाव पड़ा है। भारत की अर्थव्यवस्था, ज्ञान–आधारित हैं, जो जीवन और व्यवसाय से जुड़े सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान करते हुए नवाचार और विकास की ओर अग्रसर होने को प्रेरित करती है।

निष्कर्षतः वैश्वीकरण विशुद्ध अर्थवाद की अवधारणा है जिसमें तार्किकता, बौद्धिकता, धर्म निरपेक्षता आदि को बढ़ावा मिलता है। युवा धर्म, जाति, क्षेत्र, लिंग जैसे विषयों से ऊपर उठकर आर्थिक विकास की ओर अग्रसर होते है। जाति प्रथा एवं जन्म के आधार पर भेदभाव भी समाप्त करती हैं, अंतजातीय विवाह को स्वीकृति देती है और 'वैश्वीकरण के माध्यम से, व्यक्तियों को एक–दूसरे से जोड़ने की द्योतक भी मानी जाती हैं जिससे संस्कृति और विचारों का आदान–प्रदान होता है। परिणामस्वरूप हर किसी के व्यक्तिगत दृष्टिकोण और उनके आसपास की दुनिया के ज्ञान में वृद्धि भी होती है– ऐसा भी तमाम विचारकों का मानना है। किन्तु उस ओर भी ध्यान देने की जरुरत है, जिसके चलते हमारी, मानवीय संवेदना कुंद हो रही है।

इस सन्दर्भ में 'आलोचन दृष्टि' के अंक 33 की सम्पादकीय बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमे लिखा गया है कि– "जिस समय और संवेदना के दौर से हम गुजर रहे हैं– उसके कई रूप हैं, कई रंग हैं, कई आकार–प्रकार भी हैं, किंतु उसका ध्येय एक ही है– आर्थिक उन्नति। एक कहावत, जो बहु–प्रचलित है–'फूट डालो, राज करो', अब इस कहावत के नाक और नक़्शे पूरी तरह से बदल गए हैं। काम पहले जितना वह सीधे–सीधे लट्ठमार अंदाज में करती थी, उससे हटकर वह अब बहुत ही शातिर तरीके से अपना काम निकालने लगी है और इसकी पूरी अवधारणा सीधे–सीधे अब व्यापार में बदल गई है, जैसे कोई व्यापारी बड़ी–बड़ी और मीठी–मीठी बातें बनाकर या करके– अपना लाभ या नफा कमा लेता है, वैसे ही 'राज करना' भी–मुनाफा या लाभ कमाने का रूपांतरण हो गया है।"[5] वह आगे यह भी लिखते हैं कि "20वीं सदी के अंतिम दशक की सबसे बड़ी विडंबना भी यही रही है कि हर चीज आर्थिक लाभ कमाने या प्राप्त करने पर ही केंद्रित हो गयी है। ऐन–केन प्रकारेण आर्थिक लाभ होना ही चाहिए, वह चाहे जैसे भी क्यों न हो? ऐसा नहीं है इसके पहले के लोग– लाभ कमाने की पहल नहीं करते थे, करते थे, पर मर्यादाओं या सीमाओं में रहकर।"[6] इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैश्विक शिक्षा में डूबे हुए हम लोग कितना वैश्विक विचारों फंस गए हैं, जिससे उबरने की जरुरत है। हमें वैश्विक जागरूकता के माध्यम से पर्यावरण से जुड़ी हुई समस्याओं को हल करना होगा, अंतरराष्ट्रीय शांति स्थापित करनी होगा, स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाएं लागू करनी होगी, और आतंकवाद जैसी समस्याओं का समाधान करना होगा। और इसके लिए हमें विश्व के सभी देशों के साथ मिलकर समन्वित प्रयास करना होगा।

वर्तमान में हम जिस समाज में रह रहे हैं उसे उत्तर–आधुनिक समाज कहा जा रहा है जिसमें व्यक्तित्व की विविधतायें तमाम नवीनताओं के साथ दिखाई देती हैं। अर्थात् अब समाज पिछली पीढ़ियों द्वारा स्थापित सत्यों एवं मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध रहने के बजाय नई सोच के प्रति अधिक अग्रसर हुआ है और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के आधार पर लगातार परिवर्तन और विकास करना चाहता है, और यही हमारी समकालीनता है।

समकालीनता के सन्दर्भ की एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी यह है कि "समकालीनता का द्वंद्व पुरानी परंपरा से तो है ही, पर जो बिल्कुल ताजी परंपरा है, उससे भी है।"[7] समसामयिक संस्कृति– समाज की प्रवृत्तियों, प्रथाओं और मानदंडों को संदर्भित करती है। इसमें वर्तमान दुनिया के साहित्य, फैशन, संगीत, कला, तकनीकी नवाचार आदि का एक जटिल संयोजन है, जो अपने समय को परिभाषित करता है। जैसे–जैसे समाज बदलता है और नए विचार सामने आते हैं, वैसे–वैसे समकालीन संस्कृति विकसित और परिवर्तित होती रहती है। जिसमें प्रौद्योगिकी और डिजिटल आयाम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसके चलते ही वैश्वीकरण की प्रक्रिया समकालीन संस्कृति को तेजी से बदल रही है, जिसे अब कुछ विद्वान् पॉप–संस्कृति कहकर भी संबोधित करते हैं। इन बातों को जब हम ध्यान देते हैं तो हमें पं. विद्यानिवास मिश्र की बात याद आती है, उन्होंने लिखा है कि– "स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद जिस नींव को जोड़ने की प्रतिज्ञा संविधान में की गई, पर इस सच्चाई से इंकार

नहीं किया जा सकता कि सामाजिक परिवेश में निहित एकता के सूत्रों को जोड़कर नींव को सुदृढ़ करने में अभी तक हम सफल नहीं हो पाए हैं। इसीलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि उन सूत्रों की फिर से तलाश करें।"[8] और फिर हमें इस बात कि ओर भी ध्यान देना होगा कि– "समकालीन भारतीय समाज की यह एक छवि है। समाजशास्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इस समाज का अध्ययन करेंगे। पिछले अध्यायों में हमने कतिपय समाजशास्त्रीय विचारकों का विवरण दिया है। इसमें हमने कोई दकियानूसी नहीं की है। विभिन्न–विश्वविद्यालयों, और विभिन्न् प्रतियोगी परीक्षाओं ने, जिन विचारकों को अपने पाठयक्रम में सम्मिलित किया, उन्हें हमने अपने निर्वचन के लिए सम्मिलित कर लिया है। अपने इस प्रयास में हमें उन विदेशी विचारकों को भी लेना पड़ा है, जिन्होंने अपने जीवन पर्यन्त भारतीय समाज के बारे में लिखा है। हमारा उद्देश्य यह जानना रहा है कि वे विचारक जो समाजशास्त्री हैं, समाज वैज्ञानिक हैं, उन्होंने भारतीय समाज पर क्या लिखा है, उनका विमर्श क्या है। हमने विचारकों की राष्ट्रीयता पर ध्यान न देकर भारतीय समाज के बारे में, जो विमर्श है, उसका बेबाक होकर विवेचन किया है।"[9]

समकालीन समाज, संस्कृति और राजनीति देखते हुए उसके कम से कम तीन मूलभूत विशेषतायें बताई जा सकती हैं – पहला, रिश्तों के एक नेटवर्क के माध्यम से मानव अंतर्संबंध का बढ़ना जो उत्तरोत्तर पूरे विश्व को कवर कर रहा है, दूसरा, तकनीकी नवाचार द्वारा निर्धारित मानव जीवन के विकास की गति और नवीनता का प्रतिनिधित्व करती है और तीसरा, विकासवादी कारकों (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और तकनीकी) के बीच आपसी सामजस्य स्थापित करने का भी काम करती है। ये कुछ ही उदाहरण हैं, अतः ये पर्याप्त नहीं हैं। ये मूलभूत परिवर्तनों के परिणाम हैं जो अपरिवर्तनीय रूप से हमारे दैनिक जीवन, हमारे सोचने–समझने के तरीके और हमारे साथ रहने की पद्धति को– बदल भी रहे हैं। इसके जो मूलभूत परिवर्तन हैं, वे– जीवन स्थितियों में सुधार, जीवन प्रत्याशा, साक्षरता और लैंगिक समानता, घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थानों में परिवर्तन और प्राकृतिक संतुलन का टूटना– हैं। प्रख्यात् समाज–चिन्तक एलेन बी. कटलर का मानना है कि 'समसामयिक संस्कृति' 19वीं सदी के अंत से लेकर 21वीं सदी की शुरुआत के सामाजिक, आर्थिक, रचनात्मक और राजनीतिक गतिविधि आदि को परिभाषित करती है। इस तरह से संस्कृति की समसामयिकता पर यह कहना अच्छा होगा कि वैश्विक अर्थ में, हम एक सांस्कृतिक युद्ध लड़ रहे हैं जिसमें शक्तिशाली लोगों (व्लादिमीर पुतिन, शी जिनपिंग, बस्सर अल–अशद, किम जोंग–उन और उनके जैसे) ने झूठ को बढ़ावा दिया जाता है, जिसमें कुलीन वर्गों और राजनेताओं को लाभ हुआ है और सामान्यतः मानव जीवन और लोकतंत्र का नुकसान हुआ है। इसी कारण विशेष सत्तावादी देश ने 43 देशों के राजनीतिक मूल्यों पर कब्जा कर चुके हैं। 'विश्व मूल्य सर्वेक्षण' से पता चलता है कि गरीबी रेखा से नीचे प्रति व्यक्ति आय वाले किसी भी देश में लोकतांत्रिक या मुक्त संस्थान नहीं हैं। लगभग उच्च प्रति व्यक्ति आय वाले राष्ट्रों की समग्रता को लोकतांत्रिक के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, और फिर उसे पूरी दुनियां के अविकसित एवं विकासशील देशों में थोपा जाता है।

नये अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह ने पारंपरिक राजनीतिक संस्थाओं की भूमिका को बहुत कम कर दिया है। व्यक्ति और समुदाय उच्च स्तर की असुरक्षा का अनुभव करते हैं जो उनके जीवन के हर पहलू को छूती है। लोगों की बढ़ती भीड़ उन परिवर्तनों से खतरा महसूस करती है जो उनकी सामग्री (कार्य, आय, घर), मनोवैज्ञानिक (व्यक्तिगत संबंध), और सांस्कृतिक जीवन (ज्ञान और पेशेवर कौशल को लगातार अद्यतन करने की आवश्यकता के साथ) को प्रभावित करते हैं।

ऐसे प्रभावों के ही चलते एक तरफ धार्मिक उन्माद बढ़ रहा है तो दूसरी तरफ जीवन के प्रति खतरा महसूस हो रहा है। सुख, संतोष, शांति की बात किसी भी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र में दिखाई नहीं दे रही। व्यक्ति अपनी परंपरागत संस्कृति के आध्यात्मिक पक्ष से पूरी तरह से कट गया है। इस औपनिवेशिक मानसिकता में या तो जीने के लिए वह विवश है या औपनिवेशिक मानसिकता को जीने का– उसने अपना स्वभाव बना लिया है। हर एक व्यक्ति की नैतिकता का लगातार ह्रास हो रहा है और विकृत मानसिकता की ओर झुकाव बढ़ता जा रहा है। उपनिवेशवाद की दृष्टि के ही चलते उनके लिए हर चीज बिकाऊ माल की तरह लगती है, चाहे वह हमारी नैतिकता या मर्यादा ही क्यों न हो? इसी दृष्टि के आधार पर ही हमारे आदर्श, नैतिकता, मर्यादा के जितने संबंध थे, वह धीरे–धीरे खत्म हो रहे हैं या उनका खात्मा किया जा रहा है। ऐसे में अगर थोड़ी भी सुधार की कोई गुंजाइश दिखती है तो वह हमारी संस्कृति से ही। एस. एल. जोशी ने संस्कृति और समाज को जोड़ते हुए लिखा

है कि "भारतीय समाज प्रजातांत्रिक, धर्म निरपेक्ष और एकाधिक संस्कृतियाँ का समाज है। उद्योग, और सामूहिक पूँजीवाद इसके मुहावरे हैं। इसकी संरचना का निर्धारण भारतीय संविधान करता है। कोई भी सरकार हो उसकी नीतियाँ और विधान इस संविधान की सम्पत्ति के अन्तर्गत आए हैं जहाँ भी नीतियाँ संविधान का उल्लंघन करती हैं, न्यायपालिका उन्हें निरस्त कर देती हैं। यह समाज गतिहीन नहीं है। इसमें परिवर्तन की प्रक्रियाएँ बराबर चलती हैं। इसकी निरंतरता बराबर बनी रहती है इसमें परिवर्तन भी बराबर बना रहता है।"[10] वहीं दीनदयाल उपाध्याय जी लिखते हैं कि 'ज्ञान–विज्ञान और संस्कृति सभी क्षेत्रों में अपने जीवन के विकास के लिए जो भी आवश्यक होगा, वह हम स्वीकार करेंगे। विजातीय होते हुए भी शरीर के पोषण के लिए आवश्यक अनेक तत्त्वों को शरीर की सामर्थ्य के अनुसार हम स्वीकार करते हैं परिवर्तनशीलता के कारण शरीर का चमड़ा बदल जाता है, परंतु केवल नवीनता को ही आदर्श मानकर कृत्रिम तथा अस्वाभाविक उपायों द्वारा शरीर का ही परिवर्तन तो उचित नहीं। केवल नवीनता के ही पीछे चलकर तो हम अपने जीवन का सत्व को खो देंगे, हमारा जीवन ही उससे नष्ट हो जाएगा। केवल नवीनता के ही पुजारी बनकर आवश्यक अथवा अनावश्यक सभी कुछ प्राप्त करने की धुन तो बिल्कुल उचित नहीं। हम नवीनता के विरोधी नहीं और न प्राचीनता के नाम पर रूढ़ियों और मृत परंपराओं के अंध उपासक हैं।'[11]

अगर हम संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति की ओर जाए तो पता चलेगा कि संस्कृति शब्द– 'सम' उपसर्ग, 'कृ' धातु और 'ति' प्रत्यय के संयोजन से निर्मित हुआ है। जिसका आशय है– अच्छा किया गया कार्य, जो आगे चलकर परिष्कारित, परिमार्जित संस्कार युक्त कार्य में बदल गया। फिर उसी अर्थ में भूत–भविष्य के निर्माण का निर्धारक एवं नियामक बन गया। 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति का पता रोमन काल से लगाया जा सकता है। इसका मूल अर्थ आत्मा या मन की खेती था, और 18वीं शताब्दी के जर्मन विचारकों के प्रभाव के बाद ही इसे इसका वर्तमान अर्थ प्राप्त हुआ। इसी आधार पर शिवकुमार मिश्र जी लिखते हैं कि– 'संस्कृति–सम्बन्धी जिन अवधारणाओं के तहत प्रायः संस्कृति को परिभाषित किया जाता है, वे इतनी अस्पष्ट और लचीली हैं कि बजाय इसके कि हमें संस्कृति के आशय का सही बोध दें, हमें उलझाती और दिग्भ्रमित ही अधिक करती हैं। हम प्रायः या तो संस्कृति को 'आन्तरिक प्रक्रिया' की एक संज्ञा के रूप में ग्रहण करते हुए मनुष्य के मात्र बौद्धिक जीवन और कलाओं तक ही उसे सीमित कर देते हैं या फिर एक 'सामान्य–प्रक्रिया' की संज्ञा के अर्थ में उसे लेते हुए मनुष्य की समग्र जीवन पद्धति का सूचक मानते हैं।'[12] और फिर यह सच लगने लगता है कि संस्कृति– हमारे जीवन के केवल संस्कार ही नहीं हैं, बल्कि वह हमारी अस्मिता भी है।

सच कहा जाये तो 'संस्कृति' शब्द का व्यापक उपयोग किया जाता है, अक्सर इसमें शामिल कई तत्वों की समझ का अभाव होता है। यूनेस्को के अनुसार, "हम लोगों के व्यवहार, नैतिक मूल्यों और मानवीय संबंधों के संबंध में संस्कृति की बात करते हैं। हम इसे समाज या एक निश्चित सामाजिक समूह के हितों के लिए उपयोगी माने जाने वाले कार्य, व्यवहार और दृष्टिकोण से देखते हैं। संस्कृति शब्द के साथ कई परतें जुड़ी हुई हैं, और इसलिए इसे अक्सर संस्कृति के विभिन्न तत्वों की पहचान करने में सक्षम बनाने वाली संकीर्ण परिभाषाओं वाली श्रेणियों में उप–विभाजित करता है। ऐसा एक वर्गीकृत भौतिक और गैर–भौतिक संस्कृति भी हो सकती है, पहले में कला, वास्तुकला आदि शामिल हैं, और दूसरे में विश्वास प्रणाली, मिथक, किंवदंतियाँ आदि शामिल हैं।

भारतीय संस्कृति के गुण सतत प्रवाहित हैं। कई सदियाँ चली गईं, कई बदलाव हुए, कई विदेशी आक्रमणों का सामना करना पड़ा, लेकिन भारतीय संस्कृति की रोशनी आज भी लगातार नक्षत्र की भांति चमक रही है। भारतीय संस्कृति को उसके सांस्कृतिक स्वरूपों को देखकर समझा जा सकता है। सांस्कृतिक विविधता के साथ–साथ एकता का अनन्यतम स्रोत भी है। यह सामूहिक पहचान की द्योतक है। अध्यात्म जिसकी आत्मा है। धर्म जिसका केन्द्रीय स्थान है। वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, गीता, आगम, निगम, त्रिपिटक आदि इसके प्रमाण हैं। इन ग्रंथों में आशावाद, आस्तिकता, त्याग, तपस्या, संयम, सदाचार, सत्य, करुणा, सहनशीलता, क्षमा आदि का विकास होता है। इतिहासविद कोसम्बी का कहना है– 'कुछ लोग संस्कृति को धर्म, दर्शन, कानून, व्यवस्था, कला, संगीत आदि के साथ जोड़कर नितान्त बौद्धिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के रूप में ही ग्रहण करते हैं। कभी–कभी इसका विस्तार करके शासक वर्ग के शिष्टाचारों को भी इसमें समावेश कर लिया जाता है। इन पंडितों के मतानुसार इतिहास ऐसी ही संस्कृति पर आधारित है और इतिहास में केवल इसी संस्कृति का विवरण होना चाहिए। परन्तु इस प्रकार की संस्कृति को इतिहास का प्रेरणा–स्रोत मानने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। जबकि

पं. विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं कि– भारतीय संस्कृति को उसके अतीत से नहीं, उसकी वर्तमानता से पहचानना अधिक जरूरी है। विशालता के प्रवाह में निश्शेष समर्पण का जब कोई समन्वय रहता है तो मुझे बहुत भय लगता है। लोग कहते हैं, भारतीय संस्कृति हिंदू संस्कृति नहीं, मुस्लिम संस्कृति नहीं, बौद्ध संस्कृति नहीं, सामासिक संस्कृति है।[13] वह दूसरी जगह यह भी लिखते हैं कि– हर संस्कृति का इतिहास–बोध उसके काल–बोध से जुड़ा हुआ है।[14] इस तरह वे संस्कृति की आत्मा को खोजते हुए मनुष्य के मानुष–भाव को जागृत करने का काम करते हैं, जो लोक–हित के लिए प्रेरणा प्रदान करने वाला है।

भारत में आत्म–अभिव्यक्ति को ही जीवन का मूल स्वाभाविक गुण माना गया है। इसलिए मनुष्य का अंतिम लक्ष्य भौतिक सुख–सुविधा नहीं बल्कि आत्म–साक्षात्कार है।

यह संस्कृति धर्म या नैतिक कर्तव्य पर जोर देती है। ऐसा माना जाता है कि अपने अधिकार का दावा करने के बजाय अपनी कर्तव्यनिष्ठा का पालन करना ही महत्त्वपूर्ण है। यह अपने कर्तव्य और दूसरे के अधिकार के प्रति जोर देती है। इस प्रकार, भारतीय संस्कृति व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और स्वावलंबन के बजाय अन्योन्यश्रिकता को बढ़ावा देती है। भारतीय संस्कृति में सुख–सुविधाओं का पालन करके अपने धर्म का पालन किया जा सकता है और इस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति का पालन करना, जीवन धर्म के सिद्धांतों का पालन करना है। जिसके चार अभिलक्ष्य हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसके संकल्प, जीवन के सुखों से जुड़ें हैं। मोक्ष अंतिम लक्ष्य है। भारत की संस्कृति सहिष्णु, मिलनसार, गहन रूप से आध्यात्मिक और सामान्य मानव कल्याण से संबंधित है, और इन्हें प्राप्त करने के प्रयास भी हैं। यह समृद्ध विरासत गर्व की अनुभूति कराता है।

संस्कृति को परिभाषित करना कभी भी आसान नहीं रहा है और न ही हो सकता, क्योंकि इसकी कोई स्थिर परिभाषा मौजूद नहीं है। बल्कि, यह एक निरंतर विकसित होने वाली, गतिशील इकाई है, जो लोगों के एक निश्चित समूह की संपूर्ण जीवनशैली की विशेषता को रेखांकित करती है।

पश्चिमी संस्कृति शब्द यूरोपीय देशों के साथ–साथ उन देशों की संस्कृति को परिभाषित करता है, जो संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे यूरोपीय प्रवासन से काफी प्रभावित हैं। पश्चिमी संस्कृति की जड़ें ग्रीको–रोमन युग के शास्त्रीय काल और 14वीं शताब्दी में ईसाई धर्म के उदय से जुड़ी हैं। पश्चिमी संस्कृति के अन्य घटकों में लैटिन, सेल्टिक, जर्मनिक और हेलेनिक जातीय और भाषाई समूह शामिल हैं। आज विश्व के लगभग हर देश में पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

जैसे–जैसे लोग एक–दूसरे के साथ बातचीत करते हैं, संस्कृतियाँ या सांस्कृतिक मूल्य लगातार विकसित होते रहते हैं। इसमें मूल्यों और जीवन के भौतिक तरीकों का मिश्रण होता है, और इस प्रकार संस्कृति दोनों प्रक्रियाओं से खुद को बदलती है– एक, जब यह परिवर्तन को समायोजित करती है, और दूसरी, जब यह परिवर्तन का विरोध करती है। विविध प्रकार के समाजों के बीच संपर्क ही संस्कृति को सबसे अधिक प्रभावित करता है और यह संपर्क बढ़ रहा है। आज, सांस्कृतिक मिश्रण की सीमा ऐसी है कि दुनिया भर में कई स्थानों पर महानगरीय संस्कृति उभरकर सामने आयी है, जहाँ जातीयता में तमाम भेद होने के बावजूद सांस्कृतिक मूल्यों के एक सामान्य सूत्र में सभी बंधते जा रहे हैं।

निष्कर्षतः भारतीय संस्कृति के विषय में यह कहा जा सकता है कि 'भारतीय संस्कृति में सहिष्णु जीवन दृष्टि का इतना व्यापक आधार किसी दूसरी सभ्यता और संस्कृति में दुर्लभ है।'[15] इस तरह से बात स्पष्ट हो जाती है कि जिस तरह से भारतीय संस्कृति स्वयं को विसर्जित कर देने की क्षमता रखती है, वह ताकत दुनिया के किसी संस्कृति में नहीं है। इसीलिए वह सत्–चित्–आनंद की संस्कृति है और सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की भी संस्कृति हैं। वह चिंता से आनंद तक की यात्रा करती है, और चिन्मय रूप बन करके खुद आनंदित होती है और दूसरों को भी आनंदित होने देती है या दूसरे भी आनंदित होते हैं।

निष्कर्ष : इस तरह से वैश्विक परिवेश में जो समकालीन समाज है, और जो उसकी संस्कृति है– के विविध फलकों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है, जिससे एक बात यह स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय संस्कृति समूचे समाज की हर एक इकाई को महत्व देते हुए, उसे आपस में जोड़ने का काम, निस्वार्थ भाव से करती है, जबकि दुनिया की– जो अन्य संस्कृतियाँ हैं– उनमें हर तरह का स्वार्थ समाहित रहता है। भारतीय संस्कृति के इसी

निःस्वार्थ भाव को ही ध्यान में रखते हुए पं. विद्यानिवास मिश्र ने इसे रस की धारा कहा है। वह लिखते हैं कि ''भारतीय जन–जीवन में रस की धारा कभी सूखी नहीं। यही कारण है कि भारतीय वाङ्मय में रस की अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा है, रस की सुखद निष्पत्ति है। रस का उद्रेक ही परमतत्त्व है–''रसौ वै सः''। प्रकारान्तर से भारतीय परम्परा की सबसे बड़ी विरासत है– जीवन में रस की तलाश।''[16]

इस रस को पूरे विश्व में बनाने या फैलाने का काम आज अगर कोई संस्कृति कर सकती है तो वह भारतीय संस्कृति ही कर सकती है। वही प्रेरणा दे सकती है। वही मनुष्य के अन्दर मानुष–भाव जागृत कर सकती है। इसी संदर्भ को ध्यान में रखते हुए 'आलोचक दृष्टि' के अंक 32 की संपादकीय में लिखा गया है कि "शिक्षा और संस्कृति– भारतीय चिंतनधारा के समांतर चलने वाली वैचारिक–प्रक्रियाओं का नाम है, जो परस्पर आपसी जुड़ाव रखते हुए जन–मानस में या मनुष्य–मनुष्य में आपसी–सामंजस्य बनाये रखने की पहल करती है और निःस्वार्थ यह सन्देश देती हैं कि बिना आपसी सद्भाव, प्रेम, लगाव, भाईचारा के– सार्वभौमिक उन्नति नहीं की जा सकती। साथ ही भारतीय साहित्य और शिक्षा हमेशा 'स्व' के विसर्जन पर ही जोर देती है। इसमें त्याग है, तपस्या है, जप है, तप है, ध्यान है, योग है तथा समग्र मानवीय–भावबोध की जागृति भी है और इस जागृति के लिए समानांतर पहल–दर–पहल की भरसक कोशिश करने वाली– पारंपरिक वृत्ति भी है।"[17] यही वृत्ति ही हमारे अन्दर मानवीय भाव–बोध जागृत कर सकती है। अंत में–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

सन्दर्भ–सूची :–

1. 'आलोचन दृष्टि', वर्ष–5, अंक–18, अप्रैल–जून, 2020।
2. सभ्यता विमर्श का समय, गिरीश्वर मिश्र, प्रलेक प्रकाशन, थाने–महाराष्ट्र, वर्ष 2023, पृ– 115।
3. रस्साकसी : 19वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रान्त, वीरभारत तलवार, सारांश प्रकाशन, दिल्ली –2012 पृष्ठ– 119।
4. समाजशास्त्र का भारतीयकरण – अशोक कुमार कौल, रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली संस्करण 2005, पृ– 5।
5. 'आलोचन दृष्टि', वर्ष – 08, अंक– 33, जुलाई–सितम्बर, 2023।
6. वहीं।
7. संस्कृति की सत्ता संपादक दया निधि मिश्र, प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृष्ठ– 33।
8. भारतीय परंपरा और भारत, विद्यानिवास मिश्र रचनावली –14, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2023, 259।
9. भारतीय सामाजिक विचार, एस. एल. जोशी रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ– 266।
10. भारतीय सामाजिक विचार, एस. एल. जोशी रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ– 265।
11. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय (खंड एक) डॉ. महेशचंद्र शर्मा प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली 2017, पृ– 303।
12. साहित्य : इतिहास और संस्कृति, शिवकुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ– 177।
13. भारतीय परंपरा और भारत, विद्यानिवास मिश्र रचनावली –16, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2023, पृष्ठ –134।
14. भारतीय परंपरा और भारत, विद्यानिवास मिश्र रचनावली –14, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2023, पृष्ठ –263।
15. संस्कृति की सत्ता, संपादक दयानिधि मिश्र, प्रतिभा प्रतिष्ठान प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृष्ठ– 84।
16. भारतीय परंपरा और भारत, विद्यानिवास मिश्र रचनावली –14, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2023, पृष्ठ– 15।
17. 'आलोचन दृष्टि', वर्ष– 08, अंक– 32, अप्रैल–जून, 2023।

अलका सरावगी के कथा साहित्य में धार्मिक मान्यताओं से संघर्ष

डॉ. मीनाक्षी गुप्ता*

धर्म का संबंध जीवन की उत्पत्ति के साथ से जुड़ा हुआ है। धीरे–धीरे समाज में धर्म इतना हावी हो गया कि बिना धर्म के जीवन की कल्पना करना मुश्किल बन गया। भौतिक जीवन को यदि कोई नियंत्रित कर सकता है तो वह है धर्म, धर्म एक ऐसी प्रणाली है जो प्रत्येक मनुष्य पर लागु होती है और लागु ही नहीं बल्कि उसे मानना भी जरुरी है। धर्म मनुष्य को मानवीय आचरण के लिए प्रेरित करता है, जिस कारण मानवीय मूल्यों का संयोजन होता है। धर्म का आधार लेकर जो मूल्य बनते हैं, उन्हें धार्मिक मूल्य कहा जाता है। धार्मिक मूल्य किसी एक धर्म या किसी देश के लोगों के लिए नहीं होता है बल्कि पूरे समाज के लिए होते है। धार्मिक मूल्य को जिस रूप में समाज में संचालित करना था वैसा संभव नहीं हो पाया और कुछ धर्म के ठेकेदारों की वजह से धर्म और धार्मिक मूल्यों का रूप परिवर्तित होता चला गया, इनमें अंधविश्वास, साम्प्रदायिकता, असहिष्णुता, मान्यताएं, विचारधारा आदि है। लेकिन धीरे–धीरे आधुनिक युग के उदय के साथ ही धर्म के नाम पर बेवकूफ बनने की जगह तर्क का उदय हुआ जिसने समाज को देखने के नजरिये में बदलाव किया।

साहित्य और धर्म का संबंध बेहद पुराना और अटूट है। हिंदी साहित्य धर्म से अछूता कभी नहीं रहा है और आरंभ से लेकर अभी तक धार्मिक मान्यताओं के कारण समाज के संघर्ष को बखूबी दिखाया है। भक्तिकाल तक ज्यादातर कवियों का उद्देश्य अपने आराध्य के प्रति साहित्य के द्वारा अपनी भक्ति को दर्शाना था। वहीं रीतिकाल तक आते–आते भक्ति एक माध्यम भर रह गया। धर्म जीवन को सुगम बनाने में सहायक रहा है मगर वक्त के साथ इसकी व्याख्या बदलती गयी। धर्म जहाँ मनुष्य के जीवन को सही दिशा में अग्रसित करता था, वही धीरे–धीरे लोगों को बरगलाने का भी काम शुरू कर देता है। साहित्य और धर्म को दो किनारों पर लाने का श्रेय नवजागरण काल को है जिनमें सभी चीजों का मूल्यांकन एक नए सिरे से शुरू होता है। नवजागरण काल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्कवादी नज़रिए ने धार्मिक विश्वास और आस्था की नई व्याख्या समाज के समक्ष प्रस्तुत की है। जिस वजह से साहित्य का विषय धर्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा न रहकर सीधे–सीधे मनुष्य को केंद्र में रखते हुए मानवीय मूल्यों और उसके जीवन संघर्षो को सामने लाता है।

हिंदी साहित्य में जिसे हम आधुनिक काल कहते हैं वह पूरी तरह से मनुष्य–सत्ता और ईश्वर–सत्ता के विच्छेद का युग है। इस युग में रचनाकारों के विषय का केंद्र मनुष्य, देशप्रेम, और प्रकृति है। इसके बावजूद भी धर्म आज एक बड़े जनमानस को प्रभावित करते हुए आगे बढ़ रहा है। अलका सरावगी ने अपने कथा साहित्य में धार्मिक मान्यताओं से समाज कैसे संघर्ष करता है इसे बखूबी दिखाने का काम किया है। 'कहानी की तलाश में' कहानी संग्रह में 'एक व्रत की कथा' नामक कहानी में कहानी की नायिका अपने पति और ससुर से पहले खाना खा लेती है, इसलिए उसकी माँ उसे औरतों के धर्म के विषय में समझाते हुए कहती है, "औरतों का धर्म पुरुषों से पहले खाना नहीं है और इससे वे पाप की भागी बनती है।"[1] दरअसल धर्म की कसौटी पर केवल स्त्रियों को बांधने का कार्य किया गया है और पुरुषों को इससे स्वतंत्र रखा गया है। इसी कहानी में आगे एक सेठ–सेठानी की कहानी आई है। वे छः बरस की पूजा करने की तैयारी कर रही है। उन्होंने एक तालाब बनवाया था परन्तु बारह वर्षों से उसमें पानी नहीं भर रहा था। उसका कारण पूछने पर पंड़ितों ने उसे अपने सात पुत्रों में से किसी एक की बलि देने को कहा और उस सेठानी ने उस बात को मानकर उसमें से एक की बलि दे दी। बलि के बाद तालाब में पानी भर गया और वे लोग तालाब की पूजा करने लगे। फिर चमत्कारिक रूप से दोनों बछड़े जीवित हो उठे और फिर सेठानी का पोता जीवित होकर आया और बोला, "दादी मेरा भी फुदकड़ा करो। तब से उस दिन बछवास माता का व्रत रखते हैं। इस

*** एसोसिएट प्रोफेसर, श्री अरबिंद महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

दिन गरम खाना नहीं खाते। गेहूँ और धान भी नहीं खाते। हमारे हिन्दू धर्म में मनुष्य की मृत्यु के बाद उसका श्राद्ध करना आवश्यक माना जाता है।"[2]

'कलि कथा–वाया बाइपास' के नायक किशोर बाबू मारवाड़ी समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। खुद अलका सरावगी का संबंध मारवाड़ी परिवार से रहा है। वो मारवाड़ी समाज को बेहद करीब से जानती है। इस समाज की खूबियों एवं कमियों को बेहद ईमानदारी से अपने उपन्यास 'कली कथा वाया बाइपास' में किशोर बाबू के माध्यम से दिखाने का काम किया है। किशोर बाबू की माँ देवी–देवताओं को मानती है। वह उन्हें शनि देवता को दान करने के लिए कहती है। किशोर बाबू का मित्र शांतनु मारवाड़ी लोगों के अंधविश्वासों का मजाक उड़ाता है– एक जगह कहता है, "तुम लोगों के दिमाग पर मरुभूमि अकाल की छाया हमेशा के लिए पड़ गई है। अकाल माने जानते हो ? अ–काल यानी वह काल जो तुम्हारे मन के अनुरूप न हो। तुम लोग हमेशा भविष्य के लिए आशांकित रहते हो, इतने अंधविश्वासी होने का कारण भी वही है। यह मत करो, वह मत करो, यह करोगे तो ऐसा हो जायेगा।"[3] किशोर बाबू के परदादा रामविलास और हैमिल्टन साहब आपस में बातें करते, हैमिल्टन साहब के आर्य समाजियों के विषय में रामविलास गंभीर होकर कहते हैं, "आर्यसमाजियों का यज्ञ, हवन, संध्या यह सब सुंदर और पवित्र है, पर मेरी आँखों में कृ ष्ण–राधा का रूप बसा है। उसके बिना मेरा कोई धर्म नहीं है। आर्य समाजियों की बातें ठीक है, लेकिन जिन वेदों–उपनिषदों की वे पूजा करते हैं, उनकी रक्षा उन्हीं मंदिरों और मंदिरो की मूर्तियों के कारण बनी हुई है, जिनसे उन्हें परहेज है। कृष्ण कहते ही मेरे मन में कृष्ण के तरह–तरह के रूप सामने आ जाते हैं। माखन और कृष्ण, बाँसुरी बजाते कृष्ण, राधा के साथ रास करते कृष्ण और अर्जुन को उपदेश देते कृष्ण। यह एक ऐसा संस्कार है जिसकी जड़े मेरे अंदर कितनी पीढ़ियों पीछे कहाँ तक फैली है। मैं खुद नहीं जानता। तब मैं उसे क्यों छोड़ूं ? उस रूप को ?"[4] किशोर बाबू ने एक बार एक डरावना सपना देखा था। वह न तो शांतनु को और न ललित भैया को वह बात बता पा रहा था क्योंकि वे दोनों ही उसका मजाक उड़ाते। उसे लगता है कि शांतनु उसे कहेगा कि, "क्या कह रहे हो तुम, किशोर ! हजारों साल की इस गहरी नींद से अब तो उठो। हिन्दुस्तान की महाजाति के अब जागने का समय है दोस्त। भूत–प्रेत, हनुमान, पीर–फकीर आदि सब बातें अब छोड़ दो। इन्होंने हमें बहुत धोखा दिया है। अब हमें सब से मुक्त होना है।"[5]

किशोर बाबू एक बार चिट्ठी लिखने बैठते हैं और कई सारी चिट्ठियाँ के लिखे कागज कूड़ेदान में फेंकते हैं। यह देख किशोर बाबू की पत्नी को लगता है कि वो उनके ड्राईवर को चिट्ठी लिख रहे हैं और वे उस पर पूछ भी लेती है, परन्तु किशोर बाबू कहते हैं कि वे उनके ड्राईवर को नहीं अपितु बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु को चिट्ठी लिख रहे हैं। यह सुनकर उनकी पत्नी तुरन्त हनुमानजी से वादा करते हुए कहती है, "हे भगवान, अब यह क्या नई बला है ? हे हनुमानजी महाराज, ये ठीक हो जाए तो सवा मन का चूरमा सालासर में चढ़ाऊँगी।"[6] किशोर बाबू की पत्नी को लगता है कि इस समस्या से उन्हें हनुमान जी ही अब बचा सकते है। इस पूरे उपन्यास में धर्म से संघर्ष करते हुए किशोर बाबू और उसके परिवार को अलका सरावगी ने बेहद सटीक ढंग से दिखाया है।

बंगाल में मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने 'डायरेक्ट एक्शन डे' (16 अगस्त, 1946) की घोषणा की थी उस समय पूरे देश में हिन्दू मुस्लिम दंगे हुए थे और भयंकर खून–खराबा हो गया था। किशोर बाबू अपने मित्र अमोलक को याद करते हुए सोचते हैं, "क्या धर्म की दीवार इतनी मजबूत है कि उसमें खिड़कियाँ बन नहीं सकती ? तो क्या एक दुनिया ऐसी ही बनानी होगी जहाँ एक जैसे आदमी के साथ रहे।"[7] धर्म की दीवार में खिड़की बनाना कितना मुश्किल काम है, इसे अलका सरावगी समझाने का काम किशोर बाबू के माध्यम से करती हैं। 'जानकीदास तेजपाल मेनशन' में भी अलका सरावगी ने धर्म पर कटाक्ष किया है। इस उपन्यास के नायक जयदीप अपने बचपन के मित्र मिंटु चौधरी के साथ 'धर्म और राजनीति' के विषय में बातें करता है। मिंटु चौधरी धर्म को व्यवसाय और पैसा कमाने का माध्यम मानता है। हमारे देश में प्रत्येक व्यक्ति धर्म को लेकर बहुत ही सजग रहता है, फिर चाहे वह अमीर हो या गरीब। धर्म सभी के लिए उतना ही अनिवार्य और जरुरी है, "गरीब आदमी के पास खाने को भरपेट रोटी हो न हो, वह भी हनुमान बाबा के आगे कुछ सिक्के डालकर ही आता है। पंचमुखी बालाजी कभी तो उसकी सुन ही लेंगे

और सुनते भी है, तुम मानो या न मानो।"[8] मिंटु चौधरी आगे कहता है "इस तरह के आयोजनों की एक सीमा है। तुम रोज–रोज कोई ऐसे शिबिर नहीं लगा सकते। है कि नहीं ? धर्म का काम बारह–मासी काम है। चलो ठीक है, तुम यह ब्लड डोनेशन कैम्प भी करते रहो। कोई–न–कोई पार्टी में तुम्हें घुसना ही है। तब यह सब किया हुआ बहुत काम आएगा।"[9] जयदीप जिस राजाराम बाबू के यहाँ काम करता था वे भी अंधविश्वास में फँसे हुए थे। वे अपने यहाँ जिसे भी रखते उसकी जन्म पत्रिका की जाँच कर के ही रखते और अगर किसी के जन्म पत्रिका में राजयोग होता तो वे उसे काम पर नहीं रखते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि ये मेरी ही मदद से आम इंसान से बड़ा आदमी जाएगा और मेरा नुकसान करेगा। लोग बेईमानी का काम भी धर्म का सहारा लेकर इस समाज में करते हैं, ताकि वो पाप से बच सकें। यही बात वे जयदीप को समझाते हुए कहते हैं कि "अगर तुम्हारी जन्मपत्री में राजयोग होता, तो तुम मेरे पास इतने साल रहते ? तुम कब के छिटक गए होते। मेरा हर मैनेजर बिना राजयोग वाला होता है। नहीं तो वह सबसे पहले मुझे ही लूटेगा। इसीलिए गुरुजी को हर आदमी रखने से पहले पूछता हूँ। ऐसे ही हर कम्पनी या फैक्टरी की भी एक जन्मपत्री होती है। यदि उसकी तकदीर में पनपना लिखा ही नहीं, तो मेरा राजयोग भी उसे चला नहीं पाएगा। उस जन्मपत्री को 'वास्तु' कहते।"[10]

अलका सरावगी के 'दूसरी कहानी' कहानी संग्रह में 'एक पेड़ की मौत' कहानी में कथा नायक के दफ्तर के सामने एक पेड़ के काटने से वह बहुत दुखी हो जाते हैं। वे कब से उसका श्राद्ध करना चाहते थे, आखिर में उस पेड़ का श्राद्ध कर ही देते हैं, "जगन्नाथ बाबू ने उस पेड़ की द्वादशी को– श्राद्ध किया। इस संसार में प्रियजनों की मौतें होती है तो हमारे यहाँ बारह दिन की बैठकें होती है, जिनमें मातमपुरसी करनेवालों की आवभगतु, घर की सफाई, पूजा, विधि–विधान और भोजन का प्रबंध करने में सब मशगुल रहते हैं। जगन्नाथ बाबू ने इन बारह दिनों में न कुछ ने खाया, न पिया।"[11]

धर्म समाज की बहुत बड़ी इकाई है और धर्म के साथ ही जाति मनुष्य के पहचान का सबसे बड़ा कारण है। भारत एक ऐसा समाज है जहाँ मनुष्य की पहचान उसकी जाति और धर्म से होती है। अलका सरावगी ने अपने कहानी 'आक एगारसी' में नायक के माध्यम से इस जातीय एवं धार्मिक व्यवस्था पर कटाक्ष किया है, "हाँ, मुझे मालूम था कि आप यही सोच रहे होंगे कि मैं किस जाति का हूँ, किस धर्म को मानता हूँ, पर मैं जहाँ से आया हूँ वहाँ हमने जाति–धर्म के सभी पहचान चिह्न खत्म कर दिए हैं। हमारे यहाँ हर व्यक्ति एक व्यक्ति है और उसके नाम में अपने माता–पिता का दिया हुआ कुछ भी नहीं होता। हमने पुराने लोगों की गलतियों में सुधार कर लिया है।"[12]

'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर' कहानी में अंजलि चौधरी जिसकी एक सहेली परवीन अख्तर मुस्लिम है, वे दोनों कॉलेज से ही एक–दूसरे की खास सहेलियाँ थी। परवीन अख्तर को एक अच्छे जगह में घर लेना था, जैसा कि वह मुस्लिम थी इसलिए उन्हें मकान मिलने में परेशानी हो रही थी। यह हमारे समाज का एक बहुत बड़ा सच हैं, जिसे दूसरे धर्म के लोग अनजाने में ही बहुत ज्यादा झेलते हैं। वह देश का होकर भी हमेशा अनजान की तरह जीते हैं। अंजलि को परवीन घर ढूँढ़ने के लिए कहती है, अंजलि उसके मामा से जब यह बात कहती है तब उसके मामा उसे मकान दिलाने के लिए हां भी कर देते हैं, परन्तु जैसे ही उन्हें पता चलता है कि अंजलि की सहेली मुस्लिम है तो वो अंजति को कहते हैं– "नहीं होगा तुम्हारा काम। मेरा दोस्त तो एकदम बिगड़ गया मुझ पर। कहने लगा तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया, जो मुझसे ऐसी बात पूछ रहे हो। तुम्हारी भांजी से कहो ऐसे वैसे लोगों से दोस्ती न रखे। ऑल मुस्लिम आर फेनैटिक्स (सारे मुसलमान कट्टर धर्मांध होते हैं), वह नहीं जानती क्या।"[13]

धर्म का संबंध मनुष्य के जीवन से तो जुड़ा ही होता है साथ ही साथ उसके पिछले जन्म के साथ भी जुड़ा होता है। जब मनुष्य का समय अच्छा नहीं चलता है तो बार–बार अपने मन को सँभालने के लिए ये कहता है कि ये सब पिछले जन्म का कर्म है जो इस जन्म में भोगना पड़ रहा है। 'कोई बात नहीं' उपन्यास में अलका सरावगी ने इसी बात को नायक शशांक के पापा के माध्यम से दिखाने का काम किया किया है। शशांक के पिता को जिंदगी में बहुत यातनाएँ सहन करनी पड़ी थी, "पापा की जिंदगी की समझ

सरल है क्योंकि वह एक रास्ता जानती है प्रार्थना का। पापा का ईश्वर भी सरल है क्योंकि उन्होंने दादी की इस बात को मान लिया है कि वह ईश्वर किसी पूर्वजन्म में किए गए किसी पाप का दंड इस जीवन में देता है और आदमी को दंड भोगना ही पड़ता है। इसलिए आदमी के पास एक रास्ता बचता है कि वह प्रार्थना करे, ताकि किसी दिन उसे अपने किए हुए से मुक्ति मिल जाए।"[14] इसी उपन्यास में शशांक अपना निश्चय पक्का कर कहता है कि, "अब हद हो गई है। मेरी यह हालत बना दी है तुम लोगों ने। क्या क्या टोने–टोटके करवाए मुझ से। कितनी पाठ पूजा करवाई मुझ से। कौन कौन–से पितरों की मन्नतें नहीं मनवाई। कहीं भूल हुई थी शादी के वक्त। कोई पितर नाराज हो गए होंगे। किस किस मंदिर मुझे नहीं भटकाया। कहाँ–कहाँ की जात नहीं दिलवाई। कितने कुलदेवता, सतियों के आगे नाक नहीं रगड़वाई। मैंने सब किया। अपने बच्चे के लिए। हर ईंट– पत्थर तक को पूजा।"[15] लोग धर्म के नाम पर अंधविश्वास में इतना फंस गए हैं कि उन्हें समझा पाना बेहद कठिन हैं, उन्हें लगता है कि हर समस्या का हल धर्म के अंधविश्वास से संभव है।

समाज कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाए वैज्ञानिकता कितनी ही हावी क्यूं न हो जाए लोग तकनीक के सहारे ही क्यों न जीने लग जाए लेकिन आज भी वो अन्धविश्वास में फंसे हुए है। पर कुछ लोग इस अंधविश्वास को दूर करने का काम बेहद ईमानदारी से करने में लगे हुए है। 'एक ब्रेक के बाद' की कथा यह एक कॉरपोरेट सेक्टर पर आधारित है। जिसका नायक के.वी. का एक दोस्त रंगनाथन हमेशा अंधविश्वासों के विरूद्ध था। के.वी. यह सोचता है कि, "यह सब ज्योतिष गृह रत्न विज्ञान और आई. टी. के युग में इंडिया को पीछे धकेलने की साजिश के अलावा कुछ नहीं है।"[16] साथ ही इस उपन्यास में दूसरे धर्म के ऊपर हास्य व्यंग्य भी किया गया है। के.वी. के एक और मित्र विवेक देवराय के बीच धर्मपत्नी को लेकर बातें होती है। विवेक 'धर्मपत्नी' शब्द को लेकर पुराने चुटकुले सुनाता है। वह कहता है, "वैसे तो मैं तो कहता हूँ कि हिन्दू धर्म के अनुसार हमारे यहाँ भी चार पत्नियाँ रखने का अधिकार होना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हमारे यहाँ जीवन के चार पुरुषार्थ बताए गये हैं। धर्मपत्नी तो ठीक बाकी पत्नियाँ कहाँ गई।"[17]

इस प्रकार हमारे देश में जहाँ विज्ञान लगातार प्रगति कर रहा है वहीं दूसरी और कई लोग अंधविश्वास, भूत–प्रेत, बाधा, भूत–भविष्य आदि में विश्वास रखते हैं, फिर चाहे वे अमीर या गरीब। धर्म को मानना ठीक है लेकिन धर्म को अपने जीवन को संचारित करने का या अंध रूप से उसे मानना गलत है। अलका सरावगी ने अपने कथा साहित्य में बेहद सटीक ढंग से मनुष्य को धर्म से संघर्षरत दिखाया है।

संदर्भ–सूची :–

1. कहानी की तलाश में – अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1996, पृष्ठ – 35।
2. वही, पृष्ठ – 37।
3. कलिकथा वाया बाइपास – अलका सरावगी, आधार प्रकाशन, संस्करण 2001, पृष्ठ – 67।
4. वही, पृष्ठ – 110।
5. वही, पृष्ठ – 154।
6. वही, पृष्ठ – 79।
7. वही, पृष्ठ – 122।
8. जानकीदास तेजपाल मेनसन – अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2015, पृष्ठ – 134
9. वही, पृष्ठ – 157।
10. वही, पृष्ठ – 72।
11. दूसरी कहानी – अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2021, पृष्ठ – 57।
12. वही, पृष्ठ – 67।
13. वही, पृष्ठ – 89।
14. कोई बात नहीं – अलका सरावगी, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2020, पृष्ठ – 45
15. वही, पृष्ठ – 80
16. एक ब्रेक के बाद – अलका सरावगी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2019, पृष्ठ – 155।
17. वही, पृष्ठ – 167।

राजस्थान की समकालीन कविता की विकास-यात्रा

डॉ. प्रणु शुक्ला*

अतीत की अतीतता और वर्तमान की प्रासंगिकता के बीच यथार्थवादी आंदोलन का जयघोष लेकर उपस्थित हुई समकालीन कविता यथार्थ और आदर्श के रूप में एक गहरी भावधारा है जिसकी भाषा में सपाटबयानी का पैनापन है और शैली में आक्रोश की तीखी चुभन।

डॉ. हुकुमचंद राजपाल के अनुसार समकालीन कविता का प्रारंभ सन् 1964 के बाद माना जा सकता है। साठोत्तरी कविता और समकालीन कविता को पर्याय मानना उचित नहीं है। समकालीन कविता, आधुनिक कविता के विकास में नयी चेतना, नयी भाव – भूमि, नयी संवेदना तथा नये शिल्प के बदलाव की सूचक काव्यधारा है। समकालीनता बोध युग – बोध की पहचान का महत्त्वपूर्ण आधार है।"[1]

सृजनशील भूमि राजस्थान में भी समकालीन कविता को लेकर नए यथार्थ बोध का उदय हुआ है। वर्तमान में यहां जो भी कवि समकालीन कविता के लेखन में रत हैं उनकी अपनी दृष्टि और अपनी सृष्टि है। वैसे तो राजस्थान मरुधर प्रदेश होने के कारण सदैव सृजन धर्म को अपनी और आकर्षित करता रहा है लेकिन क्योंकि यहां का मानुष कर्मठ और विषम परिस्थितियों में जीवन जीने वाला है इसलिए यह बात ज्यों की त्यों उनके साहित्य में प्रतिध्वनित होती है। हालांकि कुछ वर्षों पूर्व तक नंद चतुर्वेदी से शुरू होकर आगामी कवियों तक समकालीन कवि बताए जा रहे थे लेकिन वर्तमान में समकालीन कवियों की संख्या में अभिवृद्धि हुई है क्योंकि राजस्थान में युवाओं में भी कविता के प्रति प्रेम जगा है और वे पुरजोर रचनाधर्मिता में, सृजनशीलता में लगे हुए हैं ऐसे में राजस्थान की समकालीन कविता की पुनः पड़ताल जरूरी है।

1–ऋतुराज– ऋतुराज के अब तक के प्रकाशित काव्य संग्रहों में 'पुल पर पानी', 'एक मरणधर्मा और अन्य कविताएँ', 'सुरत निरत' तथा 'लीला अरविंद', 'मैं आंगिरस', 'कितना थोड़ा वक़्त', 'अबेकस', 'आशा नाम नदी' आदि हैं। इन्हें सोमदत्त सम्मान, परिमल सम्मान,मीरा पुरस्कार, पहल सम्मान, बिहारी पुरस्कार आदि से सम्मानित किया जा चुका है। राजस्थान में समकालीन कविता की धमक ऋतुराज की कविताओं में दिखाई पड़ती है। ऋतुराज जीवन जीने की जीजी विशाखा कवि है और जीवन जीने की यही इच्छा उनकी कविताओं में रूपांतरित हुई है।

राजस्थान प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष रहे ऋतुराज मूलतः वंचितों, उपेक्षितों और पीड़ितों के कवि हैं। इन्होंने समाज के हाशिए के लोगों की चिंताओं को अपनी कविताओं का विषय बनाया है।

जयपुर के प्रसिद्ध साहित्य महोत्सव (लिट फेस्ट) की अंग्रेजीपरस्ती और भारतीय भाषाओं की उपेक्षा से खिन्न होकर उन्होंने कुछ स्थानीय साहित्यकारों के साथ मिल कर उन्हीं तारीखों में अपना एक अलग समानांतर जयपुर साहित्य उत्सव शुरू किया था, जो अब पूरे भारत का एक प्रतिष्ठित वार्षिक साहित्य समागम बन गया है। इसमें पूरे भारत से सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों को आमंत्रित किया जाता है। कोरोना संकट के दौरान भी इसे आभासी रूप में आयोजित किया गया।"[2]

2–सवाई सिंह शेखावत – सवाई सिंह शेखावत का जन्म 13 फ़रवरी 1947 को जयपुर के कोटपूतली तहसील के ललाणा ग्राम में हुआ। वह मूलतः कवि हैं लेकिन साथ ही कहानी, उपन्यास और आलोचनात्मक लेखन भी किया है। हिंदी के साथ ही राजस्थानी में भी कविता–कहानी लिखते रहे हैं। उनकी पहली राजस्थानी कहानी 'कूँपळ' पर्याप्त चर्चित रही जो हिंदी,तेलुगू तथा डोगरी में अनूदित हुई है।

'घर के भीतर घर', 'पुराना डाकघर एवं अन्य कविताएँ', 'दीर्घायु हैं मृतक', 'उत्तर राग', 'घरों से घिरी दुनिया में', 'मुश्किल दिनों में अच्छी कविताएँ', 'कितना कम जानते हैं हम ख्यातिहीनता के बारे में' और नवीनतम

***सहायक आचार्य हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, टोंक, (राजस्थान)।**

'निज कवि धातु बचाई मैंने (2017) के रूप में उनके 8 कविता–संग्रह प्रकाशित हैं। उनकी ग़ज़लों का संग्रह 'एक हिस्सा हर्फ़' शीर्षक से प्रकाशित है और 'कवि–निकष' उनका गद्य–संकलन है।

तुम जब हँसती हो तो जागती है
घोड़ों में हिनहिनाहट
दोस्तों में दोस्ती
दुश्मनों में दुश्मनी
पंडितों में चतुराई
ईश्वर में करुणा
तुम जब हंसती हो तो ढंक जाती है
नग्नता आवरण से
आवरण निर्वस्त्रता से
होंठ चुंबनों से
आकाश ग्रह–नक्षत्रों से
धरती धन–धान्य से"[3]

3–नंद भारद्वाज– राजस्थानी में अंधार पख (कविता संग्रह), दौर अर दायरौ (आलोचना), सांम्ही खुलतौ मारग (उपन्यास) और अल्बेयर कामू के उपन्यास 'ल स्ट्रेंजर' का राजस्थानी में अनुवाद बैतियाण प्रकाशित। हिन्दी में झील पर हावी रात (कविता संग्रह), संवाद निरन्तर (कला, साहित्य और संस्कृति पर साक्षात्कारों का संग्रह), और साहित्य परम्परा और नया रचनाकर्म (आलोचनात्मक निबंधों का संग्रह), हरी दूब का सपना (कविता संग्रह) और संस्कृति जनसंचार और बाजार (समकालीन मीडिया पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह) प्रकाशित हैं। साहित्य मनुष्य की गरिमा को बचाने का सशक्त माध्यम है ऐसा मानने वाले नंद भारद्वाज अपनी कविता में की भाव धार रखते हैं जिससे लगता है की कविता में अभी वही क्रांति का जयघोष है। कविता अभिनव निर्माण करने में सक्षम है यदि एक वाक्य में कहा जाए तो नंद भारद्वाज पैसे से कवि हैं तो मस्तिष्क से आलोचक उनकी कविताएं भावपूर्ण तो होती हैं पर वे तर्क की कसौटी पर कसी हुई होती हैं।

4–कृष्ण कल्पित– भीड़ से गुज़रते हुए (1980), बढ़ई का बेटा। (1990), कोई अछूता सबद (2003), शराबी की सूक्तियाँ (2006), बाग़–ए–बेदिल (2012), कविता–। रहस्य (2016) लिखने वाले कृष्ण कल्पित नारी–पुरुष प्रेम की अंतरंगता, रहस्यमयता और जादुईपन का इस कवि का अन्वेषण उसकी अनेकानेक कविताओं में देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ इस संग्रह की कविता 'अमरकोट की सईदाः एक दुर्दांत प्रेम कविता' को हम सरलता से धर्म और देश की सीमाओं का अतिक्रमण करके प्रेम करने की साहसिक क्षमता का एक काव्यात्मक दस्तावेज़ कह सकते हैं. 'दुर्दांत' प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए कवि इस कविता में घर, शरीर, देश और जलवायु से जुड़े अनेक मूर्त और मांसल बिम्बों का प्रयोग करता है।

तुम बचाना सईदा बचाना चूल्हे की आँच
आँख में आँसू कंठ में गान कोठरी में अन्न
तुम बचाना अपने लम्बे केश
अपनी आँखें, पाँव, होंठ, हाथ, स्तन
अपने जिस्म को बचाना सईदा
और अपनी आत्मा"4

5–हेमंत शेष– प्रशासनिक सेवा के साथ और सेवानिवृत्ति के बाद से उनकी साहित्यिक–यात्रा अनवरत जारी रही है। हाल के वर्षों में प्रकाशित आधा दर्जन कृतियों के साथ उनकी 28 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनमें 13 कविता–संग्रह शामिल हैं। उनकी कविता–यात्रा का आरंभ 'जारी इतिहास के विरुद्ध' (1973) शीर्षक लंबी–कविता के प्रकाशन के साथ हुआ। 'घर–बाहर', 'वृक्षों के स्वप्न', 'नींद में मोहनजोदड़ो', 'अशुद्ध सारंग', 'कष्ट के लिए क्षमा', 'जगह जैसी जगह' उनके प्रमुख काव्य–संग्रह हैं। उनके दो नए काव्य–संग्रह 'प्रायश्चित्त–प्रवेशिका' और 'अफ़सोस दर्पण' शीर्षक से 2018–19 में सामने आए हैं।

उनकी सक्रियता एक कला–आलोचक के रूप में भी रही है। इस क्रम में 'सौंदर्यशास्त्र के प्रश्न', 'कला–विमर्श', 'भारतीय कला रूप', 'भारतीयता की धारणा', 'भारतीय रंगमंच' आदि उनके संपादन में प्रकाशित कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं। वह पेंटिंग्स और फ़ोटोग्राफ़ी में भी रुचि रखते हैं और इन क्षेत्रों में अपने मौलिक कार्य के लिए सराहे गए हैं। 'जगह जैसी जगह' काव्य–संग्रह के लिए उन्हें बिहारी सम्मान से पुरस्कृत किया गया। हेमंत आशीष की कविताओं में कविता के प्रति नवीन जीवन सर्जन है और कला आलोचक होने के कारण उनकी कविताओं में रागात्मकता और भाव प्रेक्षणीयता दोनों का समागम है।

6–गोविन्द माथुर– गोविन्द माथुर का कवि अपने समय में घिरे हुए विसंगतियों के बीच स्थित है। वह उन विसंगतियों की विद्रूपताओं का चित्र खींचता है और रेखांकित करता है कि कुछ महत्वपूर्ण जीने लायक स्थितियाँ या वस्तुएँ बची भी हैं। बची हुई भी तेजी से विलुप्त होती जा रही हैं। कवि–संवेदना की मूल यातना यही है। गोविन्द माथुर का शिल्प विशिष्ट है। वे उन दुर्लभ कवियों में हैं जिनके ऊपर मुझे किसी अन्य कवि का प्रभाव दिखाई नहीं पड़ा। उनका अंदाजे बयां अपना है। वे आसपास की घटनाओं और स्थितियों को बिना छेड़े सहज रूप से ऐसा संयोजित करते हैं कि आखिर पंक्ति तक पहुँचते–पहुँचते पाठक उन परिचित स्थितियों से कुछ नया, अभूतपूर्व पा लेता है। गोविन्द माथुर का यह लगभग निजी शिल्प निहायत सधा हुआ है। वे वस्तुस्थिति के नए आयाम को रेखांकित करके अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

कई लोगों में उमड़ता है प्रेम
भींच लेते हैं सीने से लगाकर
इतना कि दम घुटने लगता है
कई लोगों में उमड़ती है श्रद्धा
झुक जाते हैं टखनों तक
इतना कि शर्म आने लगती है
पता नहीं क्यों
मैं जितना प्रेम करने वालों से
डरता हूँ उतना ही
श्रद्धा रखने वालों से भी"[5]

7–विनोद पदरज– सवाई माधोपुर में जन्में विनोद पदरज देशज कवि हैं। वे राजस्थान की खाँटी संस्कृति का हिन्दी समकालीन कविता में सशक्त प्रतिनिधित्व करते हैं। बीते वर्षों में सोशल मीडिया के उदय ने इस स्वभाव की कविताओं का स्वाद पूर्व की अपेक्षा त्वरित गति से हिन्दी समाज तक पहुँचाया है। विनोद पदरज इस कविता के अग्रदूत हैं, जिनका अनुसरण करती एक नयी पीढ़ी तैयार हो रही है।विनोद पदरज बड़ी कविताओं के सरल कवि हैं। वे रहस्य पैदा किए बिना जन आकांक्षाओं को व्यक्त करते हैं। विनोद पदरज राग के कवि हैं। जीवन मृत्यु, कोरोना फैल रहा है, दुहराव, बेटियां, मरुधरा आदि सुंदर काव्य कृतियों के लेखक विनोद पदरज अपनी कविता को पाठक के समक्ष इस रूप में प्रस्तुत करते हैं मानो वह सामने खड़े रहकर विषय वस्तु का वर्णन कर रहे हो और पाठक आदर्श और यथार्थ के हिंडोले में झूलता हुआ उस विषय वस्तु का रसास्वादन कर रहा हो।

जैसे–पालतू पशुओं के पालक
बहुत ध्यान रखते हैं सानी पानी का
प्रसव के बाद
गुड़ तेल भी देते हैं
और स्त्रियों की सेहत के लिए
चिकित्सकीय सलाह
पौष्टिक खानपान
और समुचित आराम जरूरी है
लगभग छह महीने
इसके बाद भी भारी काम नहीं

पर वह दिहाड़ी मजूर थी
जिसका प्रसव हुआ
साइट से लौटते समय –ट्रैक्टर में
और पंद्रहवें दिन ही देखा उसे मैंने
तगारियां ढोते हुए।"[6]

8–प्रेमचंद गांधी– वे उन कवियों में से हैं जो प्रचलित काव्य विषयों की सीमाओं को लगातार तोड़ रहे हैं, भाषा के सवाल पर उनकी यह लंबी कविता हो या 'नास्तिकों की भाषा' शीर्षक से प्रकाशित कविता हो, उन्हें बार–बार लंबी कविताओं की शरण में जाना पड़ रहा है, जो एक तरफ उनके कवि की परिपक्वता की ओर इशारा करता है तो दूसरी तरफ उनके भीतर लगातार जारी अंतर्द्वद्व की ओर भी इशारा करता है. इस लंबी कविता में भाषा के सवाल के बहाने वह हिन्दी के समकालीन बौद्धिक परिवेश पर कुछ ज़रूरी सवाल खड़े करते हैं। जब वह कहते हैं कि '

बिल्कुल अभागा देश था वह
जहां कविता सिर्फ धर्मग्रंथों में बची रह गई थी
कविता के नाम पर
धर्मग्रंथ ही बिकते थे वहां
क्योंकि वहीं थी
शायद छंद की थोड़ी–सी गंध
इस तरह बजबजाती थी
छंद की गंध उस देश में कि
कविता–पाठ से पहले
जलानी पड़ती थीं अगरबत्तियां"[7]

9–कैलाश मनहर– जहाँ न पहुँचे रवि,वहाँ पहुँचे कवि की उक्ति को चरितार्थ करते हुए कैलाश मनहर ने अपनी कवितों के माध्यम से जीवन के हर पहलू का सूक्ष्म अंवेषण किया है। समयानुसार काव्य रचनाओं के विराट सृजन में अनेक महत्वपूर्ण व प्रासंगिक विषय उनकी काव्यधर्मिता से जुड़ते चले गए किंतु आम आदमी और उनसे जुड़े सरोकार उनकी कविताओं में सदैव प्रतिपाद्य विषय रहे। कैलाश मनहर की कविताओं में शब्द स्थितिनुसार निःसृत होते हैं जिन्हें पढ़ते समय लगता है जैसे कविता के आँचल में कोई घटना अपनी परिणति तक पहुँचने की कथा सुना रही हो। कैलाश मनहर की यही क़िस्सागोई पाठकों के औत्सुक्य को प्रबल करती है कि देखें, आगे क्या है....। शब्दाडंबरों से परे कैलाश मनहर की यही सहजता और सरलता उन्हें पाठकों से जोड़ने में सेतु का काम करती है क्योंकि कविता तो जल की भाँति होती है, जितनी निर्मल... उतनी ही ग्राह्य। कैलाश मनहर के काव्य–लेखन में अनेक मील के पत्थर हैं जिनमें– उदास आँखों में उम्मीद(2013), अवसाद–पक्ष(2010), सूखी नदी(2006), कविता की सहयात्रा में(1986), कविता संग्रह के अतिरिक्त, कुछ अन्य प्रतिनिधि रचनाएं जैसे– नमक की बात न करें, पुराना शहर, मैं कोई कविता लिख रहा हूँगा तथा रात का हाल मुझ से पूछ आदि शामिल हैं। कैलाश मनहर इसके अलावा एक ग़ज़लकार तो हैं ही, वे बाल–गीत और नाटक भी लिखते हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कैलाश मनहर के कुछ वैचारिक लेख व संस्मरणात्मक रेखाचित्रों ने भी पाठकों पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है।

मैं किसी ऐसे आदमी की तलाश में हूं
जो मृत्यु से मिलता हो प्रतिदिन
किन्तु लौट आता हो जीवन के पास
जो पतझड़ को झेलने के बाद
अचानक वसंत की मस्ती में झूमने लगे
मैं किसी ऐसे आदमी की तलाश में हूं
जो चिन्तायें करते हुये भी लगे निश्चिन्त
सपने देखने की आदत हो जिसे खुली आंखों

अपने सपनों को साकार करने की हिम्मत हो
और झेल सके जो सूरज की कड़ी धूप
पुरवाई की उम्मीद में बहा सके अपना पसीना
मैं किसी ऐसे आदमी की तलाश में हूं
जो मरुस्थल में भटकते हुये गाता हो नदियों के गीत
जो भौंथरे हथियारों को धार दे सके"[8]

9–इंदु शेखर तत्पुरुष– उनका पहला कविता संग्रह 'खिली धूप में बारिश' 1996 में प्रकाशित हुआ, जिसे राजस्थान साहित्य अकादमी का 'प्रथम प्रकाशित पुरस्कार' हासिल हुआ. 2017 में 'पीठ पर आंख' शीर्षक से प्रकाशित उनका कविता संग्रह बेहद चर्चित रहा है.

लाखों वर्ष कोई कम नहीं होते धरती पर
रहते साथ–साथ
अब लेता हूं विदा, मेरे पड़ौसी भाइयो!
अलविदा!
विचरता रहा स्वच्छन्द अब तक
पहाड़ों, घाटियों, जंगलों की
अपनी सल्तनत में लेकिन
तुम्हारी बस्तियों में घुसकर
शायद ही लांघी कभी मर्यादा मैंने
फिर भी जाने–अनजाने
हुई हो कोई भूल–चूक
तो क्षमा करना मनुष्य!"[9]

10–नवनीत पाण्डेय– 'सच के आस–पास', 'छूटे हुए संदर्भ', 'जैसे जिनके धनुष', 'सुनो मुक्तिबोध एवं अन्य कविताएँ', 'जब भी देह होती हूँ' (कविता–संग्रह) 'यह मैं ही हूँ', 'हमें तो मालूम न था' (लघु नाटक) प्रकाशित हुए हैं। नवनीत पांडे के लेखन की विशेषता यह है की जो कुछ समाज में घट रहा है इसकी व्यापक स्थिति का चित्रण करते हैं, सही सटीक और तार्किक चिंतन करते हैं।

"पर सही राम को
कुछ भी मालूम नहीं था
न सरपंच का
न पटवारी का
न ऊपर वाले का
न घर बचाने का
किसी भी ग़लत का
बुधिया की बुद्धि से
उसका काम पहली ही लिस्ट में हो गया
पर सही राम की फ़ाइल
वहीं की वहीं अटकी है
वह आज भी
सरपंच–पटवारी के
चक्कर पर चक्कर लगा रहा है"[10]

12–प्रभात– प्रभात कविता को लिखते ही नहीं वरन उसे शिद्दत से जीते हैं। यही कारण है कि उनकी कविताओं में गांव की धूल, गोबर, पसीना और ग्रामीण स्त्रियों का संघर्ष उनके दुख, इस कदर घुल–मिल गए हैं कि आप उन्हें पढ़ते वक्त जीवंत महसूस कर सकते हैं। उनके मुहावरे और बिंब किसानों, मजदूरों और खेतों में खटती स्त्रियों के पसीने से सराबोर हैं। कविताओं को पढ़ते वक्त लगता है पिंडलियाँ भड़कने

भड़कने को हैं। बकौल अरुण कमल जी–"जिस प्रेम, मार्मिकता और अश्रु सिक्त आंखों से प्रभात ने इस जीवन को रखा है वह हमारा कलेजा काढ़ लेने को काफी है। बेहद सधे हुए, संयमित, कंपन रहित स्वर में उन्होंने दुख और संताप की गाथा का गान किया है। "[11]

घुटनों पर रखे दर्पण में
कमल जैसा मुखड़ा
जँच रहा है इतना
जैसे नया और नया होता जा रहा हो
दर्पण के सरोवर में
दिन के चार बजे की धूप
और अधिक उजला बना रही है
सफ़ेद खड़िया के माँडनों को
पैरों के गुलाबी तलुवों के पास
हरे रंग का ढक्कन पड़ा है काजड़ की डिब्बी का"

13–अनिरूद्ध उमट– अनिरुद्ध उमट का जन्म 28 अगस्त, 1964 को राजस्थान के बीकानेर में हुआ। वह नवें दशक के कवि हैं और अपने गद्य के लिए भी सराहे गए हैं। वह रचनात्मक पल को किसी रहस्यमयी पल की तरह देखने वाले कवि हैं जो उस पल के प्रति समर्पण में सुख पाते हैं। उन्हें मितकथन का कवि भी कहा गया है। नके दो कविता–संग्रह 'कह गया जो आता हूँ अभी' और 'तस्वीरों से जा चुके चेहरे' प्रकाशित हैं। गद्य विधा में अब तक दो उपन्यास 'अँधेरी खिड़कियाँ' और 'पीठ पीछे का आँगन' और एक कहानी–संग्रह 'आहटों के सपने' प्रकाशित हुए हैं।

14–रेवती रमण शर्मा– 1940 के अप्रैल को राजस्थान के अलवर जिले के मालाखेड़ा ग्राम में जन्मे कवि रेवतीरमण शर्मा जनपक्षीय सरोकारों के कवि हैं। एम.कॉम, एल.एल.बी. और डी.एल.एल. की शिक्षा ग्रहण करने वाले रेवतीरमण जी का मन काव्य–सृजन में गहराई से रमता है दृ 'जमीन से जुड़ते हुए', 'कदाचित् नहीं हूँ मैं', 'उस जन के नाम', 'पत्ते का घर', 'एक दुनिया यह भी', 'जिन्दा हूँ मरने के बाद', 'विरल है जीवन की डोर' जैसे काव्य–संग्रह इसका प्रमाण हैं। कवि के लिए कविता उनकी जिजीविषा है, कवि को "अवसाद की स्थिति में कविता मरने नहीं देती। जीने की सलाह देती है। समर्पण नहीं, मूल्यों के विघटन से संघर्ष के लिए धकेलती दिखाई देती है।" अभी हाल में कवि रेवतीरमण शर्मा के नव्य–प्रकाशित काव्य–संग्रहों दृ 'जिन्दा हूँ मरने के बाद' और 'विरल है जीवन की डोर' में संकलित कविताओं में भी समकालीनता की नई दृष्टि दृष्टिगोचर होती है–मेवणी मेरे गाँव की' कविता अपने भाषाऔर क्रिया–कलापों की सम्पूर्ण स्थानीयता में अंततःकर्मठमेवाती स्त्री–महिमा का सुन्दर–सशक्त चित्र उकेरती है, जिसके असर में पाठक बहुत देर तक रहता है। यह कवि की महत्वपूर्ण कविताओं में से एक है–

मटके पर / मटका रख / दूर गाँव से / पानी लाती / मेवणी मेरे गाँव की
कुट्टी करती / पहिया घुमाती / घूम रही पहिया सी
दिनभर खटती / खेत पर / बाँध भरोता / सांझ घर आती /उसे देख रंभाती गाएँ /
हाथ फेर दुलराती / चारा डालती / माँ जैसी /अच्छी फसल के सपने बोती /
सुबह छोटे को / लिए गोद में / बेटी को स्कूल छोड़ती / मेवणी मेरे गाँव की।"[12]

15–अनुपमा तिवाड़ी– आदमी के अन्दर रहता है एक और आदमी,सपना बुनती औरतें भरोसा अभी बचा है अब और नहीं..आदमी मूक चेहरे,मेरी पहचान,प्यार, कागज़ और आदमी, आईना भीगता है,कबीरे,जूते औरत आदि कविताएं लिखने वाली अनुपमा तिवारी कविताओं में स्त्री विषयक दृष्टिकोण भी सहजता के साथ आता है आपकी कविताएं समय सापेक्ष होने के साथ–साथ गहरी अंतर्दृष्टि भी रखती हैं सदैव एक आशावादी दृ ष्टिकोण जाग्रत करती हैं कि संसार में किसी कोने में उम्मीद की एक लंबी रेखा विद्यमान है। अनुपम तिवारी की रचनाधर्मिता समाज को एक सीख देने में है।और सीख जो एक गहरा भाव जागृत करें जिसकी समाज को आवश्यकता है।

16–विजय सिंह नहाटा– बीकानेर के कालू गांव उसने जन्मे विजय सिंह नहाटा प्रशासनिक अधिकारी रहे हैं। की कविताओं में समाज के प्रति या यूं कहें कि समाज को कुछ देने का भाव ज्यादा है चूंकि आप प्रशासनिक अधिकारी रहे हैं इसलिए आपको अनुभव बहुत ज्यादा है। और जगह–जगह का मैं अनुभव आपकी कविताओं में साकार हुआ है। आपकी रचना धर्मिता समय सापेक्ष तो है ही साथ ही साथ आपकी कविताओं में एक गहन अतः दृष्टि है जो पाठक को झकझोर कर रख देती है।

वे अनगिनत हाथ
जो उलझे रहे ताउम्र
ऐसे सारहीन कामों में
जिनका कतई योग न था
इस दृश्यमान दुनिया की बेहतरी में
मसलन : हत्याएं,लूटपाट, आतंक,
नरसंहार, ध्वंस– विध्वंस आदि
उठो!
उन हाथों को खींचकर लाओ
भीतर तक किसी के दुख में शामिल बनाते
प्रेम में आकंठ डूबी इस पृथ्वी पर
और रोप दो उन्हें खेतों की मेड़ पर
रोशनी की तरह : एक रक्तबीज
उठो! उठो! मोड़ दो मुंह प्रचंड धारा का
एक नए सपने की दिशा में
शायद वक्त के इस मोड़ पर
यही होगा तुम्हारा शाश्वत मनुज धर्म।"[13]

17–अतुल कनक– राजस्थान में प्रेम के कवि अतुल कनक समकालीन युवा कवियों में एक अलग दृष्टि रखते हैं कनक की कविताओं में परिवारिकता के साथ–साथ समष्टि तत्व के दर्शन भी होते हैं अतुल कनक की कविताएं यथार्थवादिता की कविताएं हैं जिसकी जमीन कोरी कल्पना से निर्मित नहीं है वरन उसमें एक ऐसा यथार्थ है जो पाठक की दृष्टि में आना बेहद जरूरी है। कविता की चकाचौंध से परे अतुल कनक की कविताएं जिंदगी का एक जरूरी दस्तावेज जैसी लगती हैं।

उस साल पिता को
भेंट में दिया था जो कुर्ता–पायजामा,
वह अभी भी उदासी ओढकर
गुमसुम पडा है मेरी अलमारी में
न वो मुझसे कुछ कहता है
न मैं जुटा पाता हूँ हिम्मत
उससे बात करने की
कि आज भी ख़ामोश रहा
अलमारी में रखा वह कुर्ता–पायजामा
और आज भी जानबूझ कर
अनदेखा कर दिया मैंने उसे
पिता को ही नहीं मंजूर मुझसे बतियाना
तो कपडों से तो
बात भी क्या करे कोई ?
आज

माता–पिता की शादी की
सत्तावनवीं वर्षगाँठ थी
और मैंने माँ को नहीं दी बधाई /
कि आज मैंने
फूल भी नहीं चढाए
अपने स्वर्गवासी पिता की तस्वीर के आगे।

इनके अतिरिक्त समकालीन युवा कवि ओम नागर कोटा, चेतन औदिच्य उदयपुर, नितेश व्यास जोधपुर,दशरथ सोलंकी,राहुल बॉयल पाली,अभिताभ चौधरी,अमर दलपुरा करौली,हेमंत परिहार सुमेरपुर, मोहन पुरी भीलवाड़ा,उषा दशोरा जयपुर, विजय राही दौसा इत्यादि है जो लगातार पूरे जोशखरोश के साथ समकालीन कविता का लेखन कर रहे हैं। अब लिखने वाला यह युवा वर्ग इस बात कहनी है कि राजस्थान की समकालीन कविता दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रही है। अब उनके पास ऐसे ऐसे काव्य विषय है जो लगातार एक नवीन दृष्टि का पुनर्निर्माण कर रहे हैं अब राजस्थान की समकालीन कविता में एक गहरी अंतर्दृष्टि है और साथ ही साथ लिखी गई कविता पाठकों के मन में भी समाने लगी है। अब राजस्थान की समकालीन कविता निरंतर पुष्पित और पल्लवित हो रही है और इसका कोई विकल्प नहीं है।

संदर्भ–सूची :–

1. हुकमचंद राजपाल, समकालीन कविता और धूमिल का काव्य मे समकालीन कविता की कथ्य चेतना (दो शब्द), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2015 पृष्ठ –11।
2. "ऋतुराजःकविता कोश में कविताओं का संग्रह " कविता कोश मूल से 9 जुलाई 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 23 जून 2016।
3. सवाई सिंह शेखावत, निज कवि धातु बचाई मैंने, बोधि प्रकाशन संस्करण 2017, जयपुर,पृष्ठ –13।
4. कृष्ण कल्पित, रेख़्ता के बीज व अन्य कविताएं"पुस्तक पर सदाशिव श्रोत्रीय का समालोचन में आलेख, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण, 2022, पृष्ठ –22।
5. गोविंद माथुर, प्रेम और श्रद्धा कविता, शिल्पायन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ–19।
6. विनोद पदरज, कविताएं, समालोचन से, अभिगमन तिथि 2 जुलाई 2023।
7. प्रेमचंद गांधी, कविता का भूगोल शीर्षक से बया में प्रकाशित एक लंबी कविता,अभिगमन तिथि, अगस्त 2023)।
8. कैलाश मनहर, चयनित कविताएं, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, दिसंबर 2022 पृष्ठ–18।
9. इंदु शेखर तत्पुरुष, पीठ पर आंख, बोधि प्रकाशन, जयपुर, संस्करण, 2017 पृष्ठ –27।
10. नवनीत पाण्डे, नवनीत पांडे की चयनित कविताएं, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन पृ 47।
11. समकालीन जनमत में चरण सिंह पथिक आलेख– संघर्ष और जीवट का कवि प्रभात, अभिगमन तिथि 8 अगस्त 2023
12. रामकुमार कृषक,कविताएँ, जरूरी कविताएँ:, विरल है जीवन की डोर में से, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2022, पृष्ठ–11।
13. विजय सिंह नहाटा, कविता की दीठ, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, संस्करण–2023, पृ–28।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री-चिंतन

डॉ. शशि पाण्डे*

शोध सार :– साहित्य जगत में प्रभा खेतान स्त्री चिंतन के प्रति सजक दिखाई दे रहे हैं, अपनी लेखनी से यह समाज को एक नई दिशा दे रहे हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार नारी को अपने अधिकारों के प्रति सजक करा रहें हैं जिससे वह समाज में अपने अधिकारों से लिए लड़ कर आगे बढ़ रही है। नारी समाज की वह शक्ति है। जिसके बिना समाज उन्नति नहीं कर पा सकता है। आधुनिक युग में नारी अपनी पहचान बनाने में की कोशिश कर रही है, आज की नारी घर परिवार व आर्थिकस्थिति को सुदृढ़ बनाने में सहायक है यद्यपि के रही है यद्यपि स्त्रियों के आत्म निर्भर होने पर भी उन्हें पुरुषों के समान स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है, फिर भी देखा जाय समकालीन स्थिति में स्त्री अपने अधिकारों को लेकर जागृत हुई दिखाई देती है।कामकाजी महिला घर व बाहर दोनों ही जगह शोषण का शिकार बनती जा रही है, आज की नारी में परिवर्तन देखने को मिलता है। हम अपने वेदों पुराण, सभ्यता, संस्कृति व साहित्य में महिलाओं को भी पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु आज कई क्षेत्रों में नारी शोषण चिन्तनीय है, इस शोषण के बढ़ने का कारण पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, भौतिक सभ्यता का बढ़ता प्रभाव दिखाई देता है,

बीज शब्द :– एलिजाबेथ, विक्रमादित्य, इन्टरनेट, अत्याचार, वैदिक, उज्जवल, उदात्त, उपनिषद, सरस्वती, समकालीन, जगजननी, पितृसत्ताक, सामंतवादी, नारीवाद आदि।

मनुष्य वह प्राणी है, जिसे वाणी का वरदान प्राप्त है। इसी वाणी की शक्ति के कारण वह अपने विचारों, भाव–भावनाओं, इच्छाओं का आदान–प्रदान करता है। महाभारत में इसी प्रकार का वचन मिलता है। ''वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते''[1] इसी वाचा के द्वारा वह अपने भावों, विचारों की अभिव्यक्ति करने लगा। मानव द्वारा अपने जीवन मे प्राप्त विविध प्रकार का ज्ञान एवं अनुभव को अभिव्यक्त करना साहित्य कहलाता है। वर्तमान समय में उपन्यास वर्तमान काल के गघ की सबसे सशक्त एवं प्राणवान विद्या है। आधुनिक युग में हम देखते हैं कि उपन्यास की लोकप्रियता और सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है, यही कारण है कि ''प्राचीनकाल में जो महत्व महाकाव्य का था, एलिजाबेध और विक्रमादित्य के युग में जो महत्व नाटक का था, उससे कहीं अधिक महत्व आधुनिक युग के उपन्यास को प्राप्त है''[2]

उपन्यास मानव जीवन की वह व्याख्या है, जिसमें कल्पना का पुट रहता है। वह मनोरंजन के साथ मस्तिष्क एवं मानव ह्रदय का संस्कार करने वाली विद्या है। इन्हीं कारणों से मानवी जीवन का आत्म–प्रकाशन होने वाली यह विधा सभी साहित्यिक विधाओं में सबसे लोकप्रिय विधा है। इस लोकप्रिय साहित्यिक विधा में नारी का चित्रण न हो यह सम्भव नहीं है। उपन्यास के आरम्भ से लेकर आज तक उपन्यास में नारी के विविध रूपों का वर्णन मिलता है। मानव जीवन घटनाओं का समूह है। इन घटनाओं को मूर्त करने वाला साधन है, चरित्र इन चरित्रों द्वारा ही कथा का निर्माण होता है। उपन्यासकार इन चरित्रों का वर्णन अपने उपन्यास में करता है।

आज तक जहाँ महिलाओं का तिरस्कार होता था, वही उन्हें सम्मान की दृष्टि से भी देखा जाता था। बिना नारी के यह समाज अधूरा और बेसहारा प्रतीत होता है। क्योंकि हर युग में नारी का अपना एक विशेष अस्तित्व रहा है। वह हर क्षेत्र में आगे बढ़ती जा रही है। हम जब साहित्य को पढ़ते हैं जिस तरह सृष्टि की कल्पना नारी के बिना सम्भव नहीं है, उसी भाँति हर साहित्य भी नारी के बिना अधूरा है। हर क्षेत्र नारी के बिना अधूरा है। चाहे वह सामाजिक क्षेत्र हो, पारिवारिक क्षेत्र, राजनीतिक क्षेत्र हो, आर्थिक क्षेत्र हो या फिर साहित्यि क्षेत्र हो, महादेवी वर्मा में ''समाज का विकास नापने का मापदंड है''[3] उन्होंने समाज में नारी

*** सहायक आचार्य–हिंदी, डी. एस. बी. परिसर, कुमायुं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)।**

के महत्व से अवगत कराने के लिए लिखी थी। अर्थात स्त्री की उपेक्षा या अवमानना करके समाज प्रगति नहीं कर सकता, क्योंकि स्त्री 'आधी दुनिया' है, पुरूष की शक्ति है।

आज 21वीं सदी का आगमन हो चुका है, मनुष्य चाँद पर पहुँच चुका है, अन्य ग्रहों की खोज जारी है आज नारी स्वतत्रंता का मुद्दा आम बन चुका है। प्रिंट इलेक्ट्रानिक एवं इन्टरनेट तीनों ही नारी की महत्ता स्वीकार करते हैं। नारी संसार को बदलने, उँचा उठाने की बात हर जगह होती है किन्तु उनके प्रति हमारी मानसिकता में परिवर्तन की कमी दिखाई देती है। महिलाओं पर शोषण दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। जब तक हम बहु एवं बेटी के बीच का भेद मानसिक रूप से खत्म करने को तैयार नहीं होते, तब तक महिलाओं पर शोषण एवं अत्याचार रूकने की कल्पना व्यर्थ है। दूसरी ओर घर से बाहर महिलाएं हर क्षेत्र में अपना कदम रख रही हैं। या हर क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर रही हैं। किन्तु इतना सब होते हुए भी उनका शोषण किसी न किसी रूप में हो ही रहा है। नौकरी पेशा महिलाएं आज भी दोहरे शोषण की शिकार हैं। परिवार के तनाव के साथ–साथ अपने काम बिगड़न से अधिकारियों की नाराजगी झेलनी पड़ती है, ऐसे में नारी का स्वाभिमान तो आहत होता ही साथ ही उसके शोषण की सम्भावना बढ़ रही है।

कामकाजी महिला घर व बाहर दोनों ही जगह शोषण का शिकार बनती जा रही है, यद्यपि आज हमें नारी के रूप में परिवर्तन देखने को मिलता है। हम अपने वेदों पुराण, सभ्यता, संस्कृति व साहित्य में महिलाओं को पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त हैं, परन्तु आज कई क्षेत्रों में नारी शोषण चिन्तनीय है, इस शोषण के बढ़ने का कारण पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, भोगवादी भौतिक सभ्यता का बढ़ता प्रभाव है।

हम यदि वैदिक साहित्य को पढ़े तो हम यह देखते हैं कि उस पर समय स्त्रियों को पूर्ण सम्मान दिया जाता था। वैदिक साहित्य में स्त्री का अत्यन्त उज्जवल एवं उदान्त रूप से चित्रण किया गया है। वेद, वाड्मय, ऐतरेय ब्राह्मण, तथा उपनिषद जैसे प्राचीन ग्रन्थों मे नारी को पुरूषों के समकक्ष माना गया है। सच्चे अर्थों में वह पुरूष की अर्धांगिनी है। महर्षि मनु कहते हैं –''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''[4] वहीं यदि हम भारतीय दार्शनिक परम्परा को देखें तो नारी को प्रकृति का एक रूप माना जाता है, वे पुरूष और प्रकृति के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। वह पुरूष की जन्मदात्री ही नहीं वरन् प्रेरणादात्री भी है। उससे ही प्रेरणा पाकर पुरूष महान बन सकता है। इसीलिए हम देखते हैं कि भारत में जो भी आदर्श दिखाई देता है। वह स्त्री रूप में पाया जाता है। जैसे ''विद्या का आदर्श सरस्वती में, धन का लक्ष्मी में, पराक्रम का महामाया या दुर्गा में, सौन्दर्य का रति में, पवित्रता का गंगा में यहाँ तक कि भारतवासियों ने परम पवित्रता का गंगा में यहाँ तक कि भारतवासियों ने परम शक्तिशाली भगवान को भी 'जगजननी' के रूप मे देखा जाता है।''[5]

साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है। हिन्दी उपन्यास में नारी जीवन का चित्रण होना स्वाभाविक बात है। उपन्यास में नारी जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है। हर साहित्यकार नारी के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप का चित्रण अपनी लेखनी से करके नारी से जुड़ी हर समस्या चाहे वह कामकाजी महिला है, या दहेज प्रथा, बाल–विवाह, अशिक्षा, पर्दा, अनमेल विवाह, बहु विवाह, विधवा जीवन आदि समस्याओं को अपना विषय बनाकर नारी उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ''हमारे देश में उदारीकरण के बढ़ने से पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से हमारे देश में नारी को भोग की वस्तु समझा जा रहा है।''[6] आधुनिक युग में पुरूष का दृष्टिकोण बदलता जा रहा है। परन्तु कहीं न कहीं वह परम्पराओं से आज भी जकड़ा हुआ है। दूसरी और समकालीन उपन्यासकारों में प्रभा खेतान ने नारी के अस्तित्व को समाज के सामने उजागर किया। ऐतिहासिक रूप से हम पुरूष प्रधान समाज में रहते हैं, जहाँ स्त्री ज्ञाता नहीं ज्ञान की विषय वस्तु है, हम जिसे यथार्थपरक ज्ञान या वस्तुपरख ज्ञान कहते हैं वास्तव में वह पुरूषों द्वारा निर्मित एवं उत्पादित ज्ञान है।

प्रभा खेतान ने ''छिन्नमस्ता में एक साधारण स्त्री कि असाधारण संघर्षों को दिखाया है नारी विमर्श और स्त्री विमर्श की स्वतन्त्रता की नायिका प्रिया के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज में नारी जीवन के उन दर्दनाक पक्षों को परत–दर–परत खोला है, और नारी के साथ होने वाले भेदभाव को उजागर किया है।''[7]

प्रभा खेतान ने इस उपन्यास के माध्यम से सामंतवादी व्यवस्था पर गहरा प्रहार किया है। हर क्षेत्र में स्त्री के साथ जो भेदभाव की प्रवृत्ति है। उसे आगे बढ़ने के लिए अनेकों संघर्ष व कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन सब घटनाओं के बावजूद भी प्रिया जो पिता का घर हो या पतिगृह दोनों ही परिवारों में उसे अवहेलना और उपेक्षा सहनी पड़ी। परन्तु अपने कार्यक्षेत्र में उसे अन्य लोगों से जो आदर और सम्मान मिला उससे प्रिया को अपने जीवन की सार्थकता का उसे अहसास हुआ। अपने घर मे जो अपमान प्रिया प्रतिदिन सहती थी वही उसके साथ काम करने वाले कर्मचारियों के सहयोग से उसके आत्मविश्वास में निरन्तर वृद्धि कर उसे बार–बार आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते थे। ''मैं उस नरेन्द्र अग्रवाल को चैबीस घंटे में जेल भिजवा सकती हूँ, पर इससे मेरी उपलब्धि? मुझे वीरेन की बात याद आ गई थी, दीदी आपके ऊपर हम दो सौ लोगों की भात ही हाँडी चढ़ती है आप अकेले नहीं हैं।''[8] प्रिया के मन में जो समाज में कुछ करने की चाह थी, वह उसके अपने स्वयं के किए गये कार्यों से पूर्ण की। उसका इससे आत्मविश्वास बढ़ा, यद्यपि प्रिया जिस वर्ग से संबंध रखती थी आर्थिक रूप से सम्पन्न थी, परन्तु वह अपने को उस घर–परिवार में पिंजरे में रहे उस पक्षी की भाँति समझती थीं वह अपना स्वयं कुछ करना चाहती थी। समाज में झूठे आडम्बर परम्पराओं व धर्म की बार–बार दुहाई दी जाती थी। इन सब यातनाओं के बाद भी प्रिया समाज में कुछ अलग मुकाम पाना चाहती थी।

प्रभा खेतान के अनुसार नारीवाद का सही उद्देश्य दलन के अनुभवों की अभिव्यक्ति ही है। यह भी स्त्री को सोचना है कि आने वाली शताब्दी में स्त्री अपने लिए कौन से नये पृष्ठ खोलेगी किन सिद्धान्तों को अपनाएगी, कौन सा नया चैनल, स्त्री मुक्ति के संघर्ष की विचारधारा को विकसित करेगा तथा उसे किस भाषा से अभिव्यक्त किया जाना चाहिए। नारीवादी विचारधाराओं के आधार पर देखा जाय तो उदार नारीवादी, मार्क्सवादी नारीवादी, उग्र नारीवाद आदि के अलग–अलग उद्धेश्यों को भी विश्लेषित किया जा सकता है। मार्क्सवाद से प्रभावित वामपंथी विचारधारा का नारा 'दि पर्सनल इज पॉलिटिकल' था। इन विचारकों ने स्त्री को अपनी खामोशी तोड़कर सामाजिक मंचों पर दलन के अनुभवों को विचार–विमर्श के लिए निमंत्रित किया।

प्राचीनकाल से आधुनिक काल में कुछ परिवर्तन हुए परन्तु हम देखते हैं भारतीय समाज स्त्री की स्वतंत्र पहचान का पक्षधर नहीं है, जो स्त्री महत्वाकांक्षी होती है उसे चरित्रहीन साबित कर दिया जाता हैं यदि नारी समाज में आगे बढ़ने के कुछ करना चाहती है। अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और अन्त में वह अकेली सह जाती है। उसके समक्ष परिवार या कार्यक्षेत्र चुनने की शर्त रख दी जाती है। परम्परा में बधी स्त्री लड़कियाँ अक्सर परिवार को चुनती हैं। परन्तु आज हम देखते हैं लड़कियाँ अपनी जीवन शैली को अपने ढंग से चला रही हैं। वह समाज व परम्परा की परवाह किये बगैर आगे बढ़ रही हैं।

छिन्नमस्ता में प्रभा खेतान ने प्रिया जो हर तरह से दीन हीन और उपेक्षित के रूप में चित्रित है, जो सगे बढ़े भाई के शारीरिक शोषण का शिकार, माता की उपेक्षा, उसके रूप पर भी तंग कसना मात्र दाई माँ की लाडली कॉलेज में भी प्रेम–प्रसंग से धोखा इन सबके होते हुए भी लेखिका उसे मरने नहीं देती। शोषित व उत्पीडित स्त्रीयों का सहारा लेकर प्रिया खुले आकाश में विचरण करने का स्वप्न देखने लगती है। नरेन्द्र को प्रिया का व्यवसाय से जुड़ना पसंद नहीं और इसे वह अपनी ही गलती मानता है। ''दरअसल तुम्हें इतनी छुट देने की गलती मेरी ही थी, मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे''[9]

प्रभा खेतान ने नरेन्द्र के माध्यम से भारतीय समाज में पुरूषों की संकीर्ण विचारधारा को उद्घाटित किया है। जो पत्नी को मुफ्त की सेविका समझता है। जो हर समय उसके इशारों पर नाचती रहे, पत्नी पति के अत्याचारों को अपना भाग्य समझे, स्त्री का कार्यशील होना पारंपरिक मानसिकता वाले पुरूषों को इसलिये रास नहीं आता। क्योंकि आत्मनिर्भर पत्नी दबती नहीं, हर बात पर समर्पण नहीं करती। आज नारी पुरूषों के अधीन रहने के लिए बाध्य नहीं है।

नरेन्द्र प्रिया को अपनी दादी व नानी के कहने पर प्रिया को अपने व्यवसाय में शामिल करता है, परन्तु व्यवसाय में अपने को पुराना खिलाड़ी समझकर प्रिया को अनभिज्ञ समझकर अपनी सहायिका के रूप में रखता है। परन्तु प्रिया पीछे–पीछे घुमने पर विश्वास न रखते हुए वह अपनी अलग पहचान बनाना चहती

है। महत्वाकांक्षी प्रिया को दासता स्वीकार नहीं थी। अपनी कार्यक्षमता और दक्षता के बल पर वह अपना अलग स्वतंत्र व्यवसाय खड़ा करती है। हालांकि नरेन्द्र उसके व्यवसाय को टाइमपास की चीज मानता है। प्रिया के लिए उसका व्यवसाय उसके व्यक्तित्व की पहचान है। वह किसी के सहारे के बिना आगे बढ़ना चाहती है। ''नरेन्द्र मैं पैंसों के लिये काम नहीं कर रही, फिर किसलिये काम कर रही हो, सुबह से रात तक फिरकी की तरह नाचती हो, किसलिये? हाँ बोलो जवाब दो? अपनी आइडेंटिटी, व्यक्तित्व विकास के लिये।''[10]

परिवार मे बच्चों का पालन पोषण भी बच्चे के रूप में न होकर स्त्री पुरूष के तौर पर उसका पालन पोषण किया जाता है। बच्चे की योग्यता को न देखते हुए बेटा–बेटी में जन्म के समय ही यह भेदभाव उजागर किया जाता था, यदि लड़कियाँ योग्य और प्रतिभावान है तो उसकी योग्यता समाज के सामने लाकर उसकी पहचान होनी चाहिए। छिन्नमस्ता उपन्यास में प्रिया प्रतिभावान है योग्य है उसकी बौद्धिक क्षमता को उपयोग नरेन्द्र जैसे पुरूष उचित नहीं मानते। यहाँ तक उन्हें यह भी स्वीकार्य है स्त्रियों की जो प्रतिभा होती है, नरेन्द्र के हाथ से निकलते आर्डर को प्रिया अपनी योग्यता के बल प्राप्त करती है। ''लगता है आपकी पत्नी इस काम को आपसे ज्यादा जानती है''[11]

प्रारम्भ से ही प्रिया का जीवन उपेक्षित रहा है कभी माँ द्वारा कभी भाई द्वारा कभी पति द्वारा वह इन परम्पराओं की जंजीरों को काटकर खुले आकाश मे स्वतन्त्र होकर उड़ना चाहती है। पुरूष समाज अपनी मानसिकता को बदलना नहीं चाहता क्योंकि स्त्री चेतना का विकास समाज को चरमोत्कर्ष तक पहुँचा सकता है। ''अम्मा सोतती मैं बेवकूफ हूँ उनके दिये हुए चार–पाँच विशेषण आज तक अचेतन में धसे हुए हैं। आज तक इस उम्र में भी कोई मेरी कितनी भी प्रशंसा करे मुझे विश्वास नहीं होता किसी भी कॉम्पलीमेंट को मैं ग्रेसफुली नहीं ले पाती''[12] छिन्नमस्ता उपन्यास में प्रभा खेतान ने सकारात्मक सोच के बल पर नारी को संघर्ष करते देख उसे मानो पुरूष के समकक्ष बना दिया। प्रिया का व्यवसायिक रूप से पितृ सत्तात्मक समाज की व्यवस्था के विरूद्व है। क्योंकि समाज स्त्री को घर की वस्तु मानता है। ''प्रिया अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए नरेन्द्र का घर छोड़कर अकेले व्यापार करने में कोई आत्मग्लानि नहीं समझती बल्कि सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ती है।''[13]

लेखिका का छिन्नमस्ता उपन्यास में नारी को स्वालम्बी बनाने का उद्देश्य सार्थक प्रतीत होता है। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास के माध्यम से नारी में एक परिवर्तन की लहर उजागर की है जिसका प्रत्यक्ष परिणाम आज के समाज में हमें देखने को मिलता है। प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास के माध्यम से नारी में परिवर्तन की लहर उजागर की है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज हमें देखने को मिलता है। प्रभा खेतान ने अकेली प्रिया को स्वतंत्र एवं आत्मविश्वास के रूप में चित्रित किया है। जिसमें नारीवाद अपने विशिष्ट रूप में दिखाई देता है जिसके आधार पर स्त्रियों की मुक्ति के प्रयास किये जाते हैं। जिसमें ''नारी की समानता और स्वतन्त्र के प्रश्न किसी न किसी रूप में उठते हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था एवं पुरुष सत्ता से नारी मुक्ति के संघर्षों के वैचारिक स्त्रोत के रूप में नारीवाद की आधार भुमि रहती है।''[14] आज नारी हर क्षेत्र में अपना परचम लहरा रही है। चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र या कोई अन्य क्षेत्र हर क्षेत्र में सफल प्राप्त कर पुरूषों को पीछे छोड़ती जा रही। ''शिक्षा और नगरों और नगर–निवास से परिवर्तन आ रहा है। इन परिवर्तनों की ओर रॉस ने अपने बंगलौर नगर के अध्ययन में प्रकाश डाला''[15]

समकालीन उपन्यासों में नारी के आत्मविश्वास को जगाने कार्य समकालीन साहित्यकारों ने किया है वह समाज को हर क्षेत्र में उन्नति करते हुए आगे बढ़ा रहा है। नारी हर क्षेत्र में मानों नई सृष्टि का निर्माण करने में सहायक हो रही है। नारी के उत्थान में महात्मा गांधी ने नारी उत्थान में विशेष बल दिया। गाँधी जी के अनुसार ''स्त्री क्या है? साक्षात त्यागमूति है। जब कोई रत्री किसी काम में जी जान से लग जाती है। तो वह पहाड़ को भी हिला देती है''[16] प्राचीन काल से वर्तमान काल यद्यपि दयनीय थी। फिर भी वह ''ज्योतिष, गणित, दर्शनशास्त्र न्याय तथा साहित्य रचने में सबसे आगे रही इन्हें विदूषी महिलाओं के रूप में जाना जाता है।'' जो नारी सशक्तिकरण का परिचायक है।[17]

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं, आधुनिक नारी हर कार्य को करने में सक्षम है, वह बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को पार कर अपना रास्ता बना सकती है। समकालीन उपन्यासों में नारी के आत्मविश्वास को जागाने का जो प्रयास प्रसिद्ध साहित्यकारों ने किया। उनमें से प्रभा खेतान, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, सुरेन्द्र वर्मा, हरिमोहन, मेहरून्निसा परवेज, अमर गोस्वामी, मैत्रेय पुष्पा, चित्रा मुद्गल चन्द्रकान्ता आदि प्रमुख हैं। जिन्होंने नारी को समाज के हर क्षेत्र में आगे बढ़ाया, जिससे आज नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई दे रही है। अंत में यही कहना उचित होगा कि नारी हर क्षेत्र में अपना परचम लहरा रही है। बदलाव ही प्रकृति का नियम है।

सन्दर्भ सूची–

1. हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी डॉ. रेवा कुलकर्णी चन्द्रलोक प्रकाशन कानपुर, पृ0सं0 25।
2. वही, पृ0सं0 30।
3. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला डॉ. रोहिणी अग्रवाल दिनमान प्रकाशन दिल्ली पृ0सं0 54।
4. हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ0सं0 38।
5. वही, पृ0सं0 39।
6. भारतीय नारी वर्तमान समस्याएं एवं भावी समाधान, आर. पी. तिवारी, डॉ. डी.पी. शुक्ला, एपीएच पबलिशिंग कॉपोरेशन दिल्ली, 1999 पृष्ठ– 37।
7. स्त्री चिंतन की अन्तधाराएं और समकालीन हिन्दी उपन्यास, डॉ. प्रदीप श्रीधर तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली 2010 पृ0सं0 81।
8. वही, पृ0सं0 82।
9. वही, पृ0सं0 83।
10. वही, पृ0सं0 84।
11. वही, पृ0सं0 84।
12. वही, पृ0सं0 84।
13. वही, पृ0सं0 85।
14. वही, पृ0सं0 85।
15. परंपरा और आधुनिकरण, कमलेश अवस्थी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली 2006 पृष्ठ सं. 237।
16. स्त्री चिंतन की अन्तधाराएं और समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ0सं0 35।
17. स्त्री अलक्षित बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का स्त्री विमर्श, श्रीकांत यादव, लोकभारती प्रकाशन, 2018, पृष्ठ. सं. 29।

फोर्ट विलियम कॉलेज के साहित्यिक कार्य और भाषा-नीति

डॉ. रवीश कुमार*

मार्क्विस वेलेजली ने फोर्टविलियम की स्थापना 4 मई 1800 ई0 को की। इसके उद्देष्य उच्च थे। उन्हें यह आवश्यक अनुभव हुआ कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सिविल सेवा के प्रशासनिक अधिकारी जो उच्च एवं महत्वपूर्ण कार्य करते हैं वे सुयोग्य बनें ताकि अपने पद और स्थान के गुस्तर कर्तव्य का पालन कर सकें तथा साहित्य और विज्ञान की र्प्याप्त शिक्षा के साथ ही ग्रेटब्रिटेन का कानून, शासन और संविधान के समुचित ज्ञान से युक्त हों तथा हिन्दुस्तान और दाक्खिन की विभिन्न देश भाषाओं प्रान्तीय प्रथाओं और रीतियों का भी उन्हें ज्ञान हों जहाँ वे शासनार्थ नियुक्त किये जाएँ। उस समय भारत में कोई सार्वजनिक संस्था नहीं थी जिसमें सिविल सेवा के अधिकारियों को उत्तम शिक्षा दी जा सके, सपरिषद गर्वनर जनरल ने इस कालेज की स्थापना हेतु ऐक्ट बनाया।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दुस्तानी को सभी पुरानी भाषाओं में प्रथम स्थान दिया गया। यहाँ हिन्दुस्तानी बंगला, तेलगू, मराठी, तमिल और कन्नड़ की पढ़ाई की व्यवस्था की गई। आरम्भ में ही बेलेजलीं द्वारा स्थापित इस संस्था को बाधाओं का सामना करना पड़ा क्योंकि 'कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स' ने अपनी उपयोगिता के लिये इस संस्था को कभी सफल नहीं माना और न ही इसे समझने का प्रयास किया। अतः उसने यह आदेश दिया कि यह संस्था तोड़ दी जाए। और इसके कारण बताए गए कि ऋण अधिक है, मुद्रा का भारत में बड़ा अभाव है और सार्वजनिक साख गिर गयी है। वेलेजली ने संस्था का समर्थन करते हुए पक्ष लिया और सबल शब्दों में लिखित एक प्रतिनिधि पत्र (रेप्रेजन्टेशन) कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के चेयरमैन को दिया। इसमें एक अत्युपयोगी व्याकरण के लेखक और कोशकार रूप में हिन्दुस्तानी भाषा के शिक्षक डॉ0 गिलक्रिस्ट की भूरि–भूरि प्रशंसा की, जिनके परिश्रम और मेधा के फलस्वरूप सर्वव्यापक बोल चाल की भाषा का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना अब संभव हो गया।

कॉलेज में हिन्दुस्तानी की शिक्षा पर जोर अधिक था विद्यार्थियों की प्रगति को जांचने के लिये एक कमिटी का गठन हुआ जिसने 29 जुलाई 1800 ई0 को अपनी रिपोर्ट में गिलक्रिस्ट की विद्वत्ता की पुनः सराहना की। उस समय कॉलेज में कुछ सिविल सर्वेन्ट भी थे जिन्होने हिन्दुस्तानी भाषा के विकास में योगदान किया और पुरस्कृत हुए जिनमें प्रमुख नाम है जान मारन्करन, विलियम वटरवर्थबेली विलियम मर्टिन जेम्स इन्टर आदि प्रसद्धि हुए। हिन्दुस्तान का शिक्षण स्तर हर्टकोर्ड कालेज में हिन्दुस्तानी जैसा नहीं था यहां हिन्दुस्तानी की प्रतिष्ठा थी और उसके समुचित ज्ञान पर जोर दिया जाता था।

सरकार ने कालेज के परीक्षकों से विमर्श कर हिन्दुस्तानी का स्तर निर्धरित करने के लिये एक कमिटी बनायी। इस कमिटी के तीन सदस्य थे मेजर टेलर, कैप्टन ई0 मैकेट, लेफ्टनेन्ट कर्नल पैटन। 22 अप्रैल 1823 ई0 को इस कमिटी ने दुभाषिया पद के उम्मीदवारों से यह अपेक्षा की।

1. व्याकरण के सामान्य सिद्धान्तों का दृढ़ आधार युक्त ज्ञान।
2. उर्दू और हिन्दी में बातचीत की योग्यता इतनी हो कि आसानी से तत्क्षण किसी आर्डर को बोलियों में समझा जा सके और रिपोर्ट, कागज पत्र आदि का अंग्रेजी में अनुवाद कर सके।

कमिटी में इसके लिये ये सिफारिशें की

1. व्याकरण के सामान्य प्रमुख नियमों पर; बारीकियों पर नहीं, चुने हुए प्रश्न दिये जाएँ।
2. परीक्षा के साथ मौखिक परीक्षा।
3. कुछ चुने हुए आर्डरों और रूल, रेगुलेशनों का हिन्दुस्तानी की दोनो लिपियों में अनुवाद करना।
4. हिन्दुस्तानी के बागोबहार खड़ी बोली के प्रेम सागर और फारसी के गुलिस्तां या अनवर सहेली को पढ़ने और उल्था करने की योग्यता।

***सहायक प्राध्यापक–हिंदी, आर. डी. एंड डी. जे. कॉलेज, मुंगेर, (बिहार)।**

ठोस प्रकार हम देखते हैंकि दुभाषिया के लिये काफी ज्ञान की आवश्यकता थी। उस समय अंग्रेजी जानने वाले हिन्दुस्तानी बहुत ही कम थे इसलिये इसकी बराबर आवश्यकता पड़ती है जिसके लिये कालेज परीक्षाऐं लेता था। विद्यार्थियों की योग्यता को जॉचने के लिये कालेज में सार्वजनिक वाद–विवद पद्धति अपनायी गयी। प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी सीखी हुई भाषा में सबके बीच अपनी प्रस्तुति देनी पड़ती थी द्वितीय सार्वजनिक वाद–विवाद के विवरण से ज्ञात होता है कि डबल्यू0बी0 बेली भारतीय भाषाओं के सबसे योग्य विद्यार्थी थे।[1] उन्हें चारो भाषाओं हिन्दुस्तानी, बंगला, फारसी और अरबी में डिगरी ऑफ ऑनर की प्रतिष्ठित उपाधि मिली थीं उन्होनें हिन्दुस्तानी में एक थीसिस लिखी थी।[2] और ग्रीक लैटिन मे भी पुरस्कृत हुए थे। सन् 1802 ई0 में कालेज में पठित निबंधो का जो संग्रह निकला उसमें बेली का भी एक निबंध है, जिसमें भारतीय काव्य का मूल्यांकन इस प्रकार किया है। ''संस्कृत और हिन्दुई के काव्य श्रोतों से बहुत थोड़ा ही हमारे आगे प्रस्तुत हुआ है, पर जो भी थोड़ा सा आया है उसके बल पर ही हम यह निर्णय दे सकते हैं कि प्रथम में सोफोक्लीज की शक्ति के साथ पिंडार का वैभव है और द्वितीय में ओविड का सम्पूर्ण सौन्दर्य थियोकिटस के माधुर्य के साथ विद्यामान है।'' इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि संस्कृत और हिन्दुई की काव्य–सम्पदा को वे उत्तम ग्रीक काव्य के समकक्ष मानते थे। तृतीय वाद–विवाद 20 सितम्बर, 1804 ई0 को हुआ। विषय था 'संस्कृत भारत की पितृभाषा है' इस अवसर पर कैप्टन जोन्स मोअर (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) ने माडरेटर का काम किया था। इसके विवरण से कई महत्वपूर्ण बातें मालूम होती हे। इससे यह पता चलता है कि प्राच्य लिपियो की मुद्रण की कला में देशी कारीगरो द्वारा बहुत ही सुधार हो चुका है और अनेक देशी विद्वान प्राच्य साहित्य की कई कृतियों के प्रकाशनार्थ लगे हुए हैं। 8 मार्च 1806 ई0 के चतुर्थ वाद–विवाद की रिपोर्ट से यह ज्ञात होता कि हिन्दुस्तानी डिक्शनरी प्रेस में है। पुनः 15 फरवरी 1808 ई0 की रिपोर्ट से यह पता चलता है कि पढ़े–लिखे–जानकार हिन्दुओं ने एक छापा खाना खोला है, जिसमें संस्कृत ग्रन्थो को छापने के लिये तरह –तरह की साइज के नागरी टाइप के फाउंट हैं।

इस प्रेस को संस्कृत कोशों और संस्कृत व्याकरण के नियमों को प्रकाशित करने के लिए कालेज ने प्रोत्साहन दिया। इसके संचालक–संपादक बाबूराम थे। 2 मार्च 1808 ई0 की रिपोर्ट से यह विदित होता है कि एक फारसी और हिन्दुस्तानी शब्दावली और दूसरी संस्कृत और बंगला शब्दावली तैयार कर ली गयी है और उन्हे छापकर योग्य व्यक्तियों के यहां भेजा जाएगा ताकि वे भारत की अन्य भाषाओं की तुलनात्मक शब्दावली, अमरकोश के विस्तार में कार्य आगे बढ़ा सकें। इसी बीच 12 प्रमुख भाषाओं जिनमें बंगला, उड़ीसा, तिरहुत हिन्दुस्तान पंजाब, कश्मीर, नेपाल, गुजरात, कनारा और तेलगॉव मराठा और तमिल या मालबाार की भाषाएं हैं को मि0 कोलब्रुक एवं अन्य नियुक्त सहयोगियों द्वारा अमर कोश के विस्तार और क्रमबद्ध स्वरूप को तैयार कर लिया गया। इस प्रकार यह महत्वपूर्ण है कि 1808 ई0 में ही एक बहुभाषी कोश की योजना साकार हो चुकी थी। भारतीय भाषाओं के यूरोपियन विद्वानों की दूरदर्शिता का यह परिचायक है। उन्होने उस समय ही यह अनुभव कर लिया था कि संस्कृत ही इन भाषाओं की जननी है और अमरकोश, तुलनात्मक भाषाकोश बनाने में आधार भूमिका निभा सकता है। खेद है कि यह कोश उस समय प्रकाशित न हो सका और दो सौ वर्षों बाद भी बहुभाषी प्रमाणिक कोश नहीं बन सका।

सन् 1808 ई0 में डॉ0 हन्टर कृत एक हिन्दुस्तानी अंग्रेजी कोश प्रकाशित हुआ। नवे वाद–विवाद के विवरण से हिन्दी की दृष्टि से कई सूचनाएं मिलती हैं।

1. तुलसीदास की रामायण और बिहारी लाल की सतसई बाबूराम पण्डित के संस्कृत प्रेस में छपी।
2. हिन्दुई भाषा और हिन्दुस्तानी कहानियों का संग्रह छपा।
3. ब्रज भाषा का व्याकरण तत्व, अंगेजी अनुवादक श्री लल्लूलाल कवि इसे तैयार करने में हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर कैप्टन टेलर ने उनकी सहायता की थी। ब्रज भाषा को ब्रज (जिसमें मथुरा,वृन्दावन और ग्वालियर तक का क्षेत्र हैं) की बोली कहा गया है। इन सूचनाओं से ज्ञात होता है कि लल्लू जी ने अंग्रेजी का साधारण ज्ञान प्राप्त कर किया था। उनका एक अंग्रेजी हिन्दी कोश (पुस्तिका) भी मिला है। हिन्दी लेखकों में वे प्रथम व्यक्ति थे जिनहोने अंग्रेजी सीखी थी।

14 वें वाद–विवाद के विवरण से यह ज्ञात होता है कि मिलिटरी के कुछ विद्यार्थियों ने लेफ्टनेंट प्राइस से ब्रजभाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हिन्दी का ज्ञान उन सबके लिए जरूरी समझा जाता था जिन्हें, भारत के सभी वर्गों की जनता से संपर्क और व्यवहार की जरूरत थी विशेषतः सैन्य अधिकारियों के लिये तो

अनिवार्य आवश्यकता थी। कम्पनी की नौकरी में, बंगाल की फौज के अधिकतम सिपाही ऐसे थे जो ब्रज भाषा या ऐसी कोई बोली बोलते थे जिसका मुख्य अंग हिन्दी है। प्रेम सागर के प्रकाशन (1810 ई0) के बाद कॉलेज के शिक्षकों के भाषा–विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और गिलक्रिस्ट के प्रभाव से जो हिन्दुस्तानी पक्ष में अधिक ध्यान और उत्साह था वह मंद पड़ने लगा। इस वैचारिक परिवर्तन को लाने का बहुत कुछ श्रेय प्राइस साहेब को है जो ब्रज भाषा के जानकार बन गए थे। प्रेम सागर के प्रकाशन के बाद यह स्पष्ट हो गया था कि हिन्दू प्रजा ब्रज भाषा को अधिक पसंद करती है। लल्लू लाल जी ब्रज भाषा के ही मुंशी थे और इसी कारण उनसे ब्रजभाषा का व्याकरण लिखवाया गया। कम्पनी के फौजी अफसर सिपाहियों की बोली को ठीक से समझ सके इसलिये हिन्दी के ब्रज भाषा रूप को भी प्रश्रय और प्रोत्साहन मिला।

सन् 1818 ई0 में कैप्टन लॉकेट ने कॉलेज की पुस्तकालय व्यवस्था का विवरण दिया उस समय वहाँ 8431 मुद्रित और 2994 हस्तलिखित पुस्तकें थीं। अतः कुल 11,335 पुस्तकें कॉलेज पुस्तकालय में थी जिनकी कीमत दो लाख से कम नहीं बतायी जाती। ''मैं ऐसा कोई संग्रह नहीं जानता जहां इससे अधिक संख्या में पुस्तकें हों। मैं पेरिस की रॉयल लाइब्रेरी की पुस्तक संख्या नहीं जनता।''[3] इस विवरण से ज्ञात होता है कि समय की दृष्टि से यह संग्रह विशाल और मूल्यवान था और यह पुस्तकालय समकालीन विदेशी पुस्तकालयों के समकक्ष था। यह संस्था अपने उन उद्देश्यों की प्राप्ति में असाधारण रूप में सफल हुई जिन्हें इसके संस्थापक ने घोषित किया था। लेखकों की साहित्यिक प्रवृतियों को संस्था ने संरक्षण दिया और हिन्दुस्तानी का सबसे बड़ा केन्द्र बन गई। हिन्दुस्तानी के दोनों रूपों हिन्दी और उर्दू गद्य का यह प्रसूति गृह कहा जा सकता है क्योंकि इसी कालेज के प्रोफेसर गिलक्रिस्ट की प्रेरणा और प्रोत्साहन से इन दोनों रूपों में प्रथम बार गद्य रचा गया और यहीं पर हिन्दुस्तानी मुद्रण की उचित व्यवस्था की गयी। इसी कॉलेज के दो प्रोफेसर गिलक्रिस्ट और केरे ने हिन्दी में गद्य की पुस्तकें लिख कर 'छात्रोपयोगी पुस्तकों का संकलन–सम्पादन कर हिन्दी की सेवा गद्य के आरम्भ काल में की। 1800 ई0 के पूर्व जो गद्य था, वह नगण्य था अथवा अमुद्रित रूप में उपलब्ध होने के कारण जनता की पहुंच के बाहर था। भारतीय भाषओं के विकास में इस कॉलेज का योगदान ऐतिहासिक महत्व का है। कॉलेज के अपने प्रोत्साहन और प्रकाशन से निकले ग्रन्थों की धूम मच गयी। विभिन्न विषयों पर संस्कृत और हिन्दी के अनेक ग्रन्थ मुद्रित हुए जिनसे भारत की रीति–नीति, प्रथा, कानून और धर्म को जानने–समझने में सहायता मिली। कालेज के प्रकाशनों में ऐसे अनेक अंग्रेजों की कृतियाँ हैं जो यदि उन्हें प्रोत्साहन नहीं मिलता तो कभी भी प्रकाश में नहीं आती और इंग्लैण्ड के विद्वानों को प्राच्यवादियों के बीच उच्च और गौरवपूर्ण स्थान नहीं मिलता जिसे प्राप्त करना उनका कर्तव्य था। रोबक ने अपनी पुस्तक में इसी तरह के महत्व की बात की है।[4]

लार्ड मोयरा की भी यह धारणा थी कि यदि सरकार इस संस्था की स्थापना कर साहित्यिक प्रवृतित्यां को प्रोत्साहन और रक्षण नहीं देती तो वो प्रवृतियों क्रमशः मंद पड़ते–पड़ते लुप्त ही हो गयी होती। इसके ही द्वारा साहित्य निर्माण के कार्य में नवजीवन का संचार हुआ।

कॉलेज के प्रकाशनः–

1. द स्ट्रेन्जर्स ईस्ट इंडिया गाइड टु हिन्दुस्तानी।
2. द हिंदी डाइरेक्ट या स्टूडेन्टस इन्ट्रोडक्शन टु द हिन्दुस्तानी लैग्वेंज हिन्दुस्तानी डिक्शनरी।
3. ए डिक्शनरी हिन्दुस्तानी ऐंड इंगलिश इसे मूलरूप में कैप्टन जासेफ टेलर ने प्राइवेट काम के लिये संकलित किया था।
4. द हिंदी मैनुअल या कैसकेट–आफ इण्डिया। इसमें मिर्जा काजिम अली और लल्लू लाल जी द्वारा काम किया गया। इसमें सिंहासन बतीसी माधोनल और बैताल पचीसी के अंश हैं।
5. बिहारी सतसई–बाबू राम पण्डित द्वारा सम्पादित।
6. सभा विलास– लल्लू जी लाल।
7. न्यू टेस्टामेन्ट का हिंदी रूपांतर।
8. ओरियंटल फेबुलिस्ट।
9. डायलग्स – इंगलिस एंड हिन्दुस्तानी।

भाषा नीति :– ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार के साथ जब से शासन भी करने लगी, तब से उसे यहाँ की देश – भाषओं में अपनी नीति का निश्चय करना पड़ा। इस देश की प्राचीन और नवीन दोनों भाषाओं के ज्ञान की उपयोगिता और महत्व को कंपनी सरकार को स्वीकार करना पड़ा। प्राचीन भाषाओं के अनुशीलन से अंग्रेजों को हिन्दू–मुस्लिम प्रजा की विचार परम्परा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ज्ञान होता था, लेकिन देशी प्रजा से स्थनीय भाषाओं और भारत की लोकप्रिय भाषा से ही सर्म्पक स्थापित किया जा सकता था अतः कम्पनी ने जब कॉलेज की स्थापना की तो प्राचीन भाषाओं संस्कृत अरबी फारसी और देश की बहुमान्य भाषा हिन्दुस्तानी और प्रादेशिक भाषाओं बंगला, मराठी, तेलुगु, तमिल आदि की पढ़ाई की व्यवस्था की थी। कम्पनी का प्रयोजन फारसी और हिन्दुस्तानी से अधिक था। अतः इन भाषाओं के अध्ययन पर कॉलेज में अधिक जोर दिया जाता था। कंपनी की भाषा नीति या – भासिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही कॉलेज स्थापित हुआ था। अतः दोनो की भाषा नीति में कोई अंतर नही था। कंपनी के सर्वोच्च शासनाधिकारी ने गिलक्रिस्ट को नियुक्त किया था। और वे गिलक्रिस्ट के हिन्दूस्तानी ज्ञान से इतना प्रभावित थे कि कॉलेज के प्रथम हिन्दुस्तानी प्रोफेसर गिलक्रिस्ट के भाषाविषयक नीति के सर्मथक ही नही पोषक बन गए। जो कालेज के प्रोफेसरो ने चाहा वही नीति कंपनी सरकार को भी मान्य थी। जो सिविलियन अफसर कालेज में पढ़ते थे, वे सब गिलक्रिस्ट की नीति से प्रभावित होते थे। कंपनी के मुंशी हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर की इच्छा या आदेश के अनुसार हिन्दुस्तानी की तीनो शैलियों में कोट स्टाइल, मिडिल स्टाइल और मुंशी स्टाइल सभी में रचनाए प्रस्तुत कर देत थे।

लल्लू लाल जी और सदल मिश्र के खड़ी बोली में लिखने के प्रेरक वही है जिन्होंने मिडल स्टाइल लेखन को महत्व दिया। वे यह मन ही मन महसूस करते थे कि अरबी – फारसी आदि से लदी हुई जबान का हिंदुओ के गले के नीचे उतरना कठिन है। गौरतलब है कि गिलक्रिस्ट ने हिंदी का प्रयोग हिन्दुस्तानी या उर्दू के लिये ही किया है। गिलक्रिस्ट हिन्दी, हिन्दुस्तानी, उर्दू और रेखता चारो नामों को पर्यावाची मानते थे। जब वे खड़ी बोली का नाम लेते है या हिन्दुई कहते है तभी उनका प्रयोजन आज की हिंदी से होता है धीरे–धीरे मुस्लमानो ने हिंदी शब्द का प्रयोग कम कर दिया और वे उर्दू, जबाने उर्दू आदि शब्दो को अपनाने लगे तब हिन्दू भी हिन्दुस्तानी के रूप को जिसमें संस्कृत के तद्‌भव और तत्सम शब्दो की बहुलता थी को हिन्दी कहने लग गए।

सन 1825 ई0 तक अंग्रेज अधिकारियों का भ्रम दूर हो गया और उन्हें यह बोध हुआ की हिन्दुस्तानी नाम पर चलने वाली उर्दू से पूरे हिन्दी क्षेत्र की जनता से संर्पक नही किया जा सकता था क्योंकि कॉलेज की हिन्दूस्तानी भाषा व्यापक जनसमूह के लिए विदेशी भाषा के समान है।

सन् 1825 ई0 में लार्ड एम्हर्स्ट ने अफसरों को सम्बोधित करते हुए कहा – 'यह तो पहले की स्थिति अब नही रह गई। अब आपको बराबर छोटे से छोटे के साथ न्याय करना होगा, भोले गवार लोगो के अधिकारों स्वार्थो और संस्थाओं को जानना होगा। चुकि फारसी और उर्दू करीब करीब अंग्रेजी की तरह उनके लिए विदेशी है, तो सरकार के अच्छे–अच्छे कानून भी मजाक हो जायेंगे। 'इससे भी कुछ पहले से अफसरों का भ्रम दूर होने लगा था कि उर्दू रूपी हिन्दुस्तानी से ग्रामीण जनता परिचित है। जब वे जनता के निकट संपर्क में आए तो उन्हे साफ जाहिर हो गया कि तथाकथित हिन्दुस्तानी से काम नही चलेगा। 1815 ई0 में ही टेलर ने कॉलेज काउंसिल को पत्र लिखा था, जिसमें हिन्दुस्तानी या उर्दू से भेद दिखलाया था और हिंदी शब्द का हिंदुई या हिंदवी के अर्थ में प्रयोग किया था। कॉलेज में विलियम प्राइस के बाद हिंदुस्तानी जिसका पहले रौब गालिब था, वह कम होने लगा। उन्होने हिंदुस्तानी और हिंदी के भेद को इस तरह दिखलाया हिंदुस्तानी–एक बार किसी शहर में यूं शुहरत हुई कि उसके नजदीक के पहाड़ को जानने का दर्द हुआ। हिंदी–एक समय किसी नगर मे चर्चा चली की उसे पड़ोस के पहाड़ को प्रसूत की पीर हुई।[5]

1824 ई0 के बाद तो उर्दू से हिन्दी का भेद स्पष्ट घोषित किया जाने लगा। हिंदी के लिए हिंदुई, हिंदवी आदि का प्रयोग कम होते होते लुप्त ही हो गया, तब हिंदुओं ने अपनी भाषा को वही नाम दे दिया।

कंपनी और कॉलेज का संबंघ प्रायः अच्छा ही रहा। दोनों की भाषा नीति लगभग एक ही थी। पादरियों ने अवश्य ही परख कर समझ लिया था कि जनता हिंदी का हिंदुई रूप पसंद करती है, वही जानती और बोलती है। उर्दू ढ़ंग की हिंदुस्तानी एक खास वर्ग की भाषा है, यह उन हिन्दुओं की भाषा है जो कभी मुगल दरबार या

शासन से संबंधित थे और अब अंग्रेजों के इर्द–गिर्द मंडराते हैं। 24 सितंबर 1824 ई0 को सरकार के जनरल डिपार्टमेंट के सेकरेटरी डी0 डी0 रडेल ने अपने पत्र में लिखा था–कॉलेज में हिंदुस्तानी जिस रूप में पढ़ाई जाती है, उसे उर्दू जबाने देहली दरबार की जबान कहा जाता है चूकि मुगलों ने इसे प्रचलित किया था और खास तौर पर यह अरबी, फारसी और पश्चिमी या उत्तरी प्रांतों से निकली थी, यह अब तक हिंदुओं के लिये एक विदेशी भाषा समझी जाती है।[6]. रडेल हिन्दुस्तानी के परीक्षक रह चुके थे इसलिए उनके अभिमत का महत्व है। अंग्रजों के हिन्दुस्तानी पक्षपात का फल यह हुआ कि उस समय के पश्चिमोत्तर प्रान्त में जहाँ हिन्दू–मुस्लमानों का अनुपात 9 और 1 था हिन्दुस्तानी के नाम उर्दू चल पड़ी। उर्दू के विस्तार में तत्कालीन अफसरों का बड़ा हाथ था। 1857 ई0 के बाद कम्पनी का शासन काल समाप्त हो गया। इसके बाद शिक्षा विभाग के माध्यम से हिन्दुस्तानी का पोषण होने लगा और हिन्दुस्तानी के नाम पर इसे हिन्दू जनता के गले उतारने की कोशिश होने लगी। इस निति के समर्थक हिन्दुस्तानी स्कूल स्पेक्टर अंग्रजों हाकिमों को मिल ही गये जिनमे उत्तर प्रदेश में शिव प्रसाद सितारे हिन्द और विहार में राय साहब सोहन लाल प्रमुख थे। गदर के 10 बर्षों के अन्दर हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की शैली को लेकर विवाद आरम्भ हुआ, जिसके पीछे अंग्रेज हाकिमों के विचार और भाषा नीति का प्रत्यक्ष हाथ था।

इस तरह हम देखते है कि कॉलेज कि भाषा नीति कम्पनी की भाषा नीति बन जाती है और बाद में उर्दू को हिन्दुस्तानी के नाम से हिन्दी पर थोपने का प्रयत्न हुआ। उस समय कुछ अंग्रेज ने जन भाषा हिन्दी का पक्ष लिया, पर अधिकतर अंग्रेंज सीनियर अफसर जो कम्पनी के समय से उच्च पदों पर थे अपनी सुविधा के लिए हिन्दुस्तानी को ही हिन्दी के नाम पर चलाने कि कोशिश में लगे थे।

विलियम प्राइस और हिन्दी–हिन्दुस्तानी :– गिलक्रिस्ट हिन्दुस्तानी कि जिस शैली को शिक्षा क्रम में महत्त्व देते थे अब वह उर्दू कहलाती है। यद्यपि वे ब्रजाभाषा और खड़ी बोली में भी अनेक पुस्तकें तैयार कराने और उनमें गद्य लिखवाने के मूल प्रेरक रहे पर एक साथ अनेक शैलियों और भाषाओं को उनके द्वारा प्रश्न दिये जाने का मुख्य कारण यह था कि वे चाहते थे कि तत्कालीन अंग्रेज अफसर हिन्दुओं के बीच प्रचलित इन रूपों से भी परिचित हों क्योंकि हिन्दुस्तानी का उद्देश्य हिंदी क्षेत्र की समान्य प्रजा के लिए सुबोध नही था। अफसरों का काम फौजी सिपाहियों और सौदागरों से बराबर पड़ता था, इसलिये हिंदी को नागरी लिपि में लिखित उसके व्रज भाषा और खड़ी बोली दोनो ही रूपों को भी हिन्दुस्तानी पाठ्क्रम में गौण स्थान मिला। 1815 ई0 के बाद ब्रजभाषा और हिन्दी की पढ़ाई कि उपयोगिता का अनुभव बढ़ा। प्राइस ने प्रेम सागर के शब्दों का अंग्रजी में अनुवाद किया। 25 जुलाई 1815 ई0 के वार्षिक समारोह में एंडमास्टन ऐक्टिग विजिटर ने इसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया उसी समय विलियम प्राइस कॉलेज में ब्रजभाषा, बांग्ला और संस्कृत के सहायक प्रोफेसर के रूप में पढ़ा रहे थे। बाद वे हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष हुए। अनेक वर्षो तक अध्यन के बाद हिंदी और हिन्दुस्तानी (उर्दू) के पारस्परिक सम्बन्ध और अन्तर को प्राइस ने समझ लिया। यह उनके विचारों से अस्पस्ट होगा जिसका सार इस प्रकार है– 'हिंदी और हिन्दुस्तानी में सबसे बड़ा अन्तर शब्दों का है। हिंदी के लगभग सभी शब्द संस्कृत के है। हिन्दुस्तानी का अधिकांश अरबी और फारसी के है।

हिंदी के सम्बन्ध में एक और महत्वपुर्ण विषय यह है कि यह नागरी अक्षरों में लिखी जानी चाहिए। संस्कृत–प्रधान रचना जब फारसी लिपि में लिखी जाती है तो शब्द कठिनता से बोधगम्य होते है। नई लिपी और नए शब्द सिखने में विद्यार्थियों को कठिनाई होगी उनका हिन्दुस्तानी ज्ञान थोडे परिवर्तन के साथ फारसी ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इससे वे भाषा और न देश के विचारों के साथ ही परिचित नहीं हो पाते है। हिन्दी के अध्यन में भी इससे कोई सहायता नहीं मिलती। किन्तु हिन्दी के साथ–साथ फारसी ज्ञान से विद्यार्थी हिन्दुस्तानी रचनाऐं सफलता पूर्वक कर सकेंगे एवं हिन्दुस्तानियों और उनके विचारों से परिचय प्राप्त करने में भी कठिनाई न होगी। इसी सिलसिले में उन्होंने कहा है – खड़ी बोली ही न कि ब्रज भाषा जैसा कि डॉ0 गिलक्रिस्ट का कहना है कि, हिन्दुस्तानी का आधार है, उसी के अनुरूप हिन्दुस्तानी का व्याकरण है।[7] इससे जान पड़ता है कि 1824 ई0 तक हिन्दी क्षेत्र की भाषिक स्थति का प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर अंग्रजों को यह अनुभव होने लगा कि केवल 'गिलक्रिस्टी हिन्दुस्तानी 'को शिक्षाक्रम मे स्थान देने से उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती जिसके लिये कॉलेज की स्थापना हुई थी 1824 ई0 तक जो भाषा हिन्दुस्तानी के नाम पर पढ़ाई जाती थी वह उर्दू या जबाने देहली थी। यह उस समय के एक पत्र से स्पष्ट हो जाता है, जो डी0 डी0 रडल ने सी0

लुसिंगर्टन को 24 सितम्बर,1828 लिखा था। ''कॉलेज में जैसी हिन्दुस्तानी पढ़ाई जाती है वह उर्दू या जबाने देहली या देहली दरबार कि जबान के नाम से प्रसिद्ध है और वह सारे भारत के उच्चवर्गीय देशवासियों और मुख्यतः मुसलमानो में बोलचाल के काम आता है, पर चुकि इसे मुगलों ने चलाया था और मुख्यतः मुस्लमानो में चलाया था जो मुख्यतः अरबी – फारसी और अन्य पश्चिमी या उत्तरी श्रोतो से निकली है, इसलिए यह अब भी समान्यतः हिन्दुओं के लिए एक विदेशी भाषा ही है।'[8]. प्राइस के विचारों के पुष्टि लार्ड एम्हर्स्ट ने भी 1825 ई0 के अपने दिक्षांत भाषण में किया। अतः इसके बाद अंग्रेज अफसरों को हिन्दी (आधुनिक अर्थ में) सीखने का अनुरोध किया गया। फौजी अफसरों को हिन्दी का ज्ञान हो सके इस दृष्टि से ब्रजभाषा और हिन्दी सीखनें पर पहले भी जोर दिया जाता था, पर अब सबके लिये हिन्दी की उपयोगिता स्वीकृत हुई। इस प्रकार कालेज के अधिकारियों के दृष्टिकोण में 1815 ई0 के बाद से ही परिवर्तन आरम्भ हो गया। गिलक्रिस्ट 'कवायद हिंदी' लिखने के प्रेरक थे। जो वास्तव में उर्दू का व्याकरण है। प्राइस ने 1827 ई0 में हिंदी ऐंड हिन्दुस्तानी सलेक्शंस प्रकाशित कराया जिसमें हिन्दुस्तानी और ब्रजभाषा व्याकरण के मूल तत्व दिये गये हैं। इस संग्रह में बैताल पचीसी, भक्तमाल के कुछ अंश, कबीर के रेखते, सुन्दरकाण्ड आदि हैं। कुछ भजन और रोजक कथाएं भी संकलित हैं। इस परिवर्तित नीति का ही परिणाम था कि 15 जनवरी 1825 ई0 को प्रकाशनार्थ पुस्तकों की मांग करते हुए कॉलेज कौंसिल ने इस प्रकार की सूचना प्रकाशित की थी। 'इस्तहार यह दिया जाता है कि कोई पोथी छपाने के लिये कॉलेज कौन साल से सहायता चाहता हो तो अपनी दरख्वास्त में यह लिखेः

1. कि पोथी में केत्ता पन्ना और पन्ने में केत्ता पंक्ति कित्ती लंबी
2. कितनी पोथियाँ छापेगा और कागद कैसा तिसलिये अक्षर और कागद का नमूना लावेगा और किस छापाखाना में छापेगा और सब छप जाने में कित्ता समय लगेगा और तैयार हुए पोथी कित्ते दाम को देवेगा।[9]

इस इस्तहार की भाषा में शब्दों को ध्यान देने पर–पोथी, पन्ना, पंक्ति अक्षर संस्कृत मूल के शब्द हैं। केत्ता (कितना) कित्ती (कितनी) कित्ते(कितने) कित्ता(कितना) ये शब्द आज भी मेरठ के आस–पास चलते हैं। प्राइस का संबंध 1831 ई0 तक कॉलेज से था। उनके ही काल में हिंदी नाम उस शैली के लिये रूढ़ होने लगा जो अब भी प्रचलित है। पादरी आदम ने उन्हीं के काल में अपना हिन्दी व्याकरण और कोष हिन्दी लिखा था। इस प्रकार 'हिन्दी' का रूप क्या हो इसे निश्चय करने में और इसे शिक्षा क्रम में पहले से अधिक महत्व देने का श्रेय विलियम प्राइस को ही है। इन्होंने स्वयं हिन्दी की कोई पोथी नहीं लिखी और न लिखवाई पर कॉलेज में हिन्दी को उचित स्थान दिलाने में प्रयत्नशील होकर सफल हुए।

इस प्रकार फोर्ट विलियम कॉलेज की भाषा नीति सामान्य जनता के सरोकारों से जुड़ती हुई हिंदी की ओर ओ बढ़ चलीं।।

संदर्भ सूची :–

1. बेली 1799 ई0 में 'राइटर' होकर आये थे और बढ़ते बढ़ते 1828 ई0 में कुछ दिन तक स्थानापन्न गवर्नर हो गए। बाद में कोर्ट के डाइरेक्टर बनाए गये। बेली गिलक्रिस्ट के छात्र थे।
2. बेली की हिन्दुस्तानी की थीसिस उर्दू है।
3. बंगाल पास्ट एंड प्रजेन्ट, पे0 23 वाल्थूम 23।
4. रोबक की पुस्तक का अंग्रेजी नाम इस प्रकार हैः" Extracts From theA nnals of the college of Fort william Form the period of its foundation by His excellecy Richard Marquis willesly K.P. on the 4th May 1800 to the present time. Complied from official recordsA rrangedA nd published by Thomas Rocbuck captain in the Madras Native Infantry Public Examiner in the Hindostanee; Braj Bhasha, PersianA ndA rbic languages printed by Philip persira At the Hindustani Press Calcutta 1819.
5. गिलक्रिस्ट कृत 'पालिग्लोट फैबुलिस्ट'।
6. फोर्ट विलियम कॉलेज प्रोसीडिंग्स जिल्द 9 पृष्ठ 496।
7. प्रोसीडिंग्स आफ दि कालेज ऑफ फोर्ट विलियम 15 दिसंबर 1824 ई0 होम डिपार्टमेंट मिसलेनियस जिल्द 9, पृ0 503–506, इंपीरियल रेकाईस डिपार्टमेंट, नई दिल्ली साहित्याचिन्तन, पृ0 62–64 पर उद्धृत।
8. The HindustaneeA s it is thought in the college distinguished by the titles of oordoo. Delhi is used for colloguial prposes,A mong the higher classes of the nativesA nd especially of Mohammadans, throughout india, but having been introduced by the MoghulsA nd being chief by derived fromA rabic, Persian,A nd other western or northern sources, it may still to the HindoosA t large be consideredA sA foreign tongul chetter forom D.D.Ruddel to C Lushurgton, secretary to the Government, General Department, Dated College of Fort William 24th sept. 1824.
9. साहित्य चिन्तन पृ0 66 पर उद्धृत।

अज्ञेय की कविताओं में राष्ट्रीयता का स्वर

डॉ. ओम प्रकाश प्रजापति*

छविन्दर कुमार**

स्वाधीनता आन्दोलन में हिन्दी के अनेकों कवियों ने राष्ट्र प्रेम से परिपूर्ण कविताएं लिखी हैं और जनता के ह्रदय में अपनी कविताओं के माध्यम से जन जाग्रति उत्पन्न की, ऐसे में राष्ट्र प्रेम की भावना मुखारित होने लगी। अज्ञेय ने समर्पित और निष्ठा के साथ राष्ट्र प्रेम की नैसर्गिक तस्वीर प्रस्तुत की है। उनमें कल्पना लेश मात्र नहीं है, बल्कि भारतवर्ष का सच्चा बिम्ब दिखाई देता है। क्रांतिकारी दल के सदस्य बनना और उसके पश्चात राष्ट्र प्रेम हेतु गिरफ्तारी देना व कारावास में जीवन यापन करना तथा सन् 1943 से 1946 तक सेना में कप्तान बनकर उनका अनुभव किसी से छुपा नहीं है। अज्ञेय विख्यात राष्ट्र भक्त रचनाकारों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। राष्ट्र हित में तमाम यातनाएं सहन कर भी उनके राष्ट्र प्रेम में कमी नहीं आई बल्कि दोगुने उत्साह से वे राष्ट्र हित हेतु कार्य करते रहे।वे बराबर देश भक्ति से परिपूर्ण कविताएं लिखते रहे।

अज्ञेय की कविताओं पर दृष्टिपात करे तो मालूम होता है कि उनका राष्ट्रीय चिन्तन सूक्ष्म था और उदात्त विचारों के थे। देश के लिए हर व्यक्ति को मर मिटने के लिए तैयार रहना, त्याग और उत्सर्ग को अज्ञेय जी सर्वोच्च मानते हैं। वे केवल कविताओं में ही नहीं गरजते,बल्कि स्वयं तमाम दुःख तकलीफों को सहन किया है। बंदीगृह में रहकर अमानवीय व्यवहार उनके साथ किया गया, परंतु हार नहीं मानी। उन्होंने समाज में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक विषमता के प्रति आक्रोश, क्षोभ तथा घृणा को व्यक्त किया है। वे जहां पर भी अन्याय, शोषण और अत्याचार होते हुए देखते हैं, वहीं पर उस विषमता को मिटाने के लिए खूनी क्रान्ति लाने का आह्वान करते हैं। अखंड ज्योति कविता में कवि ने स्वाधीनता की अखंड ज्योति से निरंतर व्यापक होते रहने की प्रार्थना की है।

"कर से कर तक, उर से उर तक बढ़ती जा ओ ज्योति हमारी
छप्पर तल से महल शिखर तक चढ़ती जा ओ ज्योति हमारी
पैंतीस कोटि शिखाएं जल कर कोना–कोना दीपित कर दें
एक भव्य दीपक सा भारत जगती को आलोकित कर दें
हमें दुःख है, हमें क्लेश है उसे जला डालेगी ज्वाला
हमने न्याय नहीं पाया है, हम ज्वाला से न्याय करेंगे
धर्म हमारा नष्ट हो गया, अग्नि धर्म हम ह्रदय धरेंगे।"[1]

अज्ञेय देशवासियों से आह्वान करते हैं कि इस देश के लिए तुम्हें स्वयं के उत्सर्ग हेतु तत्पर रहना चाहिए। यह स्वाधीन देश अब आपके हवाले है और इसकी रक्षा व प्रगति के लिए कार्य करना आपका कर्तव्य है। यह स्वाधीनता प्राप्ति केवल प्रतिज्ञा है, इसके पश्चात जन कल्याण करना आपका साध्य है। यह स्वाधीनता हमारे लम्बे संघर्ष, तपोसाधना का फ़ल है, इसके लिए असंख्य देश भक्तों ने अपनी कुर्बानियां दी। राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ने कलेजे पर गोलियां सहकर भी हिंसा का त्याग कर अहिंसा का मार्ग अपनाया। हमें अब भी देश हित में बहुत कुछ करना बाकी है, जिसकी जिम्मेवारी अब हमारी है। इन स्वाधीनता सेनानियों का यशोगान कर आगे बढ़ते रहिए जैसे

"यह प्रतिज्ञा ही हमारा दाय है लम्बे युगों की साधना का
जिसे हमने धर्म जाना।
स्वयं अपनी अस्थियां देकर हमीं ने असत पर

***सहायक आचार्य हिन्दी, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला।**

****अनुसन्धित्सु, विद्या वाचस्पति हिन्दी, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला।**

सत्त की विजय का मर्म जाना।
सम्पुटित पर हाथ, जिसने गोलियां निज वक्ष पर झेली
शमन कर ज्वर हिंसा का
उसी ने नत शीश धीरज को हमारे स्तिमित चिर संस्कार ने
सच्चा कृति का मर्म जाना
साधना रूकती नहीं : आलोक जैसे नहीं बंधता।
स्मरण कर लो इसी पथ पर गिरे सैनानी जय को।[2]

स्वाधीनता आन्दोलन के काल खंड में राष्ट्र चेतना से सम्बन्धित कविताओं के लिखने का दौर निरन्तर चलता रहा है। अज्ञेय की कविताओं में राष्ट्रप्रेम का जो प्रखर स्वर है वो बिल्कुल भिन्न है। इनकी 'बन्दी और विश्व', 'हमारा देश', छब्बीस जनवरी, जनपथ—राजपथ, देश की कहानीः दादी की जुबानी, निशपाप, रक्त स्नात वह मेरा साथी, आदि महत्वपूर्ण राष्ट्र प्रेम से परिपूर्ण कविताएं है।

'छब्बीस जनवरी' अज्ञेय की देश भक्ति से परिपूर्ण कविता है। इसमें स्वाधीनता के महत्व के बारे में बताया गया है। 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान को लागू किया गया था और भारत में इसी ऐतिहासिक दिन से लोकतांत्रिक प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। 26 जनवरी को हर वर्ष राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाता है। यहां कवि ने अपनी भावनाएं व्यक्त की है

"भूमि सुतः इस पुण्य भू की प्रजा, सृष्टा तुम्हीं हो इस नये रूपाकार के
तुम्हीं से उद्भूत होकर बल तुम्हारा
साधना का तेज ताप की दीप्ति तुम को नया गौरव दे रही है
यह तुम्हारे कर्म का ही प्रस्फुटन है
नागरिक जय ! प्रजा जन जय!
राष्ट्र के सच्चे विधायक जय !
हम आलोक मंजूषा समर्पित कर रहे हैं
और मंजूषा तुम्हारी है
और यह आलोक तुम्हारे ही अड़िग विश्वास का आलोक है।[3]

अज्ञेय का देश प्रेम के लिए जो जज्बा है वो क्षणिक स्वाधीनता तक ही सीमित नहीं है बल्कि उस नूतन भारतवर्ष तक है जिसका इन्होंने सपना संजोए रखा है। समाज में विषमता को देखकर ये अत्यधिक क्षुब्ध हो उठते हैं। कवि के काव्य में अनेक स्थलों पर क्रान्ति की भावना है। ये विषमता को मिटाकर समानता का प्रकाश फैलाना चाहते हैं ' गा दो ' कवि की 'बंदी स्वप्न' की कविता है जिसमें स्वयं की कवित्व शक्ति से प्रार्थना करते हैं कि पुनः एक बार क्रान्ति की आवश्यकता है अतः क्रान्ति की प्रेरणा देकर उनके जीवन को क्रान्तिमय बना दे—

कवि एक बार फिर गा दो !
एक बार इस अन्धकार में फिर आलोक दिखा दो !
अब मिलित है मेरी आंखें
पर मैं सूर्य देख आता हूं
आज पड़ी है कड़ियां पर मैं
कवि भुवन भर में छाया हूं
उस अबाध आतुरता को कवि
फ़िर तुम छेड़ जगा दो
बहुत दिनों बाद आज कवि !
मुझमें फिर कुछ जाग रहा है
दर्प भरे अप्रतिहत स्वर में

जाने बया कुछ मांग रहा है
मेरे प्राणों के तारों को छूकर फिर तड़पा दो।[4]

'आजादी के बीस बरस ' अज्ञेय की प्रसिद्ध कविता है। इसमें स्वाधीनता के पश्चात का बखूबी चित्रण किया गया है। यह कविता व्यंग्य से परिपूर्ण है। यहां कवि कहते हैं कि आजादी के बीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी कुछ नहीं मिला।

उन्नीस नंगें शब्द ?
अठारह लचर आन्दोलन ?
सत्रह फटीचर कवि ?
सोलह लुंजो– हा, कह लो, कलाएं –
पर चोरी चापलूसी सेन्ध मारना, जुआखोरी
....
आजादी के बीस बरस से बीस बरस की आजादी से
तुम्हें कुछ नहीं मिला
मिली सिर्फ आजादी "।[5]

उपरोक्त कविता में मानवीय मूल्यों का विघटन, अव्यवस्था और देश की नग्न यथार्थता को चित्रित किया गया है। कवि अज्ञेय की दृष्टि में आजादी एक नंगे शब्द से ज्यादा और कुछ नहीं है। कवि देश की जनता से कहते हैं कि आपने केवल अधिकारों को लेना सीखा है बल्कि जो आपके देश के प्रति कर्तव्य है उन्हें जानने की आवश्यकता नहीं समझी अर्थात देश हित के लिए कुछ नहीं किया, अपने स्वार्थ में ही लगे रहे, यही लाभ उठाने में लगे रहे आजादी का। यहां कुछ पंक्तियां है

"पन्द्रह ...... बारह.... दस....यों पांच चार और तीन
और दो और एक
और फिर इन्कलाबी स्तुन्न
जिसकी गडडुली में बंधे तुम
अपने को सिद्ध, पीर, औलिया जान बैठे हो।[6]

अज्ञेय कहते हैं कि हे हमारी स्वतंत्रता की ज्योत तू हाथ–– से––हाथ तक और ह्दय से ह्दय तक बढ़ती जा। छप्पर से लेकर महल की चोटी तक चढ़ती जा। कहने का तात्पर्य है कि हर नागरिक में देश के प्रति अनुराग हो, स्वाधीनता को प्राप्त करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो। प्रत्येक भारतवासी भारत के कोने–कोने में स्वाधीनता की ज्योति को प्रज्ज्वलित करते रहें। बाह्य शासकों ने हमारी स्वतंत्रता का हनन किया है, हमारे धर्म को दूषित किया है अतः अब हम यह सहन नहीं कर सकते, सारी सीमाओं को लांघकर देश हित में कार्य करने की आवश्यकता है। अब इसके लिए क्रान्ति की सख्त जरूरत है, इसके द्वारा ही हम न्यास प्राप्त करेंगे। हमें अब स्वयं को जलाकर, मिटाकर, रक्त से सींचकर स्वतन्त्रता के पथ को निर्मल करने की आवश्यकता है। आज विश्व में नक़ली क्रान्ति का आह्वान करने वाले मुखौटे बहुत मिलेंगे लेकिन भारत वर्ष के जैसे शौर्य, वीर, पराक्रमी, प्रतापी योद्धा अन्यत्र कहीं नहीं मिलेंगे। अज्ञेय की 'विश्वास' कविता इन्हीं स्वरों से संबंधित हैं। इसमें स्वाधीनता के आलोक को सम्बोधित करते हुए स्वयं के प्रति अटूट आस्था प्रकट की है–

"तुम्हारा यह उद्धत विद्रोही
घिरा हुआ है, जग से परे है सदा अलग, निर्मोही !
जीवन सागर ठहर–ठहर कर उसे लीलने आता दुरधर
पर वह बढ़ता ही जाएगा लहरों पर आरोही।[7]

कवि को इस बात की गहरी चिन्ता है कि भारत वर्ष सही मायने में एक ऐसा राष्ट्र कब बन पाएगा जिसमें हर मनुष्य को उसकी आवश्यकता के अनुरूप कार्य मिलेगा, कब वह सुख, चैन और आत्म सम्मान के

साथ जीवन यापन करेगा। कवि यहां एक आदर्श राज्य की कल्पना करते हैं जिसमें कोई निराश, दुःखी न हो, सभी को समान अवसर मिलें। आज हमारा लोकतंत्र विरोधी नारों से गूंज रहा है और ये नारे ही हमारी स्वाधीनता के प्रतीक है–

"या जिसे कुछ नहीं मिलता था
उसकी सान्त्वना थी
बहुत–सी–सन्तान
भरा पुरा खानदान
हम तुम, दोस्त नये कवि बेचारे
प्रजातंत्र में पाते हैं
प्रजापत्य विरोधी नारें
दो या तीन बच्चे बस।
यह कि हमने ईजाद किया
यही एक नया रस।"[8]

अज्ञेय मानते हैं कि हमारे देश में भिन्न–भिन्न वर्णों के लोग रहते हैं और जब तक जातिगत वैमनस्य, सांप्रदायिकता रहेगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, चमार, तेली, बनिये, जाट, मौलाना इत्यादि का भाव रहेगा, एक–दूसरे को नीचा दिखाने में लगे रहेंगे तो इससे परस्पर एकता का भाव नहीं होगा तो प्रश्न उठता है कि भारत अखण्ड देश कैसे बन पाएगा ? पंक्तियां हैं–

"इसका भार तू कैसे ढोयेगा
जिसे पेरेंगे जाट, ब्राह्मण, बनिया, तेली, खत्री,
मौलवी, कायस्थ, मसीही, जाट व सरदार भुमिहार आहीर
और वे सारे घेरे के बाहर बेचारे
जो नहीं पहचानते अपनी तकदीर
तू किस–किस को रोयेगा ?
कब बनेगा तो राष्ट्र ?"[9]

कवि ने यहां भारत वर्ष के देहाती जीवन का भी वर्णन किया है, भारत मां वास्तव में देहात में बसती है। वर्तमान में जो शहरों की तरफ पलायन हो रहा है ये सही नहीं है। शहरी जीवन पर इन्होंने खूब व्यंग्य किया है। आज के जहरीले शहरीपन पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि––

"सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होगे
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं ! उत्तर दोगे ?
फिर कैसे सीखा डसना
विष कहां से पाया।"[10]

आखिर क्यों मनुष्य शहर जाकर उस विषैले सांप की तरह हो जाता है, क्यों उसमें उतना विष भर जाता हैं ? ऐसे में जब शहर में रहने वाले का यही दृष्टिकोण रहेगा तो कैसे राष्ट्र भावना का विकास होगा। इस कविता में भले ही प्रत्यक्ष रूप से शहरी जीवन पर व्यंग्य किया गया है लेकिन परोक्षरूप से इसका यह तात्पर्य भी है कि शहर और देहात में विषमता न हो, यदि यह विषमता रहेगी तो कैसे राष्ट्र प्रेम उत्पन्न होगा।

"पराई राहें " अज्ञेय की लघु कविता है, इसमें उन्होंने अपने देश की, अपनी मिट्टी के प्रति अनुराग की भावना को अभिव्यक्त किया है। भारतवर्ष का मुकाबला विश्व का कोई भी मुल्क नहीं कर सकता है, बाहर भले ही चमकदार जीवन है, हर जगह जन्नत दिखती है, काल्पनिक खुशी है लेकिन वो सब बनावटी है।

पराए देश की राहें अन्जानी है लेकिन अपने देश की छायादार वृक्षों की छाहें उत्कृष्ट है, विदेशों में सब सुख होने पर भी अपने देश सदृश ममता से भरी बांहे नहीं है। पंक्तियां है

"पराये देश की अन्जानी राहें
पर शीलवान तरूओं की
गुरु उदार पहचानी हुई छांह
छनी हुई धूप की सुनहली कमी को बीन
तिनके की लघु अनी मनके सी
बींध, गंध फेरती सुमिरनी
पूछ बैठी, कहां, पर कहां
वे ममतामयी बांहे "।[11]

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि निश्चय ही सचिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय कालजयी कवि हैं, उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता का नूतन स्वर हमें देखने को मिलता है। वास्तव में जो भी उनकी राष्ट्र प्रेम से सम्बन्धित कविताएं हैं उनमें भारत वर्ष की आत्मा का चित्रण है, संपूर्ण भारत वर्ष की आत्मा बोलती है। उन्होंने अपनी कविताओं को आकाश से पाताल पर उतारा है अर्थात आम जनता के जन जीवन से जोड़ा है। जाति, धर्म और संप्रदाय से ऊपर उठकर एक राष्ट्र की परिकल्पना की। देश भक्ति का जुनून उनमें कूट–कूट कर भरा है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. अज्ञेय, इत्यलम (बांदी स्वपन) पृ.सं.76।
2. वही, पृ.सं. 57।
3. अज्ञेय, बावरा अहेरी, पृ.सं. 39, 40।
4. अज्ञेय, इत्यलम (बांदी स्वपन) पृ. सं. 59।
5. अज्ञेय, क्यों कि मैं उसे जानता हूं, पृ.सं. 13।
6. वही,पृ..सं. 14।
7. अज्ञेय, इत्यलम (बांदी स्वपन) पृ. सं. 54।
8. अज्ञेय, क्यों कि मैं उसे जानता हूं, पृ.सं. 27।
9. भोलाभाई पटेल, अज्ञेय एक अध्ययन, पृ. सं. 54।
10. अज्ञेय, इंद्रधनु रौंदे हुए (सांप) पृ.सं. 24।
11. अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, पृ. सं. 27

संत-काव्य में शून्य-चर्चा

शत्रुहन प्रसाद*

गणित शास्त्रों में शून्य एक पूर्ण इकाई है, जिसे किसी भी अंक के सामने रख देने से उसका मान दस गुना बढ़ जाता है और गुणा या भागित करने से उसका मान ही शून्य हो जाता है। जिस तरह गणित शास्त्र शून्य के बिना अपूर्ण है, उसी तरह हमारा जीवन भी इसके अभाव में सर्वथा अपूर्ण ही है। 'शून्य' अर्थात् 'निर्वात' (छवजीपदह), सरल शब्दों में कहें तो 'कुछ नहीं'। इस शून्यपन को जानने के लिए ज्ञानियों ने दो प्रमुख मार्ग सुझाए – प्रेम और ध्यान का। वस्तुतः हमारे समस्त ऋषियों और ज्ञानियों ने ध्यान में डूब कर इस शून्य भाव का अनुभव किया था तथा यह जाना था कि इस शून्य (कुछ नहीं) अवस्था में ही डूब कर उसे जाना जा सकता है, जो सब कुछ है, जो परम पूर्ण है। हमारे समस्त संतों के पद इसी अनुभव बोध से अटे पड़े हैं।

इस आलेख के आरंभ में ही यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि हमारे समस्त प्राचीन गणित मर्मज्ञ, गणितज्ञ होने से पूर्व एक ऋषि या दार्शनिक थे, फिर चाहे वह महर्षि आर्यभट्ट हो या पाइथागोरस, ऋषिवर वराहमिहिर हो या ब्रह्मऋषि ब्रह्मगुप्त। गणित शास्त्रों में शून्य एक पूर्ण इकाई है, जिसे किसी भी अंक के सामने रख देने से उसका मान दस गुना बढ़ जाता है और गुणा या भागित करने से उसका मान ही शून्य हो जाता है। जिस तरह गणित शास्त्र शून्य के बिना अपूर्ण है, उसी तरह हमारा जीवन भी इसके अभाव में सर्वथा अपूर्ण ही है। रीति सिद्ध कवि बिहारी ने इसे काव्य में बड़ी सुंदरता से इस तरह उकेरा है–

''कहत सबै बेंदी दिए, आंक दस गुनो होतै।
तिय लिलार बेंदी दिए, अगिनतु बढ़तु उदोतु।।''

वास्तव में शून्य प्रथम अंक है, जिसकी अवधारणा महर्षि आर्यभट्ट ने दूसरी सदी में दी। समग्र गणित शास्त्रों में शून्य का बड़ा मान है। यह शून्य क्या है? इस पर थोड़ी चर्चा कर ली जाए – 'शून्य' अर्थात् 'निर्वात' (छवजीपदह), सरल शब्दों में कहें तो 'कुछ नहीं'। इस शून्यपन को जानने के लिए ज्ञानियों ने दो प्रमुख मार्ग सुझाए – प्रेम और ध्यान का। वस्तुतः हमारे समस्त ऋषियों और ज्ञानियों ने ध्यान में डूब कर इस शून्य भाव का अनुभव किया था तथा यह जाना था कि इस शून्य (कुछ नहीं) अवस्था में ही डूब कर उसे जाना जा सकता है, जो सब कुछ है, जो परम पूर्ण है। भगवान बुद्ध छः वर्ष की अथक तपस्चर्या के बाद जब एक रात बोधि वृक्ष के नीचे 'अब कुछ नहीं पाना है' की अवस्था में शांत बैठ गए तब इस शून्य अवस्था में जो घटित हुआ, वह परम ज्ञान था। जैसे उस शून्यपन की अवस्था में समस्त ब्रह्माडीय ऊर्जा उन पर उतर आया हो। नोबेल पुरस्कार विजेता मैडम क्यूरी ने अपने संस्मरण में ज़िक्र किया है कि 'रेडियम' की खोज में उन्होंने बहुतेरे रात जागे, खूब परिश्रम किया किंतु इस संबंध में एक समीकरण हल ही नहीं हो रहा था। सहसा एक रात उनकी आँख लग गई, मनोमस्तिष्क शून्य हो गया, कुछ न रहा। प्रातः जब उनकी आँखें खुली तो वह समीकरण हल हो चुका था, उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, तब कहीं स्मरण हुआ कि रात में, नींद में कुछ नहीं होने की अवस्था में, वे उठ कर इस प्रश्न को हल कर गई थीं।

स्वामी विवेकानंद ने 24 सितंबर 1993 को शिकागो के एक सम्मेलन में एक प्रभावशाली वक्तव्य रखा था, जिसके केंद्र में 'शून्य' विषय था। इसी तरह महर्षि आर्यभट्ट, कणाद, वराहमिहिर, पाइथागोरस तथा भगवान महावीर ने शून्य/ शून्यपन को बड़ा मूल्य दिया है। वस्तुतः इस शून्यपन में व्यक्ति, उसका अहंकार, उसका व्यक्तिगत परिचय, उसकी सारी चिंताएँ, आशाएँ और आकांक्षाएँ सब मिट जाती हैं, तब इस निर्भार दशा में ब्रह्मांड की सारी ऊर्जा उतर आती है। जैसे वायु, निर्वात को पूरा करने दौड़ पड़ती है, प्रकृति का

*** शिक्षक, दिल्ली पब्लिक स्कूल, विशाखापट्टनम (आँ.प्र.)**

कोई हिस्सा रिक्त नहीं रहने देती, सारी रिक्तता को भरते रहती है, ठीक वैसे ही जब हम ध्यान में गहरे डूब जाते हैं, भीतर कोई चिंता, संताप और शेष नहीं रह जाते, भीतर से पूरी तरह रिक्त हो जाते हैं, तब इस रिक्तता को पूर्ण करने के लिए भी अंतरिक्ष से ऊर्जा दौड़ी चली आती है, यही ऊर्जा, ब्रह्म ऊर्जा कहलाती है, जो हमारी सारी ब्याधियों को समाप्त कर हमें ब्रह्म शक्ति का अंग बनाती है। तब हम बिल्कुल निर्भार व तनाव मुक्त होते हैं, यही समाधि की अवस्था होती है। यही आनंद की परम अवस्था होती है, रस दशा होती है, जिसे ऋषिगण तैतरीय उपनिषद में 'रसो वै सः' कहते हैं।

इसकी चर्चा से संतों के पद अटे पड़े हैं– हमारे मध्यकालीन निर्गुणमार्गी कवि कबीरदास जी एक समाधिस्थ संत थे, जिन्होंने इस शून्यपन को न केवल अनुभव किया अपितु अपने विभिन्न साखियों में इसे अपने अनुभवजन्य शब्दों में अभिव्यक्त किया– वे कहते हैं–

सून्य गगन में रहनि हमारि, भली बनी आई सगुरी में।
मन लागो मेरो यार फकीरी में।।[1]
हेरत–हेरत हे सखि, रहा कबीर हेराय।
बूँद समाना समुंद में, सो कत हेरि जाय।।[2]

यहाँ कबीर साहब ने स्पष्ट कर दिया है वे ईश्वर को खोजते–खोजते वे स्वयं मिट गए, कुछ नहीं रहा और जब भीतर का शून्य, बाहर के शून्य से मिल गया तो उसे किस तरह खोजा जा सकता है। इस शून्यपन के अनुभोक्ता मध्यकालीन संत रज्जब 'शून्य' को केंद्र मानते हुए कहते हैं कि–

सून्य संजीवनि उरि अमर, रसना रहते माहि।
जन रज्जब ऑखू अखिल, प्राणी मरै सुनाहि।।[3]

संत सिंगा जी इस शून्य अवस्था के अनुभव को इस तरह स्पश्ट करते हैं–

सुनत नगारा **शून्य** में, ताको सुध लीजै।
मोतियन की वर्षा वर्षे, कोई हरिजन भीजै।।[4]

संत कबीर दास जी के सुप्रसिद्ध शिष्य संत धरम दास ने अपने सदगुरू से शून्य की दीक्षा ली और वे अपने अनुभव को इस रूप में अभिव्यक्त करते हैं–

झरि लागै महलिया गगन घहराय।
सून्य गगन से अमृत बरसै, प्रेम अनंद होइ साध नहाय।
खुली किवरिया मिटी अंधियारिया, धन सतगुरू जिन दियो लखाय।[5]

भक्ति मीरा के गुरू संत रैदास इस शून्यावस्था को इस तरह व्यक्त करते हैं–

सदा अतीत ज्ञानधन बर्जित, निरबिकार अविनासी।
कह रैदास सहज **सुन्न सत**, जीवन मुक्त निधि कासी।।[6]

राधा स्वामी सत्संग के मूल प्रवर्तक श्री शिव दयाल सिंह (स्वामी जी महराज) अपने अनुभव संपदा को बॉटते हुए कहते हैं –

गगन मंडल का ताला खोले, लाल जवाहर पावै।
सुन्न सिखर का मंदिर झांके, अदभुत रूप दिखावै।।[7]

मध्यकालीन संत दादू दयाल अपने अनुभव के मोतियों को इस तरह बिखेरते हैं –

सुन्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
दादू यह रस बिलसिए, ऐसा अलस अभेव।।[8]

संत मलूक जी अपने शून्यपन के अनुभव इस तरह दर्शाते हैं–

सुन्न गगन में महल हमारा, निरगुन सेज बिझाई।
चेला गुरू दोउ सैन करत हैं, बड़ी असाइस पाई।।[9]

उपरोक्त तथ्यों से सुस्पष्ट होता है कि समस्त संतों, ज्ञानियों एवं मनीषियों ने अपने शून्यपन की अवस्था का वर्णन बड़े मनोभाव से किया है। वस्तुतः जब कोई बीज ज़मीन के अंदर जाकर अपना संपूर्ण अस्तित्व खो देता है तब कहीं नवांकुर फुटता है, फिर वह फलदार वृक्ष बन पाता है। मनुष्य के साथ भी यही घटना घटती है। जब व्यक्ति अपने भीतर जाकर अपना सारा अहंकार तथा परिचय खो देता है, तब कहीं उसके भीतर से जो प्रस्फुटित होता है, वह बुद्धत्व का फलदायी विराट वृक्ष होता है। तब वह द्विज हो जाता है अर्थात् 'दोबारा जन्म लेने वाला' हो जाता है। शून्य होकर वह पूर्ण हो जाता है। 'द्विज' ब्राह्मण का एक पर्यायचाची शब्द है, एक समय था, जब ब्राह्मण जन साधना तथा ध्यान इत्यादि के माध्यम से अपने भीतर पुनः जन्म लेते थे, तो उन्हें द्विज कहा गया। यहाँ ब्राह्मण से अभिप्राय किसी जाति विशेष से नहीं है, वरन् ब्रह्म की चर्या करने वाले उन सभी मनीषियों से है, जो ध्यान–साधना करके ब्रहम होने का प्रयास करते थे।

सन्दर्भ–सूची :–

1. दास श्याम सुंदर, कबीर गंथावली,, विश्व भारती प्रकाशन, पृष्ठ 129।
2. सिंह गोविंद, कबीर गंथावली, साहनी पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ 107।
3. चतुर्वेदी परशुराम, संत काव्य, किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ 190।
4. वही, पृष्ठ 133।
5. वही,, पृष्ठ 135।
6. वही, पृष्ठ 113।
7. वही,, पृष्ठ 266।
8. वही, पृष्ठ 143।
9. वही, पृष्ठ 178।

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी-स्त्री और पर्यावरणीय चेतना

(विशेष संदर्भ : 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ', 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'अस्थि फूल' उपन्यास)

देवाशीष कुमार*

शोध–सार :– हिंदी साहित्य सदियों से चली आ रही साहित्यिक कार्यों की एक समृद्ध परंपरा है, जो समाज, संस्कृति और मनुष्य के बीच एक गहरा संबंध स्थापित करती है। यह शोध आलेख हिंदी उपन्यासों में अंतर्निहित पर्यावरण की समस्या के साथ–साथ आदिवासी स्त्रियों की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। मुख्यधारा की सभ्यता जो आजकल पूंजीवादी और सामंतवादी व्यवस्था के गठजोड़ का मिला–जुला स्वरूप है, उसके आगमन ने मनुष्य को आधुनिक सुख–सुविधा के साधन तो उपलब्ध कराए, मगर उसने उसे प्रकृति से भी दूर कर दिया है। परिणामस्वरूप उसकी लालसापूर्ण प्रवृत्ति ने उसे उसकी मानवीय नैतिकता से भी दूर कर दिया है। वर्तमान पूंजीवादी दौर में जहाँ अर्थ मनुष्य के आपसी रिश्तों के साथ–साथ प्राकृतिक घटकों के मूल्य निर्धारण का पैमाना बन गया हो, वहाँ उसके संवेदना पक्ष का भी ह्रास होता जा रहा है। आज मनुष्य का मनुष्य से अलगाव, जिससे वह अपनी मनुष्यता खोता जा रहा है और आदिम अमानुषिक भाव की ओर पुनः बढ़ रहा है, ऐसे समय में साहित्य का दायित्व और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन बढ़ता जा रहा है, मगर उससे उत्पादित वस्तुओं का इस्तेमाल कौन कर रहा है? आज जितनी आबादी है उससे अधिक संसाधन उपलब्ध तो हैं; मगर उनका वितरण समान रूप से नहीं हो रहा है। आज भी आदिवासियों को उनकी ही जमीन से निष्कासित कर उनकी जमीन का इस्तेमाल किसी धनाढ्य वर्ग की आधारभूत जरूरतों से लेकर उनकी शानो–शौकत को पूरा करने के लिए किया जा रहा है। चयनित उपन्यासों में उस तथाकथित मुख्यधारा का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार जो पूंजीवादी संस्कृति के साथ मिलकर इन हाशिये पर स्थित आदिवासियों को जबरन विस्थापित करने पर मजबूर करती है; उनसे आदिवासी वर्ग अपना प्रतिरोध व्यक्त करता है और एक सामाजिक आंदोलन छेड़ देता है, जिसमें जल–जंगल–जमीन बचाओ की अनुगूँज सुनाई देती है। इन आंदोलनों में स्त्रियों का प्रमुख योगदान रहता है। इस आलेख में वर्तमान सदी के कुछ चयनित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी स्त्रियों की स्थिति, जीवन के दैनिक संघर्षों के साथ ही उनके सशक्त प्रतिरोध और अभिव्यक्ति को वर्णित किया गया है। इसलिए हम इसी संदर्भ में उपन्यासों के माध्यम से स्त्री और पर्यावरणीय संबंधों और उनकी साझी समस्याओं का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

बीज शब्द– आदिवासी, स्त्री, पर्यावरण, प्रकृति, उपन्यास।

भूमिका : साहित्य अपने समय की प्रमुख या महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि गौण विषयों पर भी अपनी पैनी नज़र रखता है और उसे साहित्यिक अभिव्यक्ति देता है। उसका विषय हाशिये से लेकर शीर्ष पर स्थित प्रत्येक मनुष्यों की पीड़ा और वेदना को दर्ज करके उसे वैधता देना है ताकि उन अन्यायों से लड़ने के लिए संवेदनशील व्यक्तियों को वह प्रेरित कर सके। हिंदी साहित्य के आगमन से बहुत पूर्व भारतीय सभ्यता एवं भाषाओं में प्रकृति और मनुष्य के संबंध को प्राचीनकाल के ऋषि–मुनियों ने अपने ग्रंथ में श्लोकों के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने प्रकृति के साथ मनुष्य का दैवीय संबंध स्थापित किया। पृथ्वी पर मानवीय अस्तित्व के मूल कारणों से वह अनभिज्ञ न थे। 'वृक्षाद् वर्षति पर्जन्यः पर्जन्यादन्न संभवः' अर्थात् वृक्ष जल है, जल अन्न है और अन्न जीवन है। जंगल को वे आनंद का कारण ही नहीं बल्कि उसे मनुष्यों के लिए कल्याणकारी भी मानते हैं क्योंकि वे वातावरण को शुद्ध भी रखते हैं– 'अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।' ऋग्वैदिक काल में प्रकृति के प्रत्येक घटक को मनुष्य से ऊपर का दर्जा दिया गया। वहाँ एक वृक्ष को मनुष्य के दस पुत्रों के बराबर का सम्मान और नदियों को माँ का दर्जा प्राप्त है– दशकूप समावापीः दशवापी समोह्रदः/दशह्रद समःपुत्रो दशपुत्रो समोद्रुमः। इसी प्रकार साहित्य में भी प्रकृति से एक अलग तरह का सम्मोहन एवं प्रेम दिखाई पड़ता है, जहाँ लेखक उसकी अद्भुत

***शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।**

कलाकारी एवं सृजनात्मकता को गहराई तक अनुभूत कर सृजन के लिए प्रेरित होता है। संस्कृत के महान कवि कालिदास की रचनात्मकता की मूल प्रेरणास्रोत प्रकृति ही है। 'कुमारसंभवम्', 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' जैसी कालजयी कृतियों में प्रकृति के प्रति मनुष्य का असीम प्रेम महसूस किया जा सकता है। हिंदी साहित्य में भी विषय विविधता के साथ मनुष्य और प्रकृति के बीच आदिम अंतरसंबंधों को अभिव्यक्ति मिलती है। कहीं वह मूल प्रेरणास्रोत बनकर आती है तो कहीं वह खुद रचना का विषय होती है।

मनुष्य जब वेदना या प्रेम के वियोग में कभी–कभी अकेला पड़ जाता है तो वह प्रकृति से जुडने का प्रयास करता है। इस क्रम में प्रकृति के साझी चिड़िया–चुनमुन से लेकर वह पेड़–पौधों को भी अपनी वेदना का साथी बना लेता है। इसी संदर्भ में तुलसीदास की एक चौपाई का प्रसंग याद आता है, जिसमें सीता के अपहरण के पश्चात राम वनों में भटकते हुए पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं से सीता का पता पूछते हैं– हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी/ तुम देखी सीता मृगनैनी। 'पद्मावत' में 'जायसी' ने रानी पद्मावती के अनंत सौन्दर्य का जिक्र करते हुए प्रकृति को भी उनके सौन्दर्य के लिए व्याकुल बताया है। 'नागमती वियोग वर्णन' में जायसी ने बारहमासा के संदर्भ में जो रूपक और उपमा की छटा गढ़ी है उसे पाठक पढ़ते हुए भाव–विभोर हो उठता है। इसी क्रम में छायावादी कवियों का भी प्रकृति से एक तरह का रागात्मक संबंध दिखाई पड़ता है। सुमित्रानंदन पंत कहते हैं– 'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया/तोड़ प्रकृति से भी माया/बाले! तेरे बाल–जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन/ भूल अभी से इस जग को।' इन काव्यों में प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप लगाया गया है। जयशंकर प्रसाद लिखते हैं– 'पगली हाँ संभाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा अञ्चल/देख बिखरती है मणिराजी अरी उठा बेसुध चंचल।'

अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात भारत की संस्कृति और सभ्यता पर यूरोपीय सभ्यता का प्रभाव लक्षित होने लगता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण यूरोपीय पूंजीवादी सभ्यता का प्रभाव यहाँ के मनुष्यों पर ही नहीं बल्कि प्राकृतिक संसाधनों पर भी होता है। जमीन और जंगलों पर अंग्रेजों के आधिपत्य से उनका मनमाना दोहन किया जा रहा था और उनसे उत्पादित कच्चे माल का उपयोग अपने देश के विकास के लिए किया जा रहा था। जिसके कारण आज़ादी के बाद भी देशवासियों को कई बार अकाल का सामना करना पड़ा। भारत में अंग्रेजी सभ्यता के आगमन के साथ गद्य विधा का विकास होता है, जिसके साथ ही उपन्यास का जन्म और विकास शुरू होता है।

विदित है कि भारत में उपन्यास लेखन की परंपरा यूरोप से आती है। यूरोपीय आधुनिकता के भारत आगमन से साहित्य में उसका गहरा प्रभाव दिखाई देने लगता है। यूरोपीय आधुनिकता ने यहाँ के जनमानस के साथ–साथ जिन घटकों पर अपना प्रभाव डाला उसमें उपन्यास प्रमुख रूप से परिलक्षित होते हैं। भारतीय उपन्यास के उदय एवं विकास के लिए जिन भौतिक आधारों जैसे आधुनिक छापेखाने और आधुनिक ढंग के कॉलेज एवं जिस वैचारिक पृष्ठभूमि जैसे आधुनिकता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी, वे आधुनिक युग में ही विकसित हुए। हिन्दी में उपन्यास लेखन की शुरुआत बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से होती है। प्रारंभ में ये उपन्यास तिलस्मी, ऐयारी आदि मनोरंजक विषयों पर लिखे गए। इसका प्रमुख कारण अंग्रेजों की औपनिवेशिक मानसिकता थी, जिनमें अंग्रेजी लेखक अपने चलताऊ उपन्यासों को यहाँ खपाने के प्रयास में लगे हुए थे और उनका उद्देश्य यहाँ ऐसे वर्ग का निर्माण करना रहा, जो औपनिवेशिक शासन को समर्थन करता हो। इस मत के समर्थन में प्रो. मैनेजर पाण्डेय का कथन उल्लेखनीय है। वे कहते हैं, ''भारत में उपन्यास का उदय तब हुआ जब वह पराधीन था। अंग्रेजी राज भारतीयों को असभ्य और असंस्कृत मानता था, इसलिए वह अपने यहाँ के घटिया साहित्य को भारत में खपाने की कोशिश करता था। परिणाम यह हुआ कि भारत की विभिन्न भाषाओं में आरंभ में अंग्रेजी के रहस्य–रोमांच, जासूसी और सतही यथार्थवाद के उपन्यासों की भरमार थी। बांग्ला, हिन्दी, गुजराती और मराठी में रोनाल्डस के 'लंदन–रहस्य' के अनुवादों की धूम मची हुई थी।''[1] सही अर्थों में देखें तो हिन्दी या अन्य भाषाओं में लिखे उपन्यासों का आरंभ तब होता है; जब उसके विषय के केंद्र में समाज की समस्या एवं उसके समाधान की तरफ ध्यान जाता है। हिन्दी में यह काम प्रमुख रूप से प्रेमचंद द्वारा शुरू हुआ। मैनेजर पांडेय जी के शब्दों में कहें तो उन्होंने उपन्यास को सामाजिक के साथ–साथ राजनीतिक स्वाधीनता का आख्यान बनाया। इस क्रम में प्रेमचंद के अनेक समकालीन लेखकों एवं आगामी पीढ़ी के लेखकों ने समाज के प्रत्येक वर्ग के मनुष्यों की समस्याओं पर लेखनी चलायी। चाहे वह किसान हो या मजदूर; मध्यवर्ग हो या निम्नवर्ग; स्त्री,

दलित एवं आदिवासी सभी समाज की समस्याओं को पूरी ईमानदारी से उनके यथार्थ को इन लेखकों ने अपने लेखनी के माध्यम से उद्घाटित करने का प्रयास किया।

मुख्य आलेख : हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विषयक लेखन की शुरुआत लगभग बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से होती है जहाँ गैर आदिवासी लेखकों ने आदिवासी समाज की संस्कृति, रहन–सहन तथा उनके समाज की समस्याओं को उठाया। बाद में आदिवासी समाज के लेखकों द्वारा जो उपन्यास लिखे गए वह उपन्यास गैर–आदिवासी लेखकों से ज्यादा गहन अनुभूति के साथ व्यक्त किए गए। जैसा कि हम जानते हैं आदिवासी संस्कृति आरंभ से ही पर्यावरणीय संस्कृति रही है। यह समाज शुरुआत से ही प्रकृति के समीप रहा है और उसी के साथ पला–बढ़ा है। प्रकृति को ही वह पूजते आया है। यह लोग श्रद्धा से जंगल को बिर बोंगा एवं पहाड़ को बुरु बोंगा कहकर पुकारते हैं। प्रकृति के बिना वे लोग अपने जीवन की एक क्षण भी कल्पना नहीं कर सकते। उन्होंने प्रकृति के साथ अनावश्यक छेड़छाड़ कभी नहीं की, न ही उसका दोहन किया। जितनी मात्रा में उनके आजीविका की पूर्ति हो, उतना ही प्रकृति से लिया। उनके आचरण, संस्कार एवं परंपरा में स्वयं के साथ–साथ प्रकृति के संरक्षण एवं पोषण की भावना निहित रही है। उनके शोषण की जमीन अंग्रेजी उपनिवेशवाद ने तैयार की। उन्होंने उनकी जमीनों को जबरन छीनकर जंगलों को उजाड़ा और निजी हितों के लिए आदिवासियों को दयनीय स्थिति में छोड़ दिया। उसके बाद आज आधुनिक पूंजीवादी सभ्यता के आगमन पर इन्होंने भी मुख्यधारा के विकास के नाम पर जिनमें आदिवासी कभी शामिल नहीं रहा, उन्हीं आदिवासियों को उनकी जमीन से बेदखल करने का प्रयास जारी रखा। उनकी स्त्रियों को उपभोग के साधन के रूप में देखा जाने लगा। भुखमरी, शिक्षा और रोजगार से वंचित समाज में स्त्रियों की स्थिति और बदतर हो जाती है, जिसका फायदा उठाकर खदान के ठेकेदारों द्वारा उनकी स्त्रियों के साथ बदसलूकी भी की जाती है। इसके परिणाम यह हुए कि आज वह समाज विस्थापन, गरीबी, भुखमरी और अन्य आधारभूत सुविधाओं से वंचित होकर हाशिये पर आ गया। यह हाशियेकरण की स्थिति आधुनिक समय में खासकर, बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अधिक तेजी से हुई, जब वैश्वीकरण, उदारीकरण की नीतियाँ पूरे विश्व में अपने पाँव पसारने लगीं। उदारीकरण की नीतियों से मुक्त व्यापार एवं मुक्त बाजार की व्यवस्था को समर्थन प्राप्त हुआ, जिसके चलते विदेशी कंपनियों ने आदिवासी इलाकों को निशाना बनाया क्योंकि उनके निवास स्थान की जमीनों पर उन्हें खनिज पदार्थ मिलते थे, इसलिए आदिवासियों को उनसे बिना अनुमति के उन्हें वहाँ से हटा दिया जाता था। इस तरह उन्हें अपनी जमीन से बेदखल कर उन्हें मामूली मुआवजा देकर निर्वासित जीवन जीने को मजबूर कर दिया जाता और खनन से मिले पदार्थों का प्रयोग तथाकथित मुख्य समाज के विकास हेतु किया जाता। ग्लोबल गाँव के देवता में इस उजाड़ की दास्तान इस तरह से कही गयी है–''मीलों तक पसरे पहाड़ के ऊपर का यह चौरस इलाका मन को और उचाट कर रहा था। छिटपुट जंगल, बाकी खाली दूर–दूर तक फैले उजाड़–बंजर से खेत। बीच–बीच में बॉक्साइट की खुली खदानें। जहाँ से बॉक्साइट निकाले जा चुके थे वे गड्ढे भी मुंह बाये पड़े थे। मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े–बड़े धब्बे हों।''[2] विकास का मुख्य विषय सम्पूर्ण मानव है तो इसका लाभ भी सम्पूर्ण मानव जातियों को मिलना चाहिए मगर ऐसा नहीं होता है। इसके साथ ही हम विकास के जिस मार्ग पर चल रहे हैं उसकी कीमत इस तरह से अदा करनी पड़ रही है। तो इसकी कीमत कौन अदा कर रहा है? वह समाज जिसे इसका लाभ मिल रहा है या वह दूसरा समाज जिसकी कीमत पर इन्हें लाभ पहुंचाया जा रहा है? निःसंदेह इसमें राज्य और पूंजी की मिली–जुली भूमिका है।

ऐसा माना जाता है कि आदिवासी समाज मूलतः समतामूलक समाज है, जहाँ स्त्रियों और पुरुषों को स्वतंत्रता, समानता एवं सम्मान बराबर मिलता है। आदिवासी स्त्रियाँ सशक्त हैं। वह स्वयं के और परिवार के लिए निर्णय लेती हुए नज़र आती हैं। कहीं–कहीं तो वह पुरुषों से ज्यादा सशक्त नज़र आती हैं। 'रणेन्द्र' कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता' के मास्टर साहब पाथरपाट स्कूल के कैम्पस में घुसते ही हाट जाती हुई स्त्री की मूर्ति पर नज़र पड़ जाती है। "पीठ पर बंधा हुआ बच्चा, एक हाथ में मुर्गी, माथे पर लकड़ी का छोटा सा गट्ठर। एकदम सजीव मनोहारी मूर्ति।"[3] जहाँ पुरुष सिर्फ खेती या मजदूरी करता दिखता है वहीं इस समाज की स्त्रियाँ घर के कामों से लेकर बाहर पुरुषों के साथ खेतों एवं खदानों में काम करते हुए भी दिख जाती हैं। यहाँ आदिवासी समाज की स्त्री की मजबूरी भी है क्योंकि अकेले मरद की मजदूरी से परिवार का पेट भरे तब तो? मगर अधुनातन समय में बढ़ते औद्योगिक, खनिज क्षेत्र इन आदिवासी स्त्रियों के लिए विस्थापन और पलायन के अधिक कारण बन रहे हैं। जल–जंगल–जमीन से उजड़ने एवं जगह–जगह कारखाने लगने से सर्वाधिक असुरक्षा बोध इन्हें हुआ है।

मुख्यधारा समाज द्वारा शिक्षा एवं स्वास्थ्य के प्रचार–प्रसार एवं आपसी संपर्क से इनके समाज में भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था फैली, जिसकी शिकार आदिवासी स्त्रियाँ हुईं।

उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' आधुनिक विकास से उपजी विकृतियों को दर्ज करता हुआ एक बेहतरीन उपन्यास है। इस उपन्यास में आदिवासी समाज के अंतर्गत आने वाले असुर समाज जिन्हें मिथकों में अमानुष रूप दिया गया; उन मिथकों को तोड़ता हुआ, उनकी सामाजिक स्थिति की पड़ताल करता हुआ पूंजी और राज्यसत्ता की गठजोड़ से आधुनिक समय में चल रहे तथाकथित प्रगति को आईना दिखाता है। आदिवासी जहाँ निवास करते हैं वहाँ के पहाड़, पेड़, कुछ सपाट क्षेत्र जिन्हें वह पूजते एवं उनसे पोषित होते हैं उन्हें अपने से भिन्न नहीं मानते; न ही वह उनके बिना अपने अस्तित्व की कल्पना करते हैं। वह कहते हैं, "हम प्रकृति के पूजक हैं। हमारे महादनिया महादेव वही नहीं हैं जो लंगोट बाबा के हैं। हमारा महादेव यह पहाड़ है। यह पाट है, जो हमें पालता है। हमारी सरना माई न केवल सखुआ गाछ में, बल्कि सारी वनस्पतियों में समायी हैं। हम सारे जीवों से अपने गोत्र को जोड़ते हैं। छोटे जीवों कीट–पतंगों को भी अपने से अलग नहीं समझते। हमारे यहाँ अन्य की अवधारणा ही नहीं है।"[4]

यह उपन्यास असुर जाति की विलुप्तता पर प्रकाश डालते हुए उनके ऐतिहासिक कारणों की ओर भी इशारा करता है। पूरे विश्व में उन्हें तथाकथित सभ्य कही जाने वाली जातियों द्वारा उन्हें हाशिये पर डाल दिया गया। यहाँ भारत की उदार एवं सहिष्णु कही जाने वाली जातियों पर भी प्रश्न उठाया गया, जिन्होंने असुरों के लिए कहीं जगह नहीं छोड़ी। यहाँ तक की मिथक से लेकर इतिहास में उनके सभ्यता का कोई नामोनिशान नहीं मिलता। आज यह समुदाय अत्यधिक तंग, गरीब तथा असहाय स्थिति में है। "इन्हें नष्ट करने की प्रक्रिया तो आज भी जारी है। जमीन और बेटियाँ चुप–चुप, शांत–शांत किन्तु रोज छीनी जा रहीं।"[5] आदिवासी समाज आज गरीबी और भूख से टूट चुका है। इसकी सामाजिक व्यवस्था भी निरंतर दयनीय होती जा रही है। "पेट भरने के लिए जिसके घर में एक समय का भोजन न हो वहाँ पर अपने बेटों को गाँव छोड़ने एवं बेटियों को डेरा में काम करने के बहाने रखनी बनने से कौन रोक सकता है?"[6] हमारी प्राचीन सभ्यता हो या आधुनिक; इन सारी व्यवस्थाओं के बीच स्त्री सबसे ज्यादा पिसती हुई दिखती है। आदिवासी स्त्रियों के साथ तो शोषण के परत–दर–परत जुडते हुए नज़र आते हैं। इनकी व्यथा को समझना इस पुरुषसत्तात्मक समाज के लिए मुश्किल है। स्त्री को स्वयं की स्वतंत्रता, अधिकार के लिए लगातार एवं लंबी लड़ाई लड़नी है। वह सिर्फ स्वयं के लिए नहीं प्रकृति को बचाने के लिए लड़ रही हैं। "धरती भी स्त्री, प्रकृति भी स्त्री, सरना माई भी स्त्री और उसके लिए लड़ाई लड़ती सत्यभामा, इरोम शर्मिला, सी. के. जानू, सुरेखा दलबी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिया ललिता भी स्त्री। शायद स्त्री ही स्त्री की व्यथा समझती है।"[7] उपन्यास में खनन कंपनियां जिन्हें लीज की जमीन पर खनन करने की अनुमति थी; मगर वह लीज की जमीनों को कम आदिवासियों की जमीनों को ज्यादा खोदते थे। लीज की शर्तों को दरकिनार करते हुए तथा बाक्साइट जमीन से निकाले जाने के पश्चात गड्ढे बिना भरे छोड़ देते। जिसके कारण पीने के पानी दूषित हो गए तथा सेरेब्रल मलेरिया जैसी खतरनाक बीमारी आदिवासियों में फैलने लगी। जिससे तंग आकर खनन क्षेत्रों को बंद करने को लेकर आदिवासियों ने जुलूस निकाल दिया। एतवारी और बुधनी दी इस जुलूस का मोर्चा संभालते हुए आगे बढ़ती जा रही थीं।

उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' विस्थापन, प्रदूषण एवं रेडियोऐक्टिव तत्व से होने वाले दुष्प्रभाव के कारण आदिवासी समाज किस कदर विनष्ट होने की कगार पर है, इसको गहराई से अभिव्यक्त करता है। उपन्यास में यूरेनियम की खदान से निकलने वाले कचरे के दुष्प्रभाव को दिखाया गया है। कंपनी वाले खदान से निकले कचरे को आदिवासियों के निवास स्थानों के आसपास डाल कर खुला छोड़ देते हैं। जिनसे आदिवासी स्त्रियाँ और उनके बच्चे अधिक प्रभावित होते हैं। स्त्रियों पर उस विकिरण का इतना अधिक प्रभाव होता है कि उनकी स्वयं की और उनके आने वाले बच्चे मानसिक या शारीरिक रूप से विकलांग पैदा होते हैं। इन सबका जीवंत प्रमाण आदित्यश्री अपने कैमरे से वीडियो लेते समय दिखाता है– "जिन्हें बार–बार गर्भपात होता, उनसे भी ज्यादा वे औरतें दुखी दिखतीं जिनके बच्चे जन्म लेने के चौबीस घंटे, तीन दिन या सात दिन तक जिंदा रहने के बाद मर जाया करते थे। शारीरिक विकृतियों के साथ जन्मे बच्चों की माताओं का दर्द तो उनसे भी ज्यादा चुभा कैमरे के साथ–साथ फ़िल्मकार की आंखो में! बच्चा ना होने की वजह से छोड़ दी गई मरंग गोड़ा की उन लड़कियों ने भी एक महिला डॉक्टर को अपनी पीड़ा बताई जो मरंग गोड़ा से बाहर ब्याही गयी थीं।..."[8]

इस प्रकार मरंग में निवास कर रहे आदिवासी विस्थापन एवं पलायन के लिए मजबूर हो गये। उनकी जमीनें छीनकर उन्हें मामूली मुआवजा देकर जीवन भर के लिए निराश्रित एवं बेरोजगार कर दिया जाता। यही नहीं जो आदिवासी वहाँ मजबूरन रुकते, उन्हें अपनी जिंदगी एवं स्वास्थ्य से समझौता महंगा पड़ गया। उनके बच्चे कचरे के डैम पर खेलते–खेलते भयंकर रोग के शिकार बनने लगे। यह सब कुछ देखते हुए गाँव के लोग अंदर से छटपटा उठते और साथ ही खुद को असहाय भी महसूस करते। "मसलन, लौह अयस्क वाले परित्यक्त पत्थरों के ढेर पर लावारिसों की तरह भूखे प्यासे भटकते मज़दूरों के बच्चों को देख चारिबा का करुणा से भर उठना और यह कहना– काश! मैं इनके लिए कुछ कर पाती!.."[9] चारिबा जोकि अपने घर में अपने अपने माँ और पिता की अकेली लड़की है। उसे अपने परिवार की आजीविका के लिए उसी अयस्क वाली खदान में मजदूरी करने जाना पड़ता है। उसके जैसी लगभग सारी आदिवासी स्त्रियाँ खदान में काम करती हैं। कॉर्पोरेट कम्पनियों की खदानों में काम करने वाली इन स्त्रियों से बदसलूकी की जाती। जिससे इन सारी परेशानियों से त्रस्त होकर इन खदानों को बंद करने का आंदोलन शुरू किया गया। "मांझी हड़म और परगनाओं के कहने पर जेल भरो आंदोलन शुरू कर दिया गाँव वालों ने। कंपनी का काम रोकने के लिए, उनकी गाड़ियों की आवाजाही बंद करने के लिए मवेशियों के साथ पाँच–पाँच महिला पुरुष सड़क पर लेट जाते। जैसे ही पुलिस उन्हें गिरफ्तार करती, पाँच और महिला पुरुष आकर उनकी जगह ले लेते। इस प्रकार रोज करीब पचास साठ ग्रामीण स्वेच्छा से गिरफ़्तारी देने लगे। आसपास के सभी गाँव के लोग गिरफ़्तारी देने को तैयार थे।"[10]

यह आंदोलन सिर्फ खुद के अस्तित्व को बचाने का आंदोलन नहीं था बल्कि उनके एकमात्र घर पर्यावरण को बचाने का भी सवाल था। सगेन कंपनी के खिलाफ आंदोलन के लिए अपने लोगों को इस तरह समझाता है– "जब आप लोगों के संताली समाज में जाहेर थान (पूजा स्थल) पर स्थित एक भी पेड़ काटे जाने पर सजा देने का प्रावधान है तब खदान कंपनी द्वारा खदान, मिल या डैम बनाने के लिए जो सैकड़ों पेड़ काटे गए हैं या काटे जा रहे हैं, उसकी क्या सजा होनी चाहिए? और फिर इस जगह टेलिंग डैम बनेगा तो सिर्फ कुछ घर और खेत ही नहीं बल्कि आप लोगों का पूजा स्थल जाहेर थान भी तो डूब जाएगा?.."[11] उसके पश्चात आंदोलन को काफी जोर मिलता है और जमकर गिरफ्तारियाँ देते हुए भी यह लोग नहीं हिचकते हैं। आंदोलन में महिलाओं की उपस्थिति प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह से मजबूती से होती है। सगेन के विस्थापन विरोधी दल के सचिव की पत्नी इन पीड़ित औरतों का नेतृत्व करती है। इन स्त्रियों ने पुलिसिया दमन की परवाह न करते हुए पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर जगह जगह प्रदर्शन करना शुरू कर दिया। पुनर्वास और रोजगार की मांग करते हुए कंपनी के मुख्य गेट को घेरकर लुरमडीह, काटिन, तरवा, सतजनता आदि खदानों से कच्चा माल लेकर आने वाली गाड़ियों को मिल में घुसने से रोका जाने लगा। आंदोलन करते हुए स्त्री और पुरुषों का यह नज़ारा देखते बनता– "लाल पाड़ वाली सफेद साड़ी में औरतें। पीले रंग का साफा बांधे पुरुष। औरतों के हाथ में बेलन, झाडू कलछुल, कटारी जैसे घरेलू अस्त्र! पुरुषों के हाथ में तीर, धनुष, लाठी, डंडा! ढ़ोल, नगाड़ा, माँदर भी! वे उन्हें बजा रहे हैं...नाच रहे हैं...नारे लगा रहे हैं...

– "जल जंगल जमीन हमारा है..."
– "हमें हमारा घर, वापस करो..."
– "इंकलाब जिन्दाबाद..."[12]

कुछ महिलाएं इन आन्दोलनरत साथियों की मदद एकदम निस्वार्थ भाव से कर रही थीं। "पत्ता तोड़ने या लकड़ी काटने के बहाने स्थानीय संथाल महिलाएं उन्हें खाना पहुँचा जाती थीं। मरंग गोड़ा से उनकी राय, उनका निर्देश लेने के लिए, पश्चिमी सिंहभूम तथा अन्य इलाकों से उनके सहयोग के लिए आने वाले आंदोलनकारियों, भरोसेमंद प्रेसवालों को रास्ता दिखाकर उन तक लेकर आती थीं वे। रात को वन गाँव स्थित किसी झोपड़ी में सोने की व्यवस्था भी कर देती थीं।"[13]

'अल्पना मिश्र' कृत 'अस्थि फूल' वर्तमान का ज्वलंत विषय पर्यावरण एवं स्त्री(आदिवासी) दोनों के संदर्भ में लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें झारखंड की सामाजिक–राजनीतिक के साथ जंगल, जमीन तथा स्त्रियों की पीड़ा को काफी नजदीक एवं गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। यहाँ दिखाया गया है कि जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से बिना हिचके इस पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा खनिजों को खोदकर निकाला जा रहा है उसी तरह स्त्रियों को भी इस पितृसत्तात्मक समाज में एक वस्तु की तरह उसके एवं उसके गर्भ का इस्तेमाल किया जा रहा है। जिस तरह स्त्री लड़ती हुई इस व्यवस्था को बदलती एवं स्वयं के अनुकूल करती हुई आ रही

है उसी तरह आज पृथ्वी भी स्वयं के शोषण को अब बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करेगी। "पृथ्वी माफ करती रही मनुष्य को उसकी अधम नीचताओं के लिए...लेकिन अब नहीं, सृष्टि के विनाश में– सृष्टि के सृजन की थकान और पीड़ा अत्याचारों से दब गई है...अब नहीं!"[14]

आज पूंजी और पितृसत्ता समाज दोनों मिलकर शोषण का ऐसा वातावरण तैयार कर रहे हैं जिनमें आज भी स्त्री उपभोग की वस्तु बनकर रह गई है। प्रकृति भी स्त्री ही है, जिसमें स्त्री की तरह अपार धैर्य, करुणा एवं संवेदना है, मगर वह भी आज सिर्फ साधन के रूप में प्रयुक्त की जा रही है। उपन्यास में आधुनिक युग में शहरीकरण जैसी व्यवस्था को भी कटघरे में खड़ा किया गया है। जहाँ स्त्री एक कैदी हो चुकी है। "हाँ री संतोष, जंगल में जानवरों से डर लगता है, शहर में आदमियों से। यहाँ आदमी औरत को मानुष नहीं समझते। जब तक औरत अपनी जमीन पर है, अपने जंगल के साथ है, तब तक मानुष है, तब तक लड़ने की ताकत है उसमें, लेकिन वही औरत शहर में आकर सिर्फ जिस्म बन कर रह जाती है... औरत जंगल में अपनी लड़ाई के लिए खड़ी हो जाती है...हम तीर धनुष उठा लेते हैं, भाला और दांव चला लेते हैं, लेकिन शहर? शहर हमारी कब्रगाह है...इतनी मजबूत है यहाँ की कैद कि इसमें से निकलना मुश्किल है। कैसे निकलें? जूझते–जूझते ही खत्म हो जाते हैं।"[15]

इस प्रकार तीनों उपन्यासों में आदिवासी स्त्री सामाजिक समस्याओं के साथ–साथ पर्यावरण की समस्या एवं उसके कारक पक्षों से संघर्ष करते हुए दिखती है। यह सिर्फ उन आदिवासी महिलाओं की समस्या नहीं है बल्कि पूरे विश्व की स्त्रियों की समस्याएं हैं। प्रकृति के साथ–साथ प्रत्येक स्त्री का अस्तित्व महत्वपूर्ण है। यदि पृथ्वी पर स्त्री एवं प्रकृति दोनों अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहे हैं तो हम उनके बगैर कैसे सुरक्षित हो सकते हैं? इस प्रकार पितृसत्ता, राज्यसत्ता और पूंजी की आपसी गठजोड़ ने वर्तमान में पर्यावरण और स्त्री के लिए जो शोषण की जमीन तैयार की है, वह अभी भी जारी है तथा स्त्री और प्रकृति दोनों उस शोषण, अन्याय, अत्याचार और वर्चस्व की भावना के विरुद्ध समान रूप से संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। साथ ही ये उपन्यास आधुनिक विकास की अवधारणा पर भी प्रश्नचिन्ह खड़े करते हैं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. पाण्डेय, मैनेजर, उपन्यास और लोकतंत्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. सं.–19।
2. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2019, पृ. सं.–9।
3. वही, पृ. सं.–19।
4. वही, पृ. सं.–72।
5. वही, पृ. सं.–34।
6. वही, पृ. सं.–39।
7. वही, पृ. सं.–92।
8. माजी, महुआ, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. सं.–182।
9. वही, पृ. सं.–176।
10. वही, पृ. सं.–172।
11. वही, पृ. सं.–166।
12. वही, पृ. सं.–169।
13. वही, पृ. सं.–172।
14. मिश्र, अल्पना, अस्थि फूल, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2019, पृ. सं.– 179।
15. वही, पृ. सं.–175।

गांधीवादी मूल्यबोध के आलोक में 'रंगभूमि' के नायक सूरदास का मूल्यांकन

कुमार गौरव मिश्रा*

शोध सार : प्रेमचंद ने असहयोग आंदोलन के तुरंत बाद ही 'रंगभूमि' उपन्यास लिखा। वे गांधी जी से अत्यधिक प्रभावित थे। इस कारण उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया था। इस उपन्यास पर भी असहयोग आंदोलन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसका नायक सूरदास असहयोग आंदोलन की ही देन है, और असहयोग आंदोलन गांधी जी की देन है। इस प्रकार, सूरदास भी गांधी जी से प्रभावित दिखता है। उसके और गांधी जी के व्यक्तित्व एवं कार्यप्रणाली में साम्यता है। वह गांधी जी की तरह नैतिक, दृढ़, साहसी एवं आशावान है। जिस प्रकार गांधी जी ने ब्रिटिश उपनिवेशी साम्राज्यवादी ताकतों से संघर्ष किया था, उसी प्रकार सूरदास भी नौकरशाही तथा पूँजीवाद के विरूद्ध संघर्ष करता है। उसके जीवन मूल्य में गांधीवादी दर्शन दृष्टिगत होते हैं। दोनों में कई असमानताएँ भी हैं। गांधी जी जहाँ पढ़े–लिखे बैरिस्टर थे, एक संभ्रांत परिवार से आते थे व राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर के नेता थे, वहीं सूरदास एक अंधा, गरीब व अनपढ़ आदमी है। इस प्रकार, वह गांधी जी का प्रतीक नहीं है, वरन् गांधीवादी आंदोलन की उपज है।

बीज शब्द : असहयोग आंदोलन, गांधीवाद, दर्शन, प्रतीक, चरित्र, संघर्ष, व्यक्तित्व, धर्म, नैतिकता, धैर्य, संयम, नायक।

साहित्य कभी भी शून्य में उत्पन्न नहीं होता है। यह अपने में अनेकानेक अनुभवों, ज्ञानराशियों, विषयों, दर्शनों एवं विचारधाराओं इत्यादि को समेटे होता है। साहित्यकार के व्यक्तित्व पर जिस विचारक का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है, उसकी रचनाओं में उस विचारक की जीवनशैली, विचार, मत, दर्शन इत्यादि बहुलांश में सहज रूप से दृष्टिगत होते हैं। विचारक अपने विचारों में तो जीवित रहता ही है, साथ ही साहित्यकर्मियों की रचनाओं के माध्यम से भी अपनी जीवंतता बनाए रहता है व अपनी प्रासंगिकता का बोध कराता रहता है। विचार आत्मनिष्ठ होता है, किंतु इसमें वस्तुनिष्ठता का फ़लक जितना वृहद्त्तर होगा, यह जितना लोगों के लिए आत्मग्राही व हृदयग्राही होगा, जितना तार्किकता की कसौटी पर उपयुक्त ठहरेगा, साहित्यकारों पर उसका प्रभाव उतना ही प्रगाढ़ होगा।

हिन्दी साहित्य की वृहद व उपजाऊ कर्मभूमि ऐसी अनेक विचारधाराओं, दर्शनों व मतों इत्यादि से पटी पड़ी है। इसमें एक ओर वैदिकयुगीन दर्शन व विचार दृष्टिगोचर होते हैं, तो दूसरी ओर देश–विदेश के तमाम आधुनिक दर्शन एवं विचार भी। महान भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अनेक प्रणेताओं के विचारों ने तात्कालिक रूप से लोगों को स्वाधीनता प्राप्ति हेतु तो तैयार किया ही, किंतु दीर्घकाल में, इन विचारों ने लोगों को जीवन जीने का दृष्टिकोण प्रदान करने में भी अप्रतिम भूमिका निभाई। साहित्यकर्मी इसके अपवाद नहीं हैं। हिन्दी के साथ–साथ कई अन्य स्थानीय भाषाओं के लेखकों पर भी इनका अविस्मरणीय प्रभाव पड़ा। इन्होंने इनके विचारों को आत्मसात कर, विभिन्न समाचार–पत्रों, पत्र–पत्रिकाओं व पुस्तकों आदि के माध्यम से जन–चेतना के प्रचार–प्रसार का कार्य किया।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को समग्रता से देखने पर, यह गांधी जी और उनकी विचारधारा के इर्द–गिर्द घूमती हुई नज़र आती है। स्वतंत्रता संग्राम में उनके पदार्पण ने इसकी दशा व दिशा बदल दी। राजीव अहीर लिखते हैं – ''ब्रिटिश शासन के खिलाफ चल रहे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने इस समय एक निर्णायक मोड़ लिया। इसका सबसे प्रमुख कारण था–भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर महात्मा गांधी का अभ्युदय। राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी के प्रवेश के बाद इसके जनाधार एवं लोकप्रियता में अपार वृद्धि हुई तथा यह सम्पूर्ण भारतीय जनमानस का आंदोलन बन गया।''[1] गांधी जी से हिन्दी के कई साहित्यकार

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली – 110025

प्रभावित हुए, उनमें प्रेमचंद अग्रगण्य हैं। असहयोग आंदोलन के दौरान, प्रेमचंद ने गांधी जी के आह्वान पर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। उनकी अधिकांश रचनाएँ गांधीवाद दर्शन से ओत–प्रोत हैं। यदि उन रचनाओं को गांधीवाद दर्शन का विद्यालय कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रेमचंद के कई चरित्र प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप में गांधी जी के प्रतीक प्रतीत होते हैं।

प्रेमचंद कृत् 'रंगभूमि' उपन्यास का पात्र सूरदास, जो इस रचना के केंद्र में है, एक ऐसा अविस्मरणीय पात्र है जिसमें गांधी जी के विचार एवं व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होते हैं। हंसराज रहबर प्रस्तुत संदर्भ में अपना मत देते हुए लिखते हैं– ''लेकिन प्रेमचन्द ने जाने या अनजाने, गांधीवाद के इस प्रतीक को अंधा दिखाया है, जो वस्तुस्थिति से आँख मूँद कर और अपने आप में डूबकर लड़ता रहता है। मगर प्रेमचन्द तो यथार्थवादी थे। उनकी आँखें बन्द नहीं थीं। इसलिए आदर्शों के मुकाबले में उन्होंने अन्त में यथार्थ की ही जीत दिखायी है। बढ़ते हुए पूँजीवाद के सामने सामन्त युग की पुरानी व्यवस्था और उसकी मान्यताएँ ठहर नहीं सकतीं। सत्याग्रह आन्दोलन के बावजूद पाण्डेपुर उजड़ जाता है, वहाँ जॉनसेवक का कारखाना लगता है स्वयं सूरदास अपनी हार स्वीकार करता है– ''तुम जीते मैं हारा।''[2] इसके विपरीत गांधीवादी सत्याग्रही अपनी हार को हार नहीं मानता। सूरदास के चरित्र की असंगति प्रेमचन्द की अपनी असंगति है।

सूरदास के चरित्र की कल्पना गांधीवादी असहयोग आंदोलन की देन है। प्रेमचंद ने असहयोग आंदोलन के समाप्त होने के तुरंत बाद ही 'रंगभूमि' उपन्यास लिखा। जिस तरह गांधी जी का असहयोग आंदोलन ब्रिटिश राज की चूलें हिला कर, सफलता की पहली सीढ़ी से गिरता है। फिर, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन भी विफल होता है, उसी प्रकार सूरदास भी सफलता की पहली सीढ़ी से गिरता है। वह यह जानते हुए भी कि उसकी हार होगी, अकेला ही संघर्ष करता है। बार–बार जीत के लिए यत्न करता है। सर्वप्रथम वह अपनी ज़मीन के लिए संघर्ष करता है और हार जाता है, तत्पश्चात् वह पुनः अपने झोंपड़े के लिए संघर्ष करता है और फिर हार जाता है। वह कहता है– ''अपना घर है, नहीं देते। ज़बर्दस्ती जो चाहे ले लो।... ज़बर्दस्ती जो चाहे निकाल दे, न्याय से नहीं निकाल सकता। तुम्हारे हाथ में बल है, तुम हमें मार सकते हो, हमारे हाथ में बल होता, तो हम तुम्हें मारते। यह तो कोई इन्साफ नहीं। सरकार के हाथ में मारने का बल है, हमारे हाथ में और कोई बल नहीं है, तो मर जाने का बल तो है...।''[3] उसकी नेतृत्व क्षमता वहाँ दिखती है जब पांडेपुर की बस्ती खाली करवाने की बात आती है। वह अपनी झोंपड़ी खाली करने से मना कर देता है। गोली चलाने के आदेश के बावजूद, कारिंदे उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, सत्ता से असहयोग करते हैं और गोली चलाने से साफ इंकार कर देते हैं– ''सरकार के वे पुराने सेवक, जिनमें से कितनों ही ने अपने जीवन का अधिकांश प्रजा का दमन करने ही में व्यतीत किया, यों अकड़ते हुए चले जाएँ। अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि प्राणों को भी समर्पित करने को तैयार हो जाएँ।''[4]

'हिबर्ट जर्नल' में गांधी जी के दृढ़ निश्चयात्मकता के विषय में गिलबर्ट मुरे लिखते हैं – ''ऐसा व्यक्ति जिसे इंद्रिय सुख की चाह नहीं है, उसे धन, ऐश्वर्य, सुख, प्रशंसा एवं प्रोन्नति की चाह नहीं है, लेकिन जो वह सही मानते हैं, उसे करने के लिए दृढ़ निश्चयी थे। वह एक खतरनाक एवं कष्टप्रद शत्रु थे, चूंकि उनके शरीर को नियंत्रित किया जा सकता था, उनकी आत्मा एवं आत्मबल को नहीं।''[5] सूरदास के अंदर गांधी जी जैसी ही दृढ़ निश्चयात्मकता तब दृष्टिगोचर होती है जब सुभागी और सूरदास प्रकरण के अंतर्गत, राजा महेन्द्र कुमार अपनी अदालत में गवाहों के बयानानुसार, दोनों पर मुकदमा चला कर, दोनों को दोषी करार देते हुए जुर्माना लगा देता है। इस विषम परिस्थिति में सूरदास घबराता नहीं है और धैर्य व दृढ़ता के साथ जनता से अपील करते हुए कहता है – ''दुहाई है, पंचों, आप इतने आदमी जमा हैं। आप लोगों ने भैरो और उसके गवाहों के बयान सुने, मेरा और सुभागी का बयान सुना, हाकिम का फैसला भी सुन लिया। अब आप लोगों से मेरी विनती है क्या आप भी मुझे अपराधी समझते हैं?... अगर आपको विश्वास आ गया है तो मैं इसी मैदान में सिर झुकाकर बैठता हूँ। आप लोग मुझे पाँच–पाँच लातें मारें। अगर मैं लात खाते–खाते मर भी जाऊँ, तो मुझे दुःख न होगा। ऐसे पापी का यही दण्ड है। कैद से क्या होगा। और अगर आपकी समझ से मैं बेकसूर हूँ तो पुकारकर कह दीजिए। हम तुझे निरपराध समझते हैं। फिर मैं कड़ी से कड़ी कैद भी हँसकर काट लूँगा।''[6] जिस प्रकार गांधी जी अपने विरोधियों को अपनी कार्यप्रणाली व

व्यक्तित्व से चित कर देते थे, उसी प्रकार से सूरदास ने उपयुक्त कथन से सबको चित कर दिया। ''अदालत के कमरे में सन्नाटा–सा छा गया। राजा साहब, वकील, अमले, दर्शक, सब–के–सब चकित हो गए। किसी को होश न रहा कि इस समय क्या करना चाहिए। सिपाही दर्जनों थे, पर चित्र–लिखित से खड़े थे। परिस्थिति ने एक विचित्र रूप धारण कर लिया था, जिसकी अदालत के इतिहास में कोई उपमा न थी। शत्रु ने ऐसा छापा मारा था कि उससे प्रतिपक्षी सेवा का पूर्व–निश्चित क्रम भंग हो गया था।''[7]

''नैतिकता इहलौकिक कोटि है, वे सामान्य सामाजिक जीवन के साथ जुड़ी है। किन्तु धार्मिक मूल्यों में 'परात्मकता' का बोध है। इन दोनों में विरोध नहीं है, एक ही विचार में दोनों एक साथ पूर्णतया समन्वयित हो सकते हैं, किन्तु दोनों की अवधारणा एक दूसरे से भिन्न है।''[8] धर्म एवं नैतिकता गाँधीवादी दर्शन का अपरिहार्य अंश है। बसंत कुमार लाल लिखते हैं– ''फिर भी गांधी–विचार में ये दोनों अवधारणायें एक साथ जुड़ी हुयी हैं, गांधी का विचार है कि धर्म तथा नैतिकता एक दूसरे से असम्बद्ध हो रह ही नहीं सकते। यदि कोई धार्मिक निर्देश अनैतिक प्रतीत हो, तो वैसे धर्म को गांधी धर्म ही नहीं कहेंगे, यहां तक कि कुछ धार्मिक अनुशंसायें अबौद्धिक प्रतीत हों, किन्तु नैतिकता के अनुरूप हों, तो गांधी को उन्हें स्वीकारने में कोई हिचक नहीं होगी। गांधी स्पष्ट कहते हैं कि यह सम्भव ही नहीं कि कोई क्रूर, असत्यवादी तथा हिंसक प्रवृत्ति का हो और यह सोचता रहे कि ईश्वर का हस्त उसके सिर पर है।''[9] धर्म के विषय में गांधी अपना मत स्पष्ट करते हैं कि ''धर्म से वे हिन्दू धर्म या किसी विशेष धर्म को सूचित नहीं करते। धर्म किसी विशेष धर्म से परे है, ऊपर है। गांधी के अनुसार धर्म वह शक्ति है जो मनुष्य के स्वभाव को पूर्णतया परिवर्तित कर देता है, जो मानव को सत्य के साथ जोड़कर आत्म–शुद्धि का साधन बन जाता है। यह मानवस्वरूप का वह शाश्वत पक्ष है जो तब तक अशान्त रहता है, जब तक वह अपने आत्म की वास्तविकता न समझ ले तथा सत्य रूप ईश्वर की उपलब्धि के रूप में अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति न कर ले।''[10]

नैतिकता धर्म का अनिवार्य पक्ष है। ''गांधी के अनुसार भी वास्तविक धर्म तथा शुद्ध नैतिकता एक दूसरे के साथ अटूट रूप में बंधे रहते हैं। उपमा की भाषा में गांधी कहते हैं कि धर्म का नैतिकता के साथ वही सम्बन्ध है जो जल का मिट्टी में गड़े बीज के साथ है। जिस प्रकार जल से सिंचित हो बीज अंकुराता है और पौधे के रूप में बढ़ता है, उसी प्रकार धर्म से सिंचित हो नैतिकता भी फलती–फूलती है, पनपती है। गांधी के पास इस बात की समर्थक एवं बड़ी प्रबल युक्ति है। गांधी के अनुसार धर्म का लक्ष्य 'सत्य की उपलब्धि' है, जिसे दूसरे शब्दों में 'ईश्वर की प्राप्ति' भी कहा जा सकता है क्योंकि उनके अनुसार सत्य ही ईश्वर है। इस सत्य या 'ईश्वर' की प्राप्ति का अर्थ है सब कुछ में अनिवार्य एकरूपता को आत्मसात करना। यदि इस प्रकार की अनुभूति लक्ष्य है तो इसका अर्थ है कि व्यक्ति को 'स्व' से मात्र अपने स्वार्थ से ऊपर उठना अनिवार्य है, तथा अन्य को अपने प्रेम बन्धन में समेटते हुए अग्रसर होना है। अब गांधी कहते हैं कि अपने से ऊपर उठना ही तो नैतिकता है। ईश्वर की प्राप्ति ईश्वर को उसकी सृष्टि में ही ढूंढकर करना है, और यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति सब के प्रति प्रेम उत्पन्न करे। अपने से ऊपर उठकर अन्य से प्रेस करना ही तो नैतिकता है। इस दृष्टि से नैतिकता धर्म के सार–रूप में स्पष्ट होती है।''[11]

सूरदास का चरित्र भी नैतिकता एवं मानव मूल्यों से परिपूर्ण है। उसमें लेशमात्र भी घमंड नहीं है। जब सोफिया की प्रेरणा से मिस्टर क्लार्क सूरदास को उसकी ज़मीन दिलवा देते हैं, तब सोफिया उन्माद में एक प्रहसन लिखती है जिसमें वह अपने पिता जॉनसेवक और राजा महेन्द्र कुमार का मजाक उड़ाती है। उसका भाई प्रभुसेवक और वह दोनों इसका मंचन कर, पिता और राजा महेन्द्र कुमार को बदनाम करना चाहते हैं और इस विषय में सूरदास से भी बात करते हैं। लेकिन सूरदास में अपनी इस जीत का ज़रा भी उन्माद नहीं, वह सोफिया से कहता है– ''नहीं मिस साहब, यह खिलाड़ियों की नीति नहीं है। खिलाड़ी जीतकर हारने वालों की हँसी नहीं उड़ाता, उससे गले मिलता है।''[12] और वह उसे सूचित करता है कि वह राजा साहब से मिलकर आ भी गया है। वह उसे अपनी जीवन–दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहता है– ''मेरा धर्म तो यही है कि जब कोई मेरी चीज पर हाथ बढ़ाए तो उसका हाथ पकड़ लूँ। वह लड़े तो लडूँ और उस चीज के लिए प्राण तक दे दूँ। चीज़ मेरे हाथ आएगी, इससे मुझे मतलब नहीं, मेरा काम तो लड़ना है और वह भी धर्म की लड़ाई लड़ना। अगर राजा साहब दगा भी करें तो मैं उनसे दगा न करूँगा।''[13]

इस प्रकार, सूरदास भी गांधी जी के समान धर्म व नैतिकता के लिए लड़ता है और समाज के सामने आदर्श स्थापित करता है। यदि मिस्टर जॉनसेवक उस ज़मीन पर कोई मन्दिर, प्याऊ, धर्मशाला आदि बनवाने के लिए लेते जिससे परंपरागत मूल्यों की रक्षा होती तो सूरदास खुशी–खुशी वह ज़मीन बिना कोई मुआवजा लिए दे देता क्योंकि वह परंपरागत सांस्कृतिक मान्यताओं को मानता है। उसकी ज़मीन पर सिगरेट का कारखाना खोलने का प्रस्ताव है, जबकि वह भूमि चरागाह की तरह प्रयोग में लाई जाती है। वह उस भूमि पर कोई धार्मिक स्थल बनवाकर कुआँ खुदवाना चाहता है जिससे उसके पूर्वजों का नाम चले, उसका नाम चले। उसका अंतर्मन सिगरेट के कारखाने के लिए ज़मीन देने की स्वीकृति नहीं देता। यदि उसे किसी तरह जनता के हितों को समझा भी दिया जाए तो भी यह कार्य उसके लिए अनैतिक ही होगा, क्योंकि उसका मानना है कि ''मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जाएगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा, लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी– शराब का भी तो प्रचार बढ़ जाएगा, कसवियाँ भी तो आकर बस जाएँगी, परदेशी आदमी हमारी बहू–बेटियों को घूरेंगे, कितना अधर्म होगा! दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहाँ बुरी–बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरन अपने गाँव में फैलाएँगे। दिहातों की लड़कियाँ, बहुएँ मजूरी करने आएँगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धर्म बिगाड़ेंगी। यही रौनक शहरों में है। वही रौनक यहाँ हो जाएगी। भगवान् न करें, यहाँ वह रौनक हो। सरकार, मुझे इस कुकरम और अधर्म से बचाएँ। यह सारा पाप मेरे सिर पड़ेगा।''[14]

सुभागी–सूरदास प्रकरण में, सूरदास मोहल्ले वालों के तीखे व्यंग्यों से छिन्न होकर तीर्थाटन पर निकलना चाहता है, परंतु उसी समय सुभागी भैरो से मार खाकर उसके पास आती है और पूछती है कि वह कहाँ रहेगी। सुभागी के सूरदास के पास रहने से समाज में उसकी बदनामी का डर तो था ही, किंतु दूसरी ओर, सुभागी की इज़्जत का भी सवाल था। सूरदास यदि चाहता तो तीर्थाटन पर निकल जाता और उससे अपना पीछा छुड़ा लेता, पर उसकी नैतिकता इसकी अनुमति नहीं देती। सूरदास यह विचार करता है कि ''मझधार में छोड़ देने से बदनाम होना अच्छा है''[15] और तीर्थाटन पर जाने का अपना निर्णय बदल देता है। सूरदास के विराट व्यक्तित्व में सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह के तत्व तो पिरोये हुए हैं ही, साथ में संघर्षशीलता, धैर्य, संयम और आशावादिता के भी प्रचुर भण्डार हैं। उसके जले हुए झोंपड़े के पास बैठे हुए उसका और उसके भतीजे मिठुआ का संवाद, उसके व्यक्तित्व की विशिष्टता उजागर करता है –

''मिठुआ – दादा, अब हम रहेंगे कहाँ?
सूरदास – दूसरा घर बनाएँगे।
मिठुआ – और जो कोई फिर आग लगा दे?
सूरदास – तो फिर बनाएँगे।
मिठुआ – और फिर लगा दे?
सूरदास – तो हम फिर बनाएँगे।
मिठुआ – और जो कोई हजार बार लगा दे?
सूरदास – तो हम हजार बार बनाएँगे।
मिठुआ – और जो कोई सौ लाख बार लगा दे?
सूरदास – तो हम भी सौ लाख बार बनाएँगे।''[16]

सूरदास और गांधी जी के व्यक्तित्व व कार्य प्रणाली में अनेकों समानता होने के पश्चात् भी, सूरदास को गांधी जी का प्रतीक नहीं माना जा सकता है क्योंकि इनके बीच कई असमानताएँ भी मौजूद हैं। गांधीजी जहाँ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विश्व प्रसिद्ध नेता थे, वहीं सूरदास एक गरीब अंधा भिखारी है। गांधीजी जहाँ एक संपन्न एवं संभ्रांत परिवार से संबंध रखते थे, वहीं सूरदास एक दलित है। गांधीजी पढ़े–लिखे वकील थे, जिन्होंने देश–विदेश में भारतीयों के हित के लिए कई मुकदमें लड़े व संघर्ष किया, जबकि सूरदास अनपढ़ व्यक्ति है। उसका बुद्धिजीवी वर्ग से कोई सरोकार नहीं है।

निष्कर्षतः सूरदास को, जो कि 'रंगभूमि' उपन्यास का नायक है, गांधीजी का प्रतीक मानना उचित नहीं होगा। किंतु, वह उनके मूल्यों को अपने जीवन में अवश्य ही धारण करता है एवं उनसे साम्य रखता है। अतः पाठक को पाठ के दौरान सूरदास के चरित्र में गांधी जी की छवि का आभास होता रहता है।

संदर्भ सूची :–

1. अहीर राजीव, आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 2018, बीसवां संस्करण, पृष्ठ संख्या – 315।
2. एम.डी.एच–14, हिन्दी उपन्यास–1, इग्नू, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 42।
3. प्रेमचंद, रंगभूमि, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 366।
4. वही, पृष्ठ संख्या – 377।
5. अहीर राजीव, आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, 2018, बीसवां संस्करण, पृष्ठ संख्या – 324।
6. प्रेमचंद, रंगभूमि, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 274।
7. वही।
8. लाल बसंत कुमार, समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 158।
9. वहीं।
10. वही, पृष्ठ संख्या – 159।
11. वही, पृष्ठ संख्या – 167।
12. प्रेमचंद, रंगभूमि, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या– 179।
13. वही।
14. वही, पृष्ठ संख्या – 66।
15. वही, पृष्ठ संख्या – 261।
16. वही, पृष्ठ संख्या – 102।

मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों का प्रत्यक्षण

डॉ. हरीश पाण्डेय*

शोध सारांश :– पढ़ने की प्रवीणता या अंकगणितीय कौशल अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता को 'तत्काल राष्ट्रीय मिशन' के रूप में कल्पित करती है। प्रस्तुत शोध पत्र मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती है जो कि उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले से संदर्भित हैं। प्रस्तुत अध्ययन हेतु सोनभद्र जिले के 100 हितधारकों को शामिल किया गया है जिनमें से अभिभावकों, अध्यापकों एवं प्रशासकों की संख्या क्रमशः 50, 30 एवं 20 थी। समंक संकलन हेतु स्व निर्मित प्रत्यक्षण मापनी का उपयोग किया गया। प्राप्त विश्लेषण से यह पाया गया कि 16% हितधारकों का प्रत्यक्षण का स्तर औसत से ऊपर था, 66% हितधारक का प्रत्यक्षण औसत स्तर का तथा 18% हितधारक ऐसे थे जिनका प्रत्यक्षण औसत से नीचे पाया गया। निर्मित परिकल्पना H01 के परीक्षण हेतु अभिकलित F (2, 97) = 6.919, p=0.002 ढ .05 सार्थकता स्तर, पाया गया अतः कहा जा सकता है कि अभिकलित F मान सार्थक पाया गया और 'H01 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों (प्रशासक, अभिभावक एवं अध्यापक) के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है', निरस्त होती हुई। पोस्ट हाक विश्लेषण से अभिभावकों का प्रत्यक्षण सार्थक रूप से अल्प पाया गया। डेमोग्राफिक आधार जैसे कि लिंग एवं स्थानीयता पर शैक्षिक हितधारकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। इस प्रकार प्रस्तुत शोध का परिणाम शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण की एक समझ विकसित करता है एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित तत्काल राष्ट्रीय मिशन की प्राप्ति हेतु सहायक सिद्ध हो सकता है।

मुख्य बिंदु : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता, शैक्षिक हितधारक, प्रत्यक्षण

अध्ययन की पृष्ठभूमि : राष्ट्रीय शिक्षा नीति (National Education Policy& NEP) 2020 'तत्काल राष्ट्रीय मिशन' के रूप में सभी बच्चों के लिये मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता (थ्वनदकंजपवदंस स्पजमतंबल। दक छनउमतंबल– थ्स्छ) की प्राप्ति को प्राथमिकता देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में बुनियादी साक्षरता एवं संख्या–ज्ञान को सीखने के लिए एक तात्कालिक आवश्यकता और पूर्वशर्त के रूप में प्रदर्शित किया गया है। सभी विद्यालयों के छात्रों द्वारा पढ़ने और लिखने और संख्याओं के साथ कुछ बुनियादी संक्रियाएं करने की क्षमता आगे की स्कूली शिक्षा में और जीवन–भर सीखते रहने की बुनियाद रखती है और भविष्य में सीखने की एक पूर्वशर्त भी है। हालांकि, विभिन्न सरकारी, साथ ही गैर–सरकारी सर्वेक्षणों से यह संकेत मिलता है कि हम वर्तमान में सीखने की एक गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं। वर्तमान में प्राथमिक विद्यालय में बड़ी संख्या में शिक्षार्थियों ने– जिसकी अनुमानित संख्या 5 करोड़ से भी अधिक है– बुनियादी साक्षरता और संख्या–ज्ञान भी नहीं सीखा है; अर्थात् ऐसे बच्चों को सामान्य लेख को पढ़ने, समझने और अंकों के साथ बुनियादी जोड़ और घटाव करने की क्षमता भी नहीं है। (एन. ई. पी.– 2020)

शिक्षा मंत्रालय के 'बेहतर समझ और संख्यात्मक ज्ञान के साथ पढ़ाई में प्रवीणता हेतु राष्ट्रीय पहल–निपुण' (National Initiative for Proficiency in Reading with UnderstandingA nd Numeracy& NIPUN) भारत मिशन 2011 में इसी प्रकार के दिशा–निर्देश जारी किये गए हैं। यद्यपि यह पहल वस्तुनिष्ठ रूप से एक

***सहायक प्रोफ़ेसर, शिक्षा विभाग, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।**

सकारात्मक सुधार है, लेकिन इसकी रूपरेखा और संचालन में कुछ ऐसी कमियाँ विद्यमान हैं जिस पर विचार किये जाने की आवश्यकता है। गणित अधिगम उद्देश्यों का वर्णन करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में कहा गया है कि सभी बच्चों के लिए मूलभूत साक्षरता और संख्या–ज्ञान को प्राप्त करना तत्काल रूप से एक राष्ट्रीय अभियान बनेगा जिसे कई मोर्चों पर किए जाने वाले तात्कालिक उपायों और स्पष्ट लक्ष्यों के साथ अल्पावधि में प्राप्त किया जाएगा (जिसमें प्रत्येक छात्र को कक्षा–3 तक मूलभूत साक्षरता और संख्या–ज्ञान को आवश्यक रूप से प्राप्त करना शामिल किया गया है)। शिक्षा प्रणाली की सर्वोच्च प्राथमिकता 2025 तक प्राथमिक विद्यालय में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और संख्या–ज्ञान प्राप्त करना होगा। सीखने की बुनियादी आवश्यकताओं (अर्थात्मूलभूत स्तर पर पढ़ना, लिखना और अंकगणित) को हासिल करने पर ही हमारे विद्यार्थियों के लिए बाकी नीति प्रासंगिक होगी। इसके लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एमएचआरडी) द्वारा प्राथमिक आधार पर आधारभूत साक्षरता एवं संख्यात्मकता पर एक राष्ट्रीय मिशन स्थापित किया जाएगा। उसके अनुसार सभी प्राथमिक और उच्चतर प्राथमिक विद्यालयों में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और संख्या–ज्ञान के लिए राज्य या केंद्रशासित प्रदेश की सरकारें, 2025 तक प्राप्त किए जा सकने वाले चरण–वार चिन्हित कार्यों और लक्ष्यों की पहचान करते हुए और उसकी प्रगति को बारीकी से जांच और निगरानी करते हुए अविलंब एक क्रियान्वयन योजना तैयार करेंगी जो की हो भी रही है। मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता से संबद्ध सभी दिशानिर्देशों के पालन में कुछ समस्याएँ भी हैं जैसे–रोट–लर्निंग/रटने की सक्षमता को बढ़ावा, फाल्स फ्रेमिंग, विभेद का निर्माण एवं शिक्षक प्रशिक्षण। जिसे ध्यान में रखते हुए शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

सम्बंधित साहित्य का अवलोकन : मामिदी, एट ऑल. (2022) ने बिहैवियरल फैक्टर्स अमंग पैरेंट्स इंफ्लूएन्सिंग फाउनडेशनल लिटरेसी एंड नुमेरेसी आउटकम्स में प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के आकांक्षी जनपदों में से बहराइच, चित्रकूट और बलरामपुर जिले के परिषदीय विद्यालयों के प्रत्येक ब्लॉक के विद्यालयों को यादृच्छिक रूप से चयनित कर उनमें अध्ययनरत कक्षा एक से तीन के विद्यार्थियों के माता–पिता को न्यादर्श के रूप में चयनित कर उन्हें व्हाट्सएप समूह के माध्यम से मैट्रिया एजेंसी द्वारा प्रदत्त का संकलन किया और पाया।

कान, एस. एट ऑल (2022) फाउण्डेशनल लिटरेसी एंड नुमेरेसी इन रूरल अफगानिस्तानः फाइंडिंग्स फ्रॉम ए बेसलाइन लर्निंग असेसमेंट ऑफ एसीलेरेटेड लर्निंग सेंटर्स में अफगानिस्तान के दूरदराज इलाकों में विद्यार्थियों के लिए संचालित त्वरित शिक्षा केंद्र (ALCs) नामक समुदाय–आधारित शिक्षा और आस–पास के सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों की मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मक कौशल का आकलन किया गया है। परिणाम बताते है कि सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की तुलना में एएलसी के बच्चे समान स्तर पर या बेहतर सीख रहे हैं।

कुमार एवं बेहरा (2022) इनफ्लूयन्स ऑफ होम इनवायरमेंट ऑन चिल्ड्रेन्स फाउण्डेशनल लिटरेसी एण्ड नुमेरेसी स्किल्सः ए सिस्टेमेटिक सिन्थेसिस विथ इण्डिया इन फोकस में 2013 से 2022 के मध्य म्त्प्ब डेटाबेसमें प्रकाशित 383 संभावित प्रासंगिक लेखों में से 38 लेखों की व्यवस्थित रूप से प्राथमिक समीक्षा किया गया जिसमें व्यापक रूप से घरेलू पर्यावरणीय कारकों की पहचान की गई जो आधारभूत साक्षरता और संख्यात्मक शिक्षा को प्रभावित करते हैं। विश्लेषण से प्राप्त परिणामों से पता चलता है कि घर पर सीखने के वातावरण के कारक संख्या ज्ञान और साक्षरता सीखने को प्रभावित करते हैं। जिसमें प्रमुख कारक पारिवारिक सीखने की पृष्ठभूमि, पढ़ना और संख्यात्मक गतिविधियां और घरेलू संसाधन थे। अन्य कारक जैसे कि बच्चों की पढ़ने और संख्यात्मक रुचियां और माता–पिता–बच्चे के संबंध भी मूलभूत संख्यात्मकता और साक्षरता कौशल के अधिग्रहण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं।

अली, एट ऑल. (2016) ने एक्सपीरियंस प्राइमरी स्कूल टीचर्स थॉट्स ऑन इफेक्टिव टीचर्स ऑफ लिटरेसी एण्ड नुमेरेसीके तहत मलेशिया के प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के शिक्षण में वर्तमान संदर्भ में प्रभावी साक्षरता और संख्यात्मक कौशल के साथ स्वयं को लैस एवं अपने विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करने में

क्या महत्वपूर्ण माना है के आधार पर अन्वेषणात्मक गुणात्मक अध्ययन के अन्तर्गत दो चरणों में प्रथम साक्षरता शिक्षक प्रश्नावली एवं द्वितीय फोकस–ग्रुप डिस्कशन और चिंतन सत्र आयोजित कर प्रदत्त संकलित किए गए। विश्लेषणोपरांत प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षतः शिक्षकों के दृष्टिकोण से प्रभावी साक्षरता और संख्यात्मकता प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के उल्लेखनीय कौशल और विशेषताओं को चार मुख्य विषयों (1. संरचना, 2. ज्ञान और समझ, 3. रणनीतियां और कौशल, और 4. मूल्य) को केन्द्र में रखकर शिक्षा नीति निर्माताओं, पाठ्यक्रम विकासकर्ताओं और शिक्षक प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण संस्थानों के भीतर साक्षरता और संख्यात्मकता प्रशिक्षुओं के साथ प्रशिक्षण और सीखने की गतिविधियों को संरेखित करे के लिए दिशा प्रदान करता है।

मुख्य शब्दों की संक्रियात्मक परिभाषा

मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकताः राष्ट्रीय शिक्षा नीति दृ 2020 एवं शिक्षा मंत्रालय के 'बेहतर समझ और संख्यात्मक ज्ञान के साथ पढ़ाई में प्रवीणता हेतु राष्ट्रीय पहल– निपुण भारत मिशन 2011 में दिया गया मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता का संप्रत्ययही प्रस्तुत शोध में मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता है। जिसके अंतर्गत शिक्षा मंत्रालय द्वारा कक्षा 1 एवं 2 हेतु दिए गये दिशा निर्देश/ लक्ष्य को ही उपयोग में लिया गया जिसको वर्ष 2025 तक प्राप्त करना है।

शैक्षिक हितधारकः प्रस्तुत शोध में शैक्षिक हितधारक से तात्पर्य शिक्षक, प्रशासक (प्रधानाचार्य/ निदेशक), एवं माता–पिता/ संरक्षक से है।

प्रत्यक्षण : प्रस्तुत शोध में प्रत्यक्षण से तात्पर्य शोध कर्ता द्वारा स्वतः निर्मित 'मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण मापनी' द्वारा प्राप्त अंकों की मात्राओं से है।

शोध की आवश्यकता : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में यह चिंता व्यक्त की गई है कि वर्तमान में बड़े पैमाने पर बच्चे नहीं सीख रहे हैं। यह एक बड़ा संकट है, सभी के लिए साक्षरता और संख्या–ज्ञान प्राप्त करने के इस महत्वपूर्ण मिशन में शिक्षकों का सहयोग करने के लिए सभी व्यावहारिक तरीकों का पता लगाया जाएगा। दुनिया भर के अध्ययन से पता चलता है कि जब सहपाठी एक–दूसरे से सीखते–सिखाते हैं यह काफी प्रभावी होता है। इस प्रकार, प्रशिक्षित शिक्षकों की देखरेख में और सुरक्षा पहलुओं का उचित ध्यान रखकर साथी छात्रों के लिए पियरट्यूटरिंग को एक स्वैच्छिक और आनंदपूर्ण गतिविधि के रूप में लिया जा सकता है। स्थानीय और गैर–स्थानीय दोनों प्रकार के प्रशिक्षित वोलेंटियर्स के लिए इस बड़े पैमाने के अभियान में भाग लेना बहुत आसान बनाया जायगा। यदि समुदाय का प्रत्येक साक्षर सदस्य किसी एक छात्र को पढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध होजाए, तो इससे देश का परिदृश्य शीघ्र ही बदल जाएगा और मिशन को अत्याधिक प्रोत्साहित और समर्थन किया जाएगा। राज्य इस तरह के शिक्षण संकट के दौरान मूलभूत साक्षरता और संख्या– ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए इस तत्काल राष्ट्रीय मिशन में, पियर ट्यूटरिंग और वोलेंटियर्स को बढ़ावा देने के लिए नवीन मॉडल स्थापित करने पर विचार कर सकते हैं, साथ ही साथ शिक्षकों समर्थन देना भी। (एन. ई. पी. 2020)

शोध प्रश्न :

- मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों का प्रत्यक्षण कैसा है ?

शोध उद्देश्य :

1. मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन करना।
2. मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन उनके विभिन्न जनसांख्यिकी (डेमोग्राफिक) आधारों पर करना। (विभिन्न हितधारक : अध्यापक, प्रशासक (प्रधानाचार्य/ निदेशक) एवं माता–पिता/ संरक्षक तथा विभिन्न डेमोग्राफिक आधार : लिंग, स्थान, शिक्षा का स्तर, विद्यालय प्रकार इत्यादि)

परिकल्पना : उद्देश्य 2 में वर्णित विभिन्न जनसांख्यिकी आधारों पर निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण कर 0.05 सार्थकता स्तर पर परीक्षण किया गया है।

H01 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

H02 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति महिला एवं पुरुष हितधारकों के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

H03 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति ग्रामीण एवं शहरी हितधारकों के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध प्रक्रिया : प्रस्तुत शोध के विस्तृत अध्ययन हेतु वर्णात्मक सर्वेक्षण (मात्रात्मक) विधि का प्रयोग किया गया। प्रस्तुत शोध के विस्तृत अध्ययन हेतु जनसंख्या के रूप उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल परिक्षेत्र के सोनभद्र जिले (आकांक्षी जिला) में आधारभूत स्तर (Foundational Stage) के विद्यालयों से सम्बंधित समस्त हितधारकों से है। परिभाषित जनसँख्या में से उचित आकार (छ =100) के प्रतिदर्श का चयन बहुस्तरीय प्रतिदर्श प्रविधि के माध्यम से किया गया। प्रस्तुत शोध केंद्र एवं राज्य के अंतर्गत आने वाले विद्यालयों पर सीमित है जहाँ पर प्राथमिक (आधारभूत स्तर) की शिक्षा दी जा रही हो।

शोध उपकरण :

प्रस्तुत शोध के विस्तृत अध्ययन हेतु शोधकर्ता द्वारा 'मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों हेतु प्रत्यक्षण मापनी' का निर्माण किया गया। जिसके अंतर्गत प्रमुख छः आयामों को संदर्भित किया गया। जैसे– मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के संप्रत्यय/संरचना के प्रति, लक्ष्यों/उद्देश्यों के प्रति, निर्देशों के प्रति, क्रियान्वयन के प्रति एवं आतंरिक व्यवस्थाओं के प्रति, पारिवारिक एवं विद्यालयी वातावरण के प्रति प्रत्यक्षणद्य प्रस्तुत मापनी में पंच बिन्दुई स्तरीय अर्थात पूर्णतः सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतः असहमत आधारित कुल 30 पद थे जिसमे से 6 ऋणात्मक प्रवित्ति के थे। धनात्मक पदों की रेटिंग हेतु क्रमशः 5–4–3–2–1 अंक एवं ऋणात्मक हेतु इसके व्युत्क्रम का उपयोग किया गया। मापनी की विश्वसनीयता क्रोंनबैक अल्फा प्रविधि से ज्ञात की गई थी जिसका मान 0.88 था तथा वैधता निर्धारण हेतु विशेषज्ञों की सलाह ली गई थी।

समंक विश्लेषण एवं निर्वचन : संकलित आंकड़ों की प्रकृति के आधार पर उचित सांख्यिकी तकनीकों (वर्णनात्मक एवं अनुमानात्मक सांख्यिकी) का उपयोग किया गया।

सरणी 1 अकड़ो की वर्णात्मक सांख्यिकी एवं चित्र 1 बार ग्राफ

संख्या	वैध	100
	अनुपस्थित	0
माध्य		97.5000
माध्यिका		98.0000
बहुलक		98.00
मानक विचलन		7.67588
प्रसरण		58.919
वैषम्यता		–.085
वैषम्यता मानक त्रुटि		.241
कुकुदता		–.765
कुकुदता मानक त्रुटि		.478
प्रसार		32.00
निम्नतम		82.00
अधिकतम		114.00

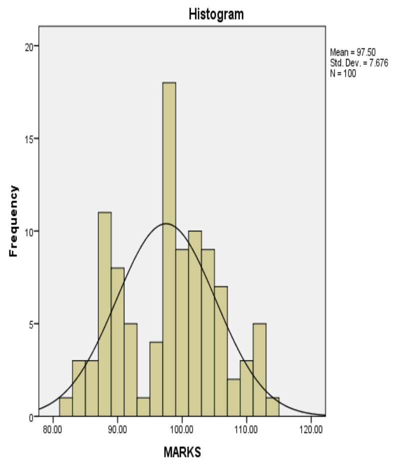

प्रत्यक्षण मापनी से प्रदर्शित आँकड़ों का प्रदर्शन सारणी संख्या 1 में किया गया है जिसमें समस्त प्रतिदर्शों की संख्या 100 है और कोई भी प्रतिदर्श अनुपस्थित नहीं है। इसके विवरणात्मक मुख्य सांख्यकीय मान; जैसे कि माध्य, माध्यिका, बहुलक क्रमशः 97.50, 98.00और 98.00 प्रदर्शित हो रहे हैं। माध्य से स्पष्ट होता है कि यदि संपूर्ण प्राप्तांकों को समस्त विद्यार्थियों पर बाँटा जाए तो वह समान रूप से 97.50 वितरित होगा, साथ ही माध्यिका 98.00 होने से यह कहा जा सकता है कि आधे विद्यार्थी 98.00 से कम और आधे 98.00 से ज्यादा अंक पाने वाले हैं। प्रस्तुत आँकड़ों में बहुलांक का मान बहु–बहुलांकी आचरण का है जिसमें सबसे छोटे बहुलांक को दिखाया गया है; जो कि 98 है। समस्त आँकड़ों का मानक विचलन 7.67 तथा प्रसरण 58.919 मापित किया गया है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि प्रतिदशों की विषमता –0.085 प्राप्त किया गया; जो कि ऋणात्मक आचरण को प्रदर्शित करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि एकांश अपेक्षाकृत सरल थे और ग्राफ से भी स्पष्ट हो रहा है कि ग्राफ ऋणात्मक रूप से विषम है। सारणी में कुकुदता –0.765 मापित की गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि यह महावक्रीय है, जो कि ग्राफ में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हो रही है। समस्त आंकड़ों की उच्च सीमा 114.00 एवं निम्न सीमा 82.00 अभिकलित की गई जिसका प्रसार 32 है।

उद्देश्य आधारित विश्लेषण एवं परिणाम :

उद्देश्य 1 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन हेतु संकलित समंकों का विश्लेषण एवं निष्कर्ष इस प्रकार है।

सारणी 2 : स्कोर आधारित विवरण एवं चित्र सं. 02 : स्तर प्रतिशत का पाई चार्ट

स्तर	σ स्तर	स्तर प्रतिशत	स्तर प्राप्तांक
औसत सेऊपर	इवअम +1σ	16%	105.17
औसत	+1σ जव –1σ	66%	97.5
औसत सेनीचे	इमसवू –1σ	18%	89.82

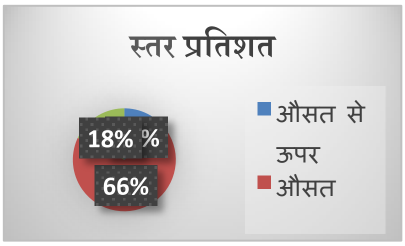

सारणी सं. 2 एवं चित्र सं. 2 दर्शाता है कि 16% हितधारकों का प्रत्यक्षण का स्तर औसत से ऊपर है, 66% हितधारक का प्रत्यक्षण औसत स्तर का है तथा 18% हितधारक ऐसे हैं जिनका प्रत्यक्षण औसत से नीचे है।

चित्र 3 : स्तर प्राप्तांक विवरण

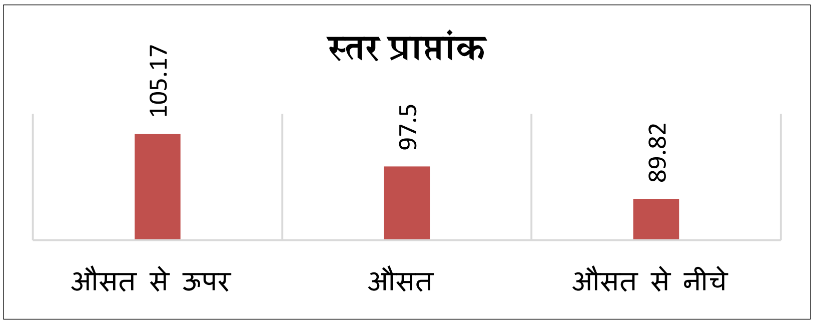

चित्र सं . 3 यह दर्शाता है कि औसत से ऊपर वाले हितधारकों के प्रत्यक्षण का कटआफ गुणांक 105.17 है, औसत स्तर वाले हितधारकों के प्रत्यक्षण का कटआफ गुणांक 97.50 है जबकि औसत से नीचे वाले हितधारकों के प्रत्यक्षण का कटआफ गुणांक 89.82 पाया गया है।

उद्देश्य 2: मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन उनके विभिन्न जनसांख्यिकी (डेमोग्राफिक) आधारों पर करना।

H01 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों (प्रशासक, अभिभावक एवं अध्यापक) के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी 4 : एक मार्गीय अनोवा (ANOVA) विश्लेषण

समूह	वर्ग का योग	Df	माध्य वर्ग	F	सार्थकता
समूह के मध्य	1439.290	2	719.645	6.919	.002
समूह के साथ	10088.820	97	104.008		
कुल	11528.110	99			

सारणी सं 4 से यह स्पष्ट है कि अभिकलित F (2, 97) = 6.919, p=0.002 ढ .05 सार्थकता स्तर, अतः कहा जा सकता है कि अभिकलित F मान सार्थक है और 'H01 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों (प्रशासक, अभिभावक एवं अध्यापक) के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है', निरस्त होती है एवं वैकल्पिक परिकल्पना 'मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों (प्रशासक, अभिभावक एवं अध्यापक) के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर है, चयनित होती है।

सारणी 5 : पोस्ट हाक विश्लेषण

एकाधिक तुलनाएं							
आश्रित चर : प्रत्यक्षण मापनी से प्राप्त अंक							
	(I) हितधारक	(J) हितधारक	माध्यान्तर (I-J)	मानक त्रुटि	सार्थकता	95% विश्वास अंतराल	
						निम्न सीमा	उच्च सीमा
Tukey HSD	A	P	8.66000′	2.69826	.005	2.2376	15.0824
		T	2.00000	2.94404	.776	−5.0075	9.0075
	P	A	−8.66000′	2.69826	.005	−15.0824	−2.2376
		T	−6.66000′	2.35523	.016	−12.2660	−1.0540
	T	A	−2.00000	2.94404	.776	−9.0075	5.0075
		P	6.66000′	2.35523	.016	1.0540	12.2660
Bonferroni	A	P	8.66000′	2.69826	.005	2.0865	15.2335
		T	2.00000	2.94404	1.000	−5.1723	9.1723
	P	A	−8.66000′	2.69826	.005	−15.2335	−2.0865
		T	−6.66000′	2.35523	.017	−12.3978	−.9222
	T	A	−2.00000	2.94404	1.000	−9.1723	5.1723
		P	6.66000′	2.35523	.017	.9222	12.3978
*माध्यान्तर का स्तर 0.05 पर सार्थक है। A =Administrator (प्रशासक), P= Parents (अभिभावक), T = Teacher (अध्यापक)							

सारणी 5 से यह स्पष्ट है कि Tukey HSD एवं Bonferroni पोस्ट हाक विश्लेषण के परिणाम यह दर्शाते हैं की प्रशासक, अभिभावक एवं अध्यापक के प्रत्यक्षण में सार्थक अंतर है जिसमें से अभिभावक के प्रत्यक्षण का प्रशासक एवं अध्यापक के प्रत्यक्षण में अलग–अलग सार्थक अंतर है जबकि प्रशासक एवं अध्यापक के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है। (बोल्ड पंक्ति देखें)

जब हम सभी हितधारकों के प्रत्यक्षण के औसत को देखते हैं तो यह ज्ञात होता है कि अभिभावक का औसत प्राप्तांक 92.94, अध्यापक एवं प्रशासक के औसत प्राप्तांक (99.6 – 101.6) से अल्प है। अतः कहा जा सकता है कि विभिन्न शैक्षिक हितधारकों में से अभिभावक का मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति प्रत्यक्षण सार्थक रूप से अल्प है।

H02 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति महिला एवं पुरुष हितधारकों के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी सं. 6 : स्वतंत्र प्रतिदर्श टी परीक्षण

	लिंग	N	माध्य	मानक विचलन	टी मान	सार्थकता (२ पुच्छीय)
प्राप्तांक	F	44	98.4091	7.66544	1.05	0.296
	M	56	96.7857	7.67692		

df = 98

प्रसरण की समानता एवं टी परीक्षण की अवधारणात्मक जाँच हेतु लेवेनीज परीक्षण से अभिकलित F = 0.44, P = 0-834 > 0-05 यह दर्शाता है कि प्रस्तुत समंक पर टी परीक्षण ग्राह्य है।

सारणी 6 से यह स्पष्ट है कि अभिकलित टी– मान = 1.05, df= 98, च =0.296 झ 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अतः शून्य परिकल्पना 'H02: मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति महिला एवं पुरुष हितधारकों के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है। ' निरस्त होने में असफल हुई अर्थात स्वीकार्य हुई। मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति महिला एवं पुरुष हितधारकों के प्रत्यक्षण में अंतर नहीं हैद्य

H03 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति ग्रामीण एवं शहरी हितधारकों के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी सं. 7 स्वतंत्र प्रतिदर्श परीक्षण

	स्थानीयता	N	माध्य	मानक विचलन	टी मान	सार्थकता 2–पुच्छीय)
प्राप्तांक	U	79	97.4684	7.44869	0.08	.937
	R	21	97.6190	8.67454		

df = 98

प्रसरण की समानता एवं टी परीक्षण की अवधारणात्मक जाँच हेतु लेवेनीज परीक्षण से अभिकलित F = 1. 759, P = 0-188 > 0-05 यह दर्शाता है कि प्रस्तुत समंक पर टी परीक्षण ग्राह्य है।

सारणी 7 से यह स्पष्ट है कि अभिकलित टी– मान = 0.08, df= 98, p = 0-937 > 0-05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है अतः शून्य परिकल्पना 'H03: मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति ग्रामीण एवं शहरी हितधारकों के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है। ' निरस्त होने में असफल हुई अर्थात स्वीकार्य हुई। अतः मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति ग्रामीण एवं शहरी हितधारकों के प्रत्यक्षण में अंतर नहीं है।

शैक्षिक निहितार्थ :

यदि हम प्रस्तुत शोध की आवश्यकता पर ध्यान दें तो ज्ञान का अंतराल तथा शैक्षिक मुद्दे के तौर पर यह शोध अपनी प्राथमिकी दर्ज कराता है। मामिदी, एट ऑल. (2022) ; कान, एस. एट ऑल (2022) ; कुमार एवं बेहरा (2022); अली, एट ऑल. (2016) के किये गये अध्ययनों के अवलोकन से यह पता चलता है कि शोधकर्ता द्वारा प्रस्तावित विषय पर शोध की आवश्यकता ज्ञान के अंतराल को भरने में सहायक सिद्ध होगी। मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि पढ़ने–लिखने और संख्याओं के साथ बुनियादी क्रियाएँ कर सकने की क्षमता (अर्थात् थ्स्छ) भविष्य की सभी स्कूली शिक्षा और आजीवन सीखने हेतु एक आवश्यक आधार तथा अनिवार्य शर्त है। प्रस्तुत अध्ययन शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण के बारे में जो जानकारी प्रस्तुत करता है जिससे अध्यापकों, छात्रों, प्रशासकों, नीति निर्धारकों, पुस्तक लेखकों एवं अध्येताओं को उपयुक्त सहायता मिल सकेगी। पोस्ट हाक विश्लेषण से अभिभावकों का प्रत्यक्षण सार्थक रूप से अल्प पाया गया, अतः उनके हेतु उचित जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया जाना उचित होगा। साथ ही औसत स्तर से कम प्रत्यक्षण वाले समूहों हेतु विभिन्न तरीकों से उपचार की व्यवस्था की जानी चाहिए।

उपसंहार : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में बुनियादी साक्षरता एवं संख्या–ज्ञान को सीखने के लिए एक तात्कालिक आवश्यकता और पूर्वशर्त के रूप में प्रदर्शित किया गया है। सभी विद्यालयों के छात्रों द्वारा पढ़ने और लिखने और संख्याओं के साथ कुछ बुनियादी संक्रियाएं करने की क्षमता आगे की स्कूली शिक्षा में और जीवन–भर सीखते रहने की बुनियाद रखती है और भविष्य में सीखने की एक पूर्वशर्त भी है। हालांकि, विभिन्न सरकारी, साथ ही गैर–सरकारी सर्वेक्षणों से यह संकेत मिलता है कि हम वर्तमान में सीखने की एक गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन सोनभद्र जिले (आकांक्षी जिला) के 100 हितधारकों को शामिल किया गया जिनमें अभिभावकों, अध्यापकों एवं प्रशासकों शमिल थे स्व निर्मित प्रत्यक्षण मापनी से प्राप्त आंकड़ों विश्लेषण से यह पाया गया कि 16% हितधारकों का प्रत्यक्षण का स्तर औसत से ऊपर था, 66% हितधारक का प्रत्यक्षण औसत स्तर का तथा 18% हितधारक ऐसे थे जिनका प्रत्यक्षण औसत से नीचे था। निर्मित परिकल्पना भ्01 के परीक्षण हेतु अभिकलित ∗ (2, 97) = 6.919, च=0.002 ढ .05 सार्थकता स्तर, पाया गया अतः कहा जा सकता है कि अभिकलित ∗ मान सार्थक पाया गया और 'भ्01 : मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता के प्रति विभिन्न शैक्षिक हितधारकों (प्रशासक, अभिभावक एवं अध्यापक) के प्रत्यक्षण में कोई सार्थक अंतर नहीं है', निरस्त हुई। पोस्ट हाक विश्लेषण से अभिभावकों का प्रत्यक्षण सार्थक रूप से अल्प पाया गया। डेमोग्राफिक आधार जैसे कि लिंग एवं स्थानीयता पर शैक्षिक हितधारकों में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। कान, एस. एट ऑल (2022) ; कुमार एवं बेहरा (2022) भी इस प्रकार के निष्कर्ष से अंशतः सहमत पाए गये। इस प्रकार प्रस्तुत शोध का परिणाम शैक्षिक हितधारकों के प्रत्यक्षण की एक समझ विकसित करता है एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में वर्णित तत्काल राष्ट्रीय मिशन की प्राप्ति हेतु सहायक सिद्ध होता है। साथ ही अभिभावकों के प्रत्यक्षण की अल्पता को बढ़ने हेतु एक सार्थक प्रयास की वकालत करता है।

सन्दर्भ सूची :–

1. अली, एम. आर., करीम, एच. बी. बी. ए. एवं यूसूफ, एफ. एम. (2016). एक्सपीरियंस प्राइमरी स्कूल टीचर्स थॉट्स ऑन इफेक्टिव टीचर्स ऑफ लिटरेसी एण्ड नुमेरेसी. मलेसियन जर्नल ऑफ लर्निंग एंड इंस्ट्रकशन, 13(1), 43–62. https://eric-ed-gov/\id¾EJ1134519
2. कान, एस.; फहेज,एम. एवं वालेन्जा, एम. (2022). फाउण्डेशनल लिटरेसी एंड नुमेरेसी इन रूरल अफगानिस्तानः फाइंडिंग्स फ्रॉम ए बेसलाइन लर्निंग असेसमेंट ऑफ एसीलेरेटेड लर्निंग सेंटर्स. इनोसेंटी रिसर्च रिपोर्ट, यूनीसेफ ऑफिस ऑफ रिसर्च–इनोसेंटी फलोरेंस https://livrepository-liverpool-ac-uk/3151819
3. कुमार, एम. एवं बेहरा, बी. (2022). इनफ्लूयन्स ऑफ होम इनवायरमेंट ऑन चिल्ड्रेन्स फाउण्डेशनल लिटरेसी एण्ड नुमेरेसी स्किल्सः ए सिस्टेमेटिक सिन्थेसिस विथ इण्डिया इन फोकस. एसियन जर्नल फॉर मैथमेटिक्स एजुकेशन, 1(3), 359–380. https://journals-sagepub-com/doi/pdf/10-1177/27527263221129366
4. निपुण भारत (2013). शिक्षा मंत्रालय. भारत सरकार. https://pmmodiyojanaye-in/nipun&bharat&yojana/
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020). शिक्षा मंत्रालय. भारत सरकार. https://www-education-gov-in/sites/upload&files/mhrd/files/NEP&final&HINDI&0-pdf
6. मामिदी, पी.; राधाकृष्णन, डी. एवं शशिधारा, एस. (2022). बिहैवियरल फैक्टर्स अमंग पैरेंट्स इंफ्लूएन्सिंग फाउनडेशनल लिटरेसी एंड नुमेरेसी आउटकम्स. सेंटर फॉर सोशल एंड बिहैवियर चेन्ज, https://csbc-org-in/images/resources/pre&analysis/FLN&PAP-pdf
7. मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता (2020). दीक्षा. भारत सरकार.https://diksha-gov-in/fln-html

वैदिक काल से पूर्व मध्यकाल तक भारत में जाति व्यवस्था

सौरभ सिंह*

जाति शब्द संस्कृत भाषा के 'जन्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जन्म', 'भेद' अथवा 'प्रजाति' होता है। जाति के लिए अंग्रेजी शब्द 'कास्ट' का मूल पुर्तगाली शब्द 'कास्टा' है जिसका अर्थ जन्म, नस्ल अथवा प्रजाति है। जाति व्यवस्था का आधारभूत तत्व आनुवांशिक वर्गों का एक अधिक्रम या क्रमिक विकास –विन्यास। इस प्रकार जाति व्यवस्था का मूल प्राचीन भारतीय धर्म व्यवस्था में निहित माना जा सकता है। भारत में जाति व्यवस्था में विभिन्न कालों में परिवर्तन होती रही हैं अतः जाति व्यवस्था का कालिक अध्ययन को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में जानना अति आवश्यक है। वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक जाति व्यवस्था समाज में किन रुपों में रही हैं इसका सम्यक बोध आवश्यक है जिसे निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है– त्रृग्वेद के 10 वे मंडल प्रथमतः चार वर्णों का उल्लेख मिलता है। लेकिन उस समय उनमें विवाह, खान–पान अथवा व्यवसाय–चयन में कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र अर्थात् चारों वर्णो की सामाजिक स्थिति में समानता थी। उनमें ऊँची–नीच का भेद–भाव नहीं था। वस्तुतः इस काल के आधार पर अलग–अलग वर्ण माने जाते थे।। ये वर्ण वृत्तिगत साम्यता के आधार पर बने थे न कि जन्म के आधार पर। अतः ऋग्वैदिक काल में जन्म के आधार पर वर्ण–व्यवस्था का विकास नहीं हुआ। अतः इस काल में जाति प्रथा की उत्पत्ति नहीं मानी जाती है।

जाति शब्द का प्रथमतः प्रयोग उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में मिलता है यास्क ने निरूक्त मे सर्वप्रथम जाति शब्द का प्रयोग किया है (अग्नि चित्वा न रामामुपेयात् रामा रमणायोपयते न धर्माय – ष्णजातीया)[1]। इसी तरह पतंजलि के महाभाष्य में जाति शब्द की व्याख्या जन्म से प्रतिपादित है (जननेन या प्राप्यतेसा जातिः)[2]। मनुस्मृति में जाति शब्द वर्ग विभिन्न को दर्शाता है (हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्‌बहन्तो द्विजातियः)ङ।उत्तर वैदिक काल में सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन में व्यापक पैमाने पर परिवर्तन हुए। एक ओर जनपदों एवं महाजनपद राज्यों का उदय एवं उनमें राज्य–विस्तार को लेकर पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी, तो दूसरी तरफ धार्मिक कर्मकाण्डों में जटिलता आने के कारण ब्राह्मण पुरोहितों का महत्व बढ़ने लगा। पारिवारिक परम्पराओं की मान्यता बढ़ने तथा उनके दृढ़ीकरण के फलस्वरूप गोत्रों का महत्व बढ़ने लगा। राज्य–शक्ति के विस्तार के के कारण राजन्य वर्ग (क्षत्रिय वर्ण) के लोगों की प्रभुता में क्रमशः बढ़ोत्तरी होती गई। यज्ञों एवं धार्मिक कृत्यों के बढ़ने से पुरोहितों (ब्राह्मण वर्ण) का भी अपना अलग प्रभाव एवं महत्व स्थापित होने लगा था। शतपथ एवं ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों का धार्मिक महत्त्व होते हुए भी वे क्षत्रिय वर्ग पर धीरे–धीरे आश्रित होने लगे। व्यवसाय वंशपरम्परानुगत होने लगे। फलतः अनेक व्यावसायिक वर्गों का उदय होने लगा। इस वर्ग के लोग परस्पर संगठित होकर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों से अलग अपना पृथक् वर्ग बना लिए। इसी प्रकार शूद्रों पर धार्मिक कृत्यों को करने पर क्रमशः प्रतिबन्ध लगाए जाने लगे।[4] अतः शूद्रों की स्थिति उक्त तीनों वर्गों से निम्न होने लगी तथा उनका एक अलग वर्ग स्थापित होने लगा।– ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के लोगों के बीच अब भी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होते थे, किन्तु इनमें केवल अनुलोम विवाह ही विहित समझा जाने लगा। शूद्रों के साथ शेष तीन वर्गों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध धर्मविहित नहीं माना जाता था।[5] इस प्रकार उत्तर वैदिक काल में वर्णों का लचीलापन बहुत कुछ समाप्त प्राय हो चुका था। फिर, भी प्रारम्भिक उत्तर वैदिक काल में जाति प्रथा जैसी बात विशेष प्रकट नहीं हो सकती थी। किन्तु वर्णो के बीच परस्पर ऊँच–नीच की भावना इस काल में जन्म अवश्य ले चुकी थी, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण" में विभिन्न वर्गों के बुलाने के सम्बोधन में स्पष्ट अन्तर मिलता है।

*** शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा म०प्र० 486003।**

उपनिषदों में अच्छे एवं बुरे कर्म के आधार पर ही व्यक्ति के उच्च अथवा निम्न वर्ण में जन्म–प्राप्ति का उल्लेख मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद्[6] में कर्माधारित जन्म–प्राप्ति की व्याख्या प्राप्त होती है। अतः उपनिषद् काल तक अर्थात् 6ठीं शताब्दी ई० पू० के लगभग– पूर्वजन्म के कर्मों के आधार पर उच्च या निम्न वर्ण में जन्म–प्राप्ति की भावना तत्कालीन समाज में प्रबल हो चुकी थी। इस प्रकार सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में 'जाति' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु उत्तर वैदिक काल में धीरे–धीरे ऐसे अनेक वर्ग अवश्य अस्तित्वआने लगे थे, जिन्हें बाद में सूत्र साहित्य में अलग–अलग जाति–नाम प्राप्त हो गया, ।उदाहरण– चाण्डाल, पौल्कस, वैदेह तथा पाञ्चाल क्षतृ, सूत, उग्र आदि।

छठीं शताब्दी ई०पू० से चौथी शताब्दी ई० पू० के मध्य का समय काल द्वितीय नगरीकरण का है। इस काल में अनेक प्रकार के परिवर्तनों एवं क्रान्तियों का दौर चला। इसी काल में लेखन कला का विकास, नगरों की स्थापना तथा स्पष्ट रूप से जाति प्रथा की शुरुआत हुई। इस काल के संकलित साहित्य में क्षत्रियों के राजनीतिक प्रभुत्व में वृद्धि के साथ–साथ अन्य वर्णों की अपेक्षा उनकी सामाजिक श्रेष्ठता की स्थापना हुई। महावीर तथा गौतम बुद्ध इसी संवर्ग से सम्बन्धित थे। ब्राह्मण परम्परा के संकलित ग्रन्थों में योद्धा वर्ण को क्षत्रिय वर्ण में परिगणित करते हुए उन्हें चतुर्वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण के बाद द्वितीय उच्च वर्ण स्वीकार किया गया। परन्तु बौद्ध ग्रन्थों में ब्राह्मण ग्रन्थों से पृथक् तत्कालीन समाज के केवल दो वर्गों का उल्लेख मिलता है–भू–स्वामी क्षत्रिय वर्ग एवं कृषि–कर्म करने वाली जातियों का वर्ग अर्थात् मजदूर, दास अथवा कर्मकार आदि। इस प्रकार बौद्ध परम्परा में ब्राह्मण एवं शूद्र वर्ग विशेष महत्वपूर्ण नहीं माने गए। इतना ही नहीं, बौद्ध ग्रन्थकारों ने पारम्परिक वर्ण–व्यवस्था में क्षत्रियों को प्रथम एवं उच्चतम स्थान प्रदान कर, ब्राह्मणों को उनकी तुलना में गौण स्थान प्रदान किया है।

लगभग 600 ई० पू० से 300 ई० पू० के मध्य रचित एवं संकलित सूत्र ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काल में वर्ण क्रमशः जाति के रूप में परिवर्तित होने लगे थे। सूत्र काल में वर्ण का निर्धारण जन्म के आधार पर होने के कारण जाति–प्रथा का स्पष्ट प्रकटीकरण होने लगा। धर्मसूत्रों में तीन उच्च वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को द्विजाति कहकर शूद्रों से उनकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। इस काल में शूद्रों के साथ सांस्कृतिक भेदभाव रखा जाने लगा तथा उन्हें उपनयन संस्कार, शिक्षा तथा कतिपय धार्मिक कृत्यों से वंचित कर दिया गया। इसी काल खण्ड में मध्य–गंगा–घाटी में वैश्यों में ही एक धनी वर्ग 'गृहपति' अथवा गहपति उद्भूत हुआ, जो क्षत्रिय न होते हुए भी भू–स्वामियों का एक सम्पन्न समूह था। बौद्ध साहित्य में उल्लिखित गहपति वर्ग गण–संघों में बहुत कम थे, क्योंकि वहाँ भूस्वामित्व क्षत्रिय योद्धाओं के अधीन था। गहपतियों में भू–स्वामित्व के अतिरिक्त अनेक शिल्पी तथा व्यवसायिक वर्ग के लोग भी सम्मिलित थे। कालान्तर में इस प्रकार का वर्ग–बड़े–बड़े नगरों में श्रेष्ठ व्यापारी वर्ग (सेठी) के रूप में स्थापित हो गया।

पाणिनि ने तत्कालीन समाज में शूद्रों को शुद्धता की दृष्टि से दो वर्गों में विभक्त किया है– अनिरवसित तथा निरवसित। अनिरवसित शूद्र वे थे, जिनको भोजन कराने से द्विजातियों के पात्र अपवित्र नहीं होते थे तथा उन्हें फेंका नहीं जाता था। निरवसित शूद्र वे थे, जिनको भोजन कराने से द्विजातियों के पात्र अपवित्र हो जाते थे तथा उन्हें भोजनोपरान्त बहिष्कृत कर दिया जाता था। निरवसित शूद्र जातियों में कतिपय अनार्य जातियों के अतिरिक्त यवन, कम्बोज आदि विदेशी जातियाँ भी सम्मिलित थीं।

चार वर्णों अथवा जातियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी जातियाँ भी इस काल में विद्यमान थीं, जिन्हें हीनता के कारण चातुर्वर्ण अथवा चातुर्जाति व्यवस्था में कोई स्थान प्राप्त नहीं था। बौद्ध साहित्य में ऐसी हीन जातियों में बेण, चाण्डाल, रथकार, निषाद तथा पुक्कुरत नाम से संबोधित किया गया है। इनमें चाण्डाल तो अस्पृश्य जाति मानी जाती थी, जिनका स्पर्श एवं दर्शन तक अपवित्र समझा जाता था। वे गाँव तथा शहर के बाहर निवास करते थे। शेष जातियों में से कुछ अनार्य थीं तथा कुछ शिल्पी एवं अति शारीरिक श्रम करने वाली अशुद्ध जातियाँ थीं। बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार इन हीन जातियों की उत्पत्ति वर्णसंकरत्व के कारण हुई, जबकि आपस्तम्ब धर्मसूत्र की मान्यता है कि द्विजातीय वर्ण के लोग चौरकर्म करने पर दूसरे जन्म में उक्त हीन जातियों में जन्म पाते हैं। सूत्रग्रन्थों में जातियों के प्रमाणीकरण का कारण अनुलोमज एवं

प्रतिलोमज अन्तर्वर्णीय विवाहों को स्वीकार किया गया है। जाति–धर्म इस काल में बन तो गए थे, पर वे सरल तथा लचीले थे। जाति–नियमों से विरत लोग निर्धारित प्रायश्चित कर लेने पर पुनः अपनी मूल जाति में सम्मिलित हो सकते हैं।

लगभग 300 ई० पू० से लेकर 200 ई0 के बीच प्राचीन भारतीय समाज में चारों वर्णों के लिए लगभग वही मान्यता साहित्यिक ग्रन्थों में वर्णित मिलते हैं, जिनका उल्लेख धर्मसूत्रों में प्राप्त होता है। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में ब्राह्मण जाति के लिए यज्ञ करना, दान देना एवं लेना, क्षत्रिय जाति के लिए शस्त्रजीवी होना एवं जीवों की सुरक्षा करना और वैश्य जाति के लिए कृषि, पशुपालन तथा व्यापार–कर्म करना विशिष्ट कर्तव्य बताया है। अर्थशास्त्र में शूद्रों के लिए द्विज–सेवा, धनार्जन, कला एवं शिल्प–कर्म में निपुणता प्राप्त करना विशिष्ट कर्तव्य कहा गया है। जैन एवं बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्तकों ने उत्तर वैदिक युगौन वर्ण व्यवस्था को, जिसमें जन्म के आधार पर, वर्ण–विभाजन को मान्यता दी गई थी, को न मानकर इसका आधार केवल कर्म प्रतिपादित किया था। जैन एवं बौद्ध विचारकों के इस कर्माधारित वर्ण–विभाजन को महाभारत तथा श्रीमद्भगवद्गीता" में थोड़े से और परिष्कार के साथ स्वीकार कर लिया गया। महाभारत[7] में ब्राह्मण के सामाजिक सम्मान का कारण उसका जन्म नहीं, अपितु उसका श्रेष्ठ आचरण है। श्रीमद्भगवद्गीता[8] में श्रीकृष्ण ने स्वयं उद्घोषित किया है कि मैंने समाज का चार प्रमुख वर्णों में विभाजन गुण एवं कर्म के आधार आ पर किया है :

"चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्।।"

ई० पू० 300 से लेकर 200 ई0 के मध्य क्षत्रियों की राजनीतिक शक्ति में विशेष समुन्नति हुई। अतः बुद्धिबल तथा राज्य–शक्तिबल के कारण वे समाज में विशेष समादृत तो थे ही, साथ ही वे ब्राह्मणों के समकक्ष समादरणीय बनने की कोशिश में थे। मेगस्थनीज के अनुसार तत्कालीन समाज में लोग अपनी जाति में ही वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते थे। इसके विपरीत मनुस्मृति में अनुलोम विवाह का उल्लेख मिलता है। मनु के अनुसार सभी वर्णों में ब्रह्मविद्या का ज्ञान रखने के कारण ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। उसे प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था। उसे राजा उच्च से उच्च पदों पर नियुक्त करता था इस समय काल में वैश्यो की स्थिति शूद्रों के सर्वाधिक निकट पहुँच गई थी। परन्तु उन्हें शिक्षा ग्रहण तथा यज्ञोपवीत धारण करने की मान्यता प्राप्त थी। शूद्रों की समाज में सबसे अधिक दयनीय स्थिति थी।

इस काल में अनेक वर्णसंकर जातियों उदय हुआ। मनुस्मृति में प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न संतान को 'व्रात्य' कहा गया है। इन्हें निर्धारित प्रायश्चित करने के उपरान्त ही उनकी जाति में स्थान मिल पाता था।मनु ने अन्तर्जातीय विवाहों से उत्पन्न संतानों को उनके वर्ण–मिश्रण के अनुसार अनेक नाम दिया है। मनुस्मृति में निषाद, अम्बष्ठ, ऊग्र, सूत, मागध, विदेह जैसी कुल 57 ऐसीजातियों का उल्लेख मिलता है, जो मूलतः 'व्रात्य' कही जाती थीं। मनु के अनुसार इनजातियों का प्रादुर्भाव अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाहों के कारण सम्भव हुआ। महाभारत केअनुसार अधिकांश जातियों की उत्पत्ति प्रतिलोम विवाहों के कारण हुई।[7] ज्ञातव्य है किअन्तर्जातीय विवाहों से विभिन्न जातियों की उत्पत्ति का सिद्धान्त सर्वप्रथम धर्मशास्त्रकारों द्वाराप्रतिपादित किया गया। वस्तुतः उपर्युक्त ग्रन्थों, यथा–महाभारत तथा मनुस्मृति में प्रतिपादित वर्णसंकरत्व से विभिन्न जातियों के जन्म का सिद्धान्त पूर्ण स्वीकार्य नहीं प्रतीत होता है।उदाहरणार्थ, मनु द्वारा उद्धृत निषाद एवं अम्बष्ठ, भारत की आरम्भिक जातियाँ थीं। इसी प्रकार मागध तथा विदेह जैसी जातियों का नामकरण उनके भौगोलिक निवास क्षेत्र के आधार पर रखा गया प्रतीत होता है। 'सूत' एवं 'उग्र' जातियों का उत्तर वैदिक काल में समाज में बड़ा आदरणीय स्थान था तथा वे राज्य के बड़े पदाधिकारी की उत्पत्ति को लेकर धर्मशास्त्रकारों ने अलग–अलग मत प्रतिपादित किया है। उदाहरणार्थ, बौधायन, वशिष्ठ तथा मनु 'आबष्ठ' जाति को ब्राह्मण पिता तथा क्षत्रिय माता से अथवा क्षत्रिय पिता एवं शूद्रा माता से प्रादुर्भूत मानते हैं। इसके विपरीत गौतम उन्हें क्षत्रिय पिता एवं वैश्य माता की सन्तान बताते हैं। इस काल में उत्तरी भारत में यवन, पहलव, शक एवं कुषाण जैसी विदेशी जातियों का प्रवेश एवं मिश्रण प्रारम्भ हुआ।

200 ई० पू० में 300 ई0 के मध्य दक्षिण भारत में समाज मुख्यतः चार प्रमुख वर्गों में विभक्त था। दक्कन में इन सामाजिक वर्गों को उनके व्यवसाय के आधार पर सम्बोधित. करने की प्रथा विद्यमान थी। यहाँ जाति–अनुशासन में लचीलापन था। यहाँ की प्रमुख व्यावसायिक जातियाँ थीं– हलवाहा (हलक), बढ़ई (वर्धकी), बुनकर (कौलिक), गड़ेरिया (गोलिक), तेली (तिलपिसक) एवं धातुकर्मी (कमार) आदि।

लगभग 300 ई0 से 600 ई० के मध्य अर्थात् गुप्तकाल में ब्राह्मणों को समाज का श्रेष्ठतम वर्ण तथा जाति माना जाने लगा। वे संस्कृत भाषा के जानकार होने के साथ–साथ धार्मिक अनुष्ठान कराने में दक्ष थे। फलतः राजसत्ता के साथ इनके निकटतम सम्बन्ध बनते चले गये। इस काल के ग्रन्थों में ब्राह्मणों को 'भूसुर' कहा जाने लगा तथा उनके विशेषाधिकारों में गुणात्मक वृद्धि हुई। उन्हें राजा तथा उच्चाधिकारियों ने उपहार के रूप में भूमिदान करना प्रारम्भ कर किया। इस काल में विद्यासम्पन्न ब्राह्मणों में अनेक समूहों को 'ब्रह्मदेय' अथवा 'अग्रहार' के रूप में दूर–दराज के क्षेत्रों में बसाने के लिए बड़े–बड़े भूखण्ड प्रदान किये जाने लगे। वर्णव्यवस्था के आदर्श को समाज में आदरणीय स्थान प्रतिपादित किये जाने के बावजूद ऐसे अनेक सामाजिक गुट इस काल में प्रकाश में आए, जिन्हें परम्परागत वर्ण अथवा जाति व्यवस्था से हटकर 'अस्पृश्य' वर्ग में रखा गया। गुप्तयुगीन धर्मशास्त्रकारों ने भी विभिन्न जातियों की समाज में स्थिति निश्चित करने के उद्देश्य से वर्ण–संकर–उत्पत्ति तथा अन्तर्जातीय विवाहों को उनकी उत्पत्ति का मुख्य कारण बताया। ई० पू० द्वितीय शताब्दी से लेकर 200 ई0 के मध्य भारतभूमि में निवास करने वाले यूनानी, पहलव, शक, कुषाण आदि विदेशी शासक कुलों में 'व्रात्य' क्षत्रिय (सहायक क्षत्रिय) स्तर प्रदान किया गया। लगभग यही स्थिति कतिपय उन कबीलाई गुटों के लिए भी व्याख्यायित की गई, जिन्होंने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था अथवा ब्राह्मणिक सामाजिक व्यवस्था को अपना लिया था। वे भी सहायक क्षत्रिय कुल के रूप में मान्यता प्राप्त करने लगे थे।

इस काल में वैवाहिक सम्बन्ध प्रायः अपनी ही जाति में किए जाते थे। फिर भी, जैसा कि याज्ञवल्य स्मृति तथा गुप्तयुगीन अभिलेखों से ज्ञात होता है, अनुलोम विवाह भी होते थे। उदाहरणार्थ ब्राह्मण वाकाटक राजकुमार रुद्रसेन द्वितीय का प्रतिलोम विवाह संभवतः ब्राह्मणेतर राजकुमारी प्रभावती गुप्ता से हुआ था। उच्च जातियों के वैवाहिक सम्बन्ध विदेशी राजकुलों के साथ भी होते थे। उदाहरणार्थ, एक इक्ष्वाकुवंशी ब्राह्मण राजकुमार का विवाह शक राज कुमारी के साथ संपन्न हुआ था। व्यवसाय का चुनाव प्रायः जातिगत होते थे, परन्तुव्यवसाय चुनने में सभी को स्वतन्त्रता थी। उदाहरणार्थ, चारुदत्त जाति का ब्राह्मण होते हुए भी पेशे से वैश्य था। इसी प्रकार, गुप्त नृपतिगण, जो संभवतः वैश्य थे, कर्मणा शासक वर्ग (क्षत्रिय) के हो गये थे। तत्कालीन समाज में शूद्रों का मुख्य कार्य कृषि एवं व्यापार मनोनीत हो चुका था। इस बात की पुष्टि याज्ञवल्क्य स्मृति से भी होती है। शूद्रों से ही नहीं, अपितु चातुर्वर्णादि व्यवस्था से पृथक् इस काल में एक नया सामाजिक वर्ग प्रकाश में आया, जो 'अन्त्यज' अथवा 'अछूत' थे। 'चाण्डाल' एवं 'चर्मकार' जैसे कतिपय वर्ग इसी श्रेणी में परिगणित किए गये। इन्हें पारम्परिक जाति–व्यवस्था से बाहर रखा गया। गुप्त काल में 'लिपिक' अथवा राजकीय लेखों के संग्रहपाल कायस्थों का एक नया वर्ग भी प्रकाश में आया, परन्तु गुप्त काल में उसकी अपनी पृथक् जातीय पहचान नहीं बन पाई थी। इनके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य ने 'मूर्धाभिषिक्त, निषाद, अम्बष्ठ, पारशव, माहिष्य, करण तथा 'उग्र' आदि कतिपय वर्णकाल में नई–नई संकर जातियों का भी उल्लेख किया है।

सन्दर्भ सूची :–

1. निरूक्त, 12–13।
2. शतपथ ब्राह्मण,3.1.110।
3. ऐतरेय ब्राह्मण 2.19।
4. महाभाष्य, 5.3.55।
5. मनुस्मृति, 3.15।
6. छान्दोग्य उपनिषद,5.10.7।
7. महाभारत वन पर्व,180,21–38।
8. श्रीमद्भगवद्गीता,4.13।
9. अष्टाध्यायी,5.4.9।
10. बृहदारण्यक उपनिषद् 5.10.7
11. शर्मा,दशरथ, लेक्चर्स आन राजपूत हिस्ट्री एंड कल्चर।

ജ★ഏ

विकास के दौर में बदलते गाँव

डॉ. योगेशकुमार करशनभाई चाडसणिया*

जब भी गांव की बात चलती है, तो एक सुकून भरे, शांत, सहज, सादगीपूर्ण वातावरण का आभास मन में उभर जाता है। हरे–भरे खेत, हल जोतते किसान, मवेशियों के गले में टुनकती घंटी, चौपाल पर हुक्के की गुड़गुड़ में बतियाते बुजुर्गों के दृश्य साकार होने लगते हैं। पर हकीकत यह है कि गांव अब बदल गए हैं। आधुनिक तकनीक और जीवन–शैली की धमक वहां साफ सुनाई देने लगी है। आज के बदले ग्रामीण परिदृश्य और आधुनिकता से उपजी स्थितियों के बारे में ईस संशोधन पत्रमें चर्चा करेंगे।

गांवो में समाजिक–भौगोलिक बदलाव : गांवों की गलियों में अब रागनियां सुनाई नहीं पड़ती हैं। रागनियों का स्थान अब फिल्मों के आधुनिक गीत–गानों ने ले लिया है। कच्चे मिट्टी के घर पक्के मकानों में तब्दील हो रहे हैं। हौले–हौले चलती बैलगाड़ियां भी अब कम ही दिखाई देती हैं। बैलगाड़ियों का स्थान ट्रैक्टर ले चुके हैं। गांव की चौपालें अब फीकी पड़ने लगी हैं। ग्रामीणों में शिक्षा और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इतना सब कुछ बदलने के अतिरिक्त गांवों में और भी बहुत कुछ बदलाव आए हैं। ग्रामीणों की मानसिकता भी लगातार बदलती जा रही है। कहते हैं समय की मार से कोई नहीं बच सकता, सो गांव भी समय की मार से नहीं बच सके हैं। आधुनिकता का प्रभाव गांवों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस बदलाव से गांवों ने जहां एक ओर बहुत कुछ प्राप्त किया है वहीं दूसरी ओर बहुत कुछ गंवाया भी है।

खेत–खलिहानों में रागनियां गाते किसान, कच्चे मिट्टी के घर और झोपड़ियां, ऊबड़–खाबड़ धूल–धुसरित सड़कें, हौले–हौले चलती बैलगाड़ियां, पेड़ की ठंडी छांव में जमी चौपालें, पनघट पर पानी भरती महिलाएं और मिट्टी में खेलते छोटे–छोटे नंग–धड़ंग बच्चे। पहले कहीं भी गांव का जिक्र चलते ही ए सभी दृश्य अनायास ही हमारे दृष्टिपटल पर अंकित हो जाते थे। लेकिन आज गांवों की यह तस्वीर बदल रही है। खेत–खलिहानों और गांवों की गलियों में अब रागनियां सुनाई नहीं पड़ती हैं। रागनियों का स्थान अब फिल्मों के आधुनिक गीत–गानों ने ले लिया है। कच्चे मिट्टी के घर पक्के मकानों में तब्दील हो रहे हैं। हौले–हौले चलती बैलगाड़ियां भी अब कम ही दिखाई देती हैं। बैलगाड़ियों का स्थान भैसा–बुग्गी और ट्रैक्टर ले चुके हैं। गांव की चौपालें अब फीकी पड़ने लगी हैं। ग्रामीणों में शिक्षा और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ी है। इतना सब कुछ बदलने के अतिरिक्त गांवों में और भी बहुत कुछ बदलाव आए हैं। ग्रामीणों की मानसिकता भी लगातार बदलती जा रही है। कहते हैं समय की मार से कोई नहीं बच सकता, सो गांव भी समय की मार से नहीं बच सके हैं। आधुनिकता का प्रभाव गांवों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस बदलाव से गांवों ने जहां एक ओर बहुत कुछ प्राप्त किया है वहीं दूसरी ओर बहुत कुछ गंवाया भी है।

किसान से मजदूर : राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के सर्वेक्षण (2016–17) के अनुसार ग्रामीण खेतिहर परिवारों की औसत आय अब कृषि से ज्यादा दैनिक मजदूरी से होने लगी है। कृषि पर आश्रित एक ग्रामीण परिवार की औसत वार्षिक आय 1,07,172 रुपए है, जबकि गैर–कृषि गतिविधियों से जुड़े ग्रामीण परिवारों की औसत वार्षिक आय 87,228 रुपए है। रिपोर्ट के अनुसार मासिक आमदनी का उन्नीस प्रतिशत हिस्सा कृषि से आता है, जबकि औसत आमदनी में दैनिक मजदूरी का हिस्सा चालीस फीसद से ज्यादा है। सतासी फीसद ग्रामीण घरों में अब मोबाइल ने अपनी पहुंच बना ली है, जबकि 88.1 फीसद परिवारों के पास बचत खाते हैं। आज अट्ठावन फीसद परिवारों के पास टीवी, चौंतीस फीसद परिवारों के पास मोटरसाइकिल और तील फीसद परिवारों के पास कार उपलब्ध है। इसके अलावा दो फीसद परिवारों के पास लैपटॉप और एसी भी पहुंच गए हैं। खेती करने वाले छब्बीस फीसद और गैर–कृषि क्षेत्र के पच्चीस

***अध्यक्ष : समाजशास्त्र विभाग, सरकारी कला महाविद्यालय, बेचराजी।**

फीसद परिवार बीमा के दायरे में आ गए हैं। पेंशन योजना 20.1 फीसद कृषक परिवारों ने और 18.9 फीसद गैर–खेतिहर परिवारों ने प्राप्त की है। हालांकि इस सर्वेक्षण पर किसानों के कुछ संगठनों ने प्रश्नचिह्न लगाया है। उनके अनुसार इस सर्वेक्षण में किसानों की परिभाषा बदल कर आंकड़े जुटाए गए हैं। 2012–13 के एक सर्वेक्षण में उस परिवार को कृषक परिवार माना गया था, जिसे केवल खेती से तीन हजार रुपए तक की आमदनी प्राप्त होती हो। इसकी तुलना 2015–16 के उन आंकड़ों से की गई है जिनमें खेती से पांच हजार रुपए कमाने वालों को कृषक परिवार का दर्जा दिया गया है। यह सर्वेक्षण किसानों की दुर्दशा की ओर भी संकेत करता है। सर्वेक्षण में बताया गया है कि ग्रामीण क्षेत्र के सैंतालीस फीसद परिवार कर्ज में डूबे हुए हैं। छोटे किसानों को खेती में अनेक समस्याओं से दो चार होना पड़ रहा है। फलस्वरूप उन्हें मजदूरी करनी पड़ रही है। विभिन्न राज्यों के ग्रामीण परिवारों की औसत आय में भी भारी अंतर है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज एक ओर तो गांवों में समृद्धि आई है, लेकिन दूसरी ओर गांवों के छोटे–मोटे उद्योग कमजोर हुए हैं।

धुंधलाती ग्रामीण संस्कृति : पहले गांव की अपनी एक अलग संस्कृति थी। उस संस्कृति के सुरक्षा कवच में ही दिल को सुकून देने वाली न जाने कितनी चीजें सुरक्षित रहती थीं। सुख–शांति, स्वस्थ प्राकृतिक वातावरण और सहकारिता की भावना, सभी कुछ तो था गांवों में। बुजुर्ग ग्रामीण आज भी गावों में आतिथ्य सत्कार की परंपरा को याद करते हुए रोमांचित हो उठते हैं। जब कभी गांवों में कोई बारात आती थी, तो वह पूरे गांव की बारात होती थी। गांव के सभी लोग बारात का आतिथ्य सत्कार करना अपना धर्म समझते थे। गांव के प्रत्एक घर से लड़की वाले के घर दूध–दही पहुंचाई जाती थी। लेकिन आज यह बीते जमाने की बात हो गई है। पहले एक घर का मेहमान पूरे गांव का मेहमान होता था। अगर कोई नया मेहमान गांव में आता था तो गांव के लोग स्वयं उसके साथ चल कर उसे गन्तव्य तक पहुंचाते थे। हालांकि गांव की इस परंपरा में पहले की अपेक्षा थोड़ा परिवर्तन तो अवश्य हुआ है, लेकिन आज भी गांवों में यह परंपरा काफी हद तक विद्यमान है। पहले शहर के बड़े–बड़े क्लब गांव की चौपाल के सामने फीके थे। गांवों की चौपालों में शहर के क्लबों की तरह इत्र की मादकता तो नहीं बिखरती थी, लेकिन वहां माटी की सौंधी गंध अवश्य बिखरती थी। वह माटी की सोंधी गंध ही हमें बार–बार अपनी मिट्टी से जुड़ा होने का अहसास कराती थी। गांव की चौपाल में बैठ कर एक अजीब–सी शांति का अनुभव होता था। चौपाल में शहर के क्लबों की तरह दिखावटी तौर–तरीके नहीं थे। लेकिन वहां जीवन से जुड़ी हुई अन्य बहुत–सी बातें सिखाई जाती थीं। वहां जो भी कुछ था, वह दिखावटी और बनावटी नहीं था। मसलन, अगर गांव का कोई युवक खाट पर बैठे अपने से बड़े व्यक्ति के सिराहने बैठ जाता था तो उसे जम कर लताड़ लगाई जाती। इस तरह चौपाल गांव के युवकों को उठने–बैठने का सलीका भी सिखाती थी। ऐसा नहीं कि पहले गांवों में ईर्ष्या, द्वेष और गंदी राजनीति का कोई स्थान नहीं था। गांवो में ये सभी विसंगतियां पहले भी मौजूद थीं। लेकिन आज की तरह इनका स्वरूप विकृत और घिनौना नहीं था।

बदल गए मनोरंजन के साधन : पहले गांव में मनोरंजन का कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं था। ग्रामीण लोग रागनियां और लोकगीतों के माध्यम से ही अपना मनोरंजन करते थे। गांव की गलियों और खेतों में जहां एक ओर रागिनी और लोकगीतों के बोल सुनाई पड़ते थे वहीं दूसरी ओर पत्तियों के झुरमुट और कोयल की कूक से एक मधुर संगीत निकलता था। खेत में हल चलाता किसान प्रकृति के मधुर संगीत के बीच जब खुल कर रागिनियां गाता था तो उसे जेठ की तपती धूप का अहसास तक नहीं होता था। इस देशी गीत–संगीत के साथ खेत में काम करते हुए दिन कब बीत जाता उसे पता ही नहीं चलता। इसके अलावा पहले गांवों में मनोरंजन के लिए विभिन्न नौटंकी पार्टियों को भी बुलाया जाता था। आज गाने की परंपरा गांवों से लुप्त हो चुकी है। आधुनिकता की चकाचौंध में रागनियां और लोकगीत भी गांवों से विदा ले रहे हैं। इस देशी गीत–संगीत का स्थान अब आधुनिक गीत–संगीत ने ले लिया है। इस दौर में आधुनिकता गांव की मौलिक संस्कृति को लगातार निगलती जा रही है। टेलीविजन के कारण गांवों की चौपालें भी फीकी पड़ती जा रही हैं। इस तरह टीवी जैसे साधनों के कारण गांवों में भी लोग आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं। मगर गांवों में टीवी जैसे साधनों के आगमन का सकारात्मक पहलू देखें, तो हम पाएंगे कि इस तरह के साधनों ने सूचना क्रांति के इस दौर में बहुत से महत्त्वपूर्ण कार्य भी किए हैं। आज टीवी के माध्यम से

ग्रामीण लोगों को विश्व की किसी भी घटना की दृश्य सहित नवीनतम जानकारी तीव्र गति से प्राप्त हो जाती है। टीवी और शिक्षा के प्रसार से ही ग्रामीण लोग हर क्षेत्र में पहले से अधिक जागरूक हुए हैं। इन सभी कारणों से ही आज भोले–भाले किसान या फिर ग्रामीण युवक की छवि प्रगतिशील किसान और स्मार्ट जागरूक युवक में परिवर्तित हो रही है।

शिक्षा का स्वरूप : शिक्षा के क्षेत्र में भी गांवों में आश्चर्यजनक रूप से प्रगति हुई है। आज ग्रामीण अंचलों में अनेक इंटरमीडिएट और डिग्री कॉलेज मौजूद हैं। अनेक संस्थाएं एवं ट्रस्ट भी ग्रामीण इलाकों में अंग्रेजी माध्यम वाले पब्लिक स्कूल खोल रहे हैं। ग्रामीण अंचलों में शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तन तो अवश्य हुआ है, लेकिन इस विषय का एक दुखद पहलू भी रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित बहुत से शिक्षण संस्थानों के क्रियाकलाप संदिग्ध रहे हैं। कुछ विसंगतियों के बावजूद यह तो मानना होगा कि आज गांवों में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है और पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में ग्रामीण छात्र अपना कौशल दिखा रहे हैं। पहले गांव को मिट्टी के कच्चे मकानों और झोपड़ियों का पर्याय माना जाता था। लेकिन आज गांवों में ईंट और सीमेंट के पक्के मकान मौजूद हैं। पहले गांवों में मिट्टी के घर वातानुकूलित कमरों की तरह कार्य करते थे। मिट्टी से निर्मित होने के कारण ये मकान जेठ की तपती धूप में भी शीतलता प्रदान करते थे। गांव के बड़े–बूढ़ों को तो आज भी गर्मी में ठंडक प्रदान करने वाले मिट्टी से निर्मित घर ही पसंद हैं। आज गांवों में एक वर्ग तो ऐसा है, जिनके घरों में सुख–सुविधाओं के लगभग सभी साधन मौजूद हैं। अब ग्रामीणों के पास परिवहन के सभी आधुनिकतम साधन जैसे स्कूटर, मोटरसाइकिल और कारें उपलब्ध हैं। पहले गांव की गलियों से अगर कोई कार गुजर जाती थी तो उसे देखने के लिए बच्चों की भीड़ जुट जाती थी लेकिन आज गांवों में परिवहन के ये आधुनिकतम साधन किसी आश्चर्य के रूप में नहीं देखे जाते हैं।

बिलाते पारंपरिक खेल : आज भी गांवों में प्राचीन परंपरागत खेल जिंदा हैं, लेकिन बदलते समय के अनुसार इन खेलों का प्रभाव कम होता जा रहा है। अब ग्रामीण बच्चों और युवकों पर भी क्रिकेट का नशा सवार है। जैसे गांव के चुन्नू और मुन्नू को अब भी गिल्ली–डंडा पसंद है वैसे ही ग्रामीण युवकों की ऊधम मचाती एक टोली को वॉलीबाल और कबड्डी जैसे खेल ही पसंद हैं। खैर, ऊधम मचाती टोली वॉलीबाल और कबड्डी खेले या फिर चुन्नू–मुन्नू गिल्ली–डंडा, गांव के अन्य बच्चों और युवकों पर इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ना है। आज गांव क्रिकेटमय जो है, सो उन्हें तो क्रिकेट ही खेलना है। गांव का किसान खेत में काम कर रहा है, लेकिन वह अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट मैच का स्कोर जानने को उत्सुक है। आज गांव के लोग अपने पहनावे को लेकर भी जागरूक हैं। आज ग्रामीण पीढ़ी नए फैशन को अपना रही है। उसमें ठीक ढंग से कपड़े पहनने के प्रति एक नई समझ विकसित हुई है। पहले गांव का वातावरण स्वच्छ था, क्योंकि दूर–दूर तक कारखाने नहीं थे। आज उद्योगीकरण के चलते जंगलों और खेतों में बड़ी संख्या में कारखाने स्थापित हो रहे हैं। फलस्वरूप गांव का वातावरण भी अब पहले जैसा स्वच्छ नहीं रहा। व्यावसायिकता और आपाधापी के इस दौर में शांति का पर्याय माने जाने वाले गांवों में भी विभिन्न अपराधों ने अपने पैर पसार लिए हैं। ग्रामीण अंचलों में विभिन्न आपराधिक गतिविधियों में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। ग्रामीणों का कहना है कि पहले उन्हें कोई डर नहीं था। वे मात्र जंगली जानवरों से डरते थे। लेकिन आज गांवों में भी आदमी को आदमी से डर लगने लगा है।

आधुनिकता का आलम : पहले किसान खेती के लिए पुरानी तकनीक और पुराने औजारों का ही प्रयोग करते थे। लेकिन आज किसान नवीनतम तकनीक और औजारों को अपना रहे हैं। वे कृषि के क्षेत्र में दिन पर दिन हो रहे नवीनतम शोध कार्यों से भी भली–भांति परिचित हैं और आवश्यकता पड़ने पर इन्हें अपना भी रहे हैं। इस सभी कारणों से आज फसल की पैदावार में पहले ही अपेक्षा बढ़ोतरी हुई है। आज किसानों के पास नई–नई नस्लों की गाय और भैंसें मौजूद हैं, जो अधिक दूध तो देती ही हैं, साथ ही इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता भी अधिक है। आज किसानों को पेड़–पौधों पशुओं से संबंधित विभिन्न रोगों की जानकारी भी है, जिससे वे समय रहते इनका उपचार करा सकते हैं। पहले विभिन्न खतरनाक रोगों से गांव के गांव ही समाप्त हो जाते थे। लेकिन चिकित्सा विज्ञान में हुई अभूतपूर्व क्रांति एवं ग्रामीणों में अपने स्वास्थ्य के प्रति

बढ़ती जागरूकता से ग्रामीणों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार हुआ है। हालांकि ग्रामीण अंचलों में स्थापित प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों पर डॉक्टरों के मौजूद न रहने की शिकायतें भी लगातार मिलती रहती हैं। आज लगभग हर गांव में बिजली पहुंच चुकी है, लेकिन बिजली की स्थिति दयनीय है। गत वर्षों में हुई संचार क्रांति के चलते लगभग हर ग्रामीण के पास मोबाइल भी उपलब्ध हैं। ग्रामीण अंचलों में विभिन्न बैंक भी लगातार अपनी शाखाएं खोल रहे हैं। आज गांव लगातार विकास की ओर अग्रसर हैं। लेकिन ग्रामीण बुजुर्गों को गांवों का यह विकास नहीं भा रहा है। गांव के बुजुर्गों का कहना है– 'पहले गांव आज से बेहतर थे। कम से कम लोगों की आंखों में शर्म तो थी, छोटे–बड़े का लिहाज भी था। लेकिन आज ऐसा कुछ नहीं है। हर किसी को मात्र अपना खयाल है। गांव के विकास ने हमारी शांति ही भंग कर दी है।'हालांकि इस बात में कोई शक नहीं है कि आज गांव लगातार विकास की ओर अग्रसर हैं, लेकिन इस विकास में दिल को सुकून देने वाली बहुत–सी चीजें पीछे छूट गई हैं। आज गांव और शहर के बीच की दूरी सिमटती जा रही है। लेकिन गांव में आदमी की आदमी से दूरी बढ़ती जा रही है। गांव की ठंडी हवा के झोंके अब गर्म हो चले हैं। हालांकि इतना सब कुछ बदलने के बाद शहरों की अपेक्षा गांव आज भी सुकून देते हैं। गांवों में अब भी बहुत कुछ शेष है। गांव का विकास एक सुखद अनुभूति है। लेकिन हमें कोशिश करनी होगी कि विकास की प्रक्रिया में गांवों की आत्मा नष्ट न होने पाए, तभी गांव से जुड़ी सुखद अनुभूतियां जिंदा रह पाएंगीं।

सन्दर्भ–सूची :–

1. "भारतीय गाँवः आधुनिकीकरण और उपयोगिता" – नरेन्द्र देव।
2. "भारतीय गाँव : विकास और विपरीतता" – विनोद चौहान।
3. "गाँव के उत्थान में सहयोगिताः भारतीय गाँव का समग्र विकास" – रामकृष्ण दास।
4. "गाँव के बदलते स्वरः भारतीय गाँव का समग्र विकास" – संजय गुप्ता।
5. "भारतीय गाँवों का नया चेहराः सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन" – मनोहर सिंह।
6. "Rural Development: Putting the Last First" by Robert Chambers.
7. "The Village in India" by T.N. Madan..
8. "Rural Development: Principles, Policies and Management" by Mahesh Chandra Chaturvedi.
9. "Village Life in India: Past Present and Future" by Rama Nath Sharma.
10. "Rural Development: Learning from China" edited by A. Vaidyanathan.

ॐ★ॐ

भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास का मूल्यांकन

जीवण सिहं किशनावत*

सारांश : ग्रामीण भारत में ऋणग्रस्तता का बोझ असाधारण रूप से बहुत अधिक है। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में वितीय संस्थानों और ग्रामीण ऋण के रूपों में बड़े संरचनात्मक परिवर्तनों के बावजूद भी ऋण सुविधा के नाम पर ग्रामीण जनता का शोषण ग्रामीण भारत की सबसे व्यापक समस्याओं में से एक है। इस पेपर का उद्देश्य क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास स्वरूप का आकलन करना है, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के शाखा विस्तार और सीडी अनुपात की जांच करना। अध्ययन की विश्लेषण अवधि प्रारंभ (1975) से अब तक (2023) है।

भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समग्र स्थिति काफी संतोषजनक नहीं है। खराब ऋण–जमा अनुपात अभी भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के काम–काज पर असर डाल रहा है। चूंकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को गरीब लोगों के लिए बैंक माना जाता है, इसलिए देश के सभी राज्यों में विशेष रूप से अविकसित राज्यों में इसकी उपस्थिति चीजों को बेहतर बना सकती है। सरकार को वास्तव में जरूरतमंद ग्रामीण लोगों को ऐसी बैंकिंग सेवा प्रदान करने के लिए जमीनी स्तर पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं का प्रसार करना चाहिए। इसके अलावा यह बैंक प्रबंधन और प्रायोजित बैंक की जिम्मेदारी है कि वे बैंक के ऋण–जमा अनुपात को बढ़ाने के लिए सुधारात्मक उपाय करें जो ग्रामीण भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को प्रासंगिक बना सके।

मुख्य शब्दः क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, शाखा विस्तार, ऋण–जमा अनुपात, प्रायोजित बैंक,

परिचय : भारत में नीति–निर्माताओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे ग्रामीण विकास कार्यक्रम ग्रामीण लोगों के विशिष्ट समूहों के जीवन स्तर में सुधार के लिए रणनीतिक रूप से तैयार करे। इसमें छोटे और सीमांत किसान, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, कारीगर वर्ग और सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी जातियां और वर्ग शामिल हैं। ग्रामीण विकास रणनीति और कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए ऋण सबसे जरूरी पहलुओं में से एक है और इसी कारण से अंतर्निहित उद्देश्य का निर्वहन करने के लिए भारत सरकार द्वारा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई थी। साथ ही यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि ग्रामीण भारत में ऋणग्रस्तता का बोझ असाधारण रूप से बहुत अधिक है। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में ऋण संस्थानों और ग्रामीण ऋण के रूपों में बड़े संरचनात्मक परिवर्तनों के बावजूद ऋण सुविधा के नाम पर ग्रामीण जनता का शोषण ग्रामीण भारत की सबसे व्यापक विशेषताओं में से एक है। ऐतिहासिक रूप से ग्रामीण भारत को ऋण की आपूर्ति के संबंध में चार प्रमुख समस्याएं रही हैं। पहली ग्रामीण लोगों को कुल ऋण की आपूर्ति अपर्याप्त रही है। दूसरी भारत में ग्रामीण ऋण बाजार स्वयं बहुत अपूर्ण और खंडित रहे हैं। तीसरी ऋण का वितरण असमान रहा है, विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों में पिछड़े क्षेत्रों, गरीब परिवारों, और जनजातियों के लोगों और महिलाओं तक पहुंचने में असफल रहे है। चौथी ग्रामीण परिवारों विशेष रूप से आय में कमी वाले कामकाजी परिवारों के लिए ऋण का प्रमुख स्त्रोत अनौपचारिक क्षेत्र रहा है। अनौपचारिक क्षेत्र के ऋण आमतौर पर बहुत अधिक ब्याज दरों पर दिए जाते हैं। इसके अलावा इन ऋणों से जुड़े नियमों और शर्तों ने ग्रामीण इलाकों में अतिरिक्त–आर्थिक भार की एक विस्तृत संरचना को जन्म दिया है।

इन ग्रामीण समस्याओं को देखते हुए स्वतंत्रता के बाद की अवधि में ग्रामीण ऋण के संबंध में यह सुनिश्चित करना कि उचित ब्याज दरों पर पर्याप्त और समय पर ऋण ग्रामीण आबादी के अधिक से अधिक हिस्से को उपलब्ध कराया जाए, इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नीतिगत उपकरणो का सबसे पहले औपचारिक क्षेत्र के ऋण संस्थानों की संस्थागत संरचना का विस्तार करना है। दूसरा निर्देशित उधार और

***शौधार्थी, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविध्यालय, अजमेर–राजस्थान।**

तीसरा रियायती दर या रियायती ऋण। इस प्रकार नीतिगत पहल का उद्देश्य न केवल ग्रामीण ऋण जरूरतों को पूरा करना है बल्कि भारत में ग्रामीण ऋण नीति में ग्रामीण परिवारों को दीर्घकालिक और अल्पकालिक ऋण ऋण सहित कई प्रकार की ऋण सेवाओं के प्रावधान की परिकल्पना की गई थी।

बैंकिंग आयोग–1972 ने ग्रामीण ऋण के लिए एक वैकल्पिक संस्था की स्थापना की सिफारिश की और अंततः भारत सरकार ने वर्ष 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को जन्म देने वाले श्री एम नरसिंहम की अध्यक्षता में कार्य समूह की सिफारिश के आधार पर मूल रूप से ग्रामीण ऋण के लिए एक अलग संस्था के रुप में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की।

प्रारंभ में पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 2 अक्टूबर 1975 को राष्ट्रपति के अध्यादेश के तहत स्थापित किए गए थे, जिसके बाद अप्रैल 1976 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम लागू हुआ था। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम–1934 के तहत अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के रूप में पहचाना गया है और वे बैंकिंग विनियमन अधिनियम–1949 में परिभाषित बैंकिंग व्यवसाय करने के लिए अधिकृत हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की आवश्यकता विशेष रूप से ग्रामीण समाज के गरीब वर्गों को ऋण सुविधाएं प्रदान करने के व्यवसाय के तहत किया गया था जिसे आमतौर पर लक्ष्य समूह के रूप में संदर्भित किया जाता है। पहले पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, राजस्थान राज्यों में स्थापित किए गए थे, जिनमें से उत्तर प्रदेश में दो व अन्य एक–एक थे जो विभिन्न वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्रायोजित थे। ये बैंक चार राज्यों के 11 जिलों को कवर करते थे। पहले पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को तालिका–1 में दिखाया गया है:–

सारणीः 1 – भारत में पहले पांच क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

क्र.सं.	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का नाम	प्रायोजक बैंक	राज्य बैंक
1	प्रथम बैंक	सिंडिकेट बैंक	उत्तर प्रदेश
2	गोरखपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	स्टेट बैंक ऑफ इंडिया	उत्तर प्रदेश
3	हरियाणा कृषि ग्रामीण बैंक	पंजाब नेशनल बैंक	हरियाणा
4	गौर ग्रामीण बैंक	यूनाइटेड बैंक ओएफ इंडिया	पश्चिम बंगाल
5	जयपुर एण्ड नागौर आंचलिक ग्रामीण बैंक	यूनाइटेड कमर्शियल बैंक	राजस्थान

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के बाद बड़े पैमाने पर ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने व ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग और अन्य उत्पादक गतिविधियों के विकास के उद्देश्य के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करने और विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों, कृषि श्रमिकों, कारीगरों और लघु उद्यमियों को ऋण और अन्य वितीय सुविधाएं प्रदान करने में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको ने सकारात्मक भूमिका निभाई है।

साहित्य की समीक्षा : संदर्भाधीन क्षेत्र में उपलब्ध साहित्य प्रकृति और दायरे में बहुत सीमित है। केंद्र सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा स्थापित समितियों/आयोगों के कार्य समूहों की रिपोर्टों, शोधकर्ताओं/बैंक अधिकारियों/अर्थशास्त्रियों के शोध अध्ययनों/लेखों और आर्थिक विश्लेषकों की टिप्पणियों और समाचारों के रूप में जांच द्वारा प्राप्त साहित्य की समीक्षा यहां की गई है–

पटेल और शेटे (1980), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन और संभावनाओं का एक मूल्यवान विश्लेषण किया। उन्होंने एक निर्दिष्ट क्षेत्र में सहकारी बैंकों, वाणिज्यिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के जमा, शाखा विस्तार और ऋण तैनाती में प्रदर्शन की तुलनात्मक तस्वीर भी दी।

फाइनेंशियल एक्सप्रेस (1986), ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की व्यवहार्यता पर एक अध्ययन प्रकाशित किया था, जिसे नाबार्ड की ओर से 1986 में कृषि वित्त निगम द्वारा आयोजित किया गया था। अध्ययन से पता चला कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की व्यवहार्यता अनिवार्य रूप से निधि प्रबंधन रणनीति, संसाधनों की गतिशीलता और

उनके नियोजन के बीच मार्जिन और अग्रिमों के साथ वर्तमान और भावी लागतों पर प्रयोग किए जाने वाले नियंत्रण पर निर्भर थी।

कालकुंड्रिकर (1990), ने कर्नाटक में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन और विकास पर अपने अध्ययन में पाया कि इन बैंकों ने लाभार्थियों को उनकी आय, उत्पादकता, रोजगार और आधुनिक प्रथाओं के उपयोग और ग्रामीण कारीगरों के पुनर्वास में लाभान्वित किया था

ए.के. जय प्रकाश (1996), ने आर्थिक विकास में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका का विश्लेषण करने के उद्देश्य से एक अध्ययन किया और खुलासा किया कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ग्रामीण विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसके अलावा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में ग्रामीण उधारकर्ताओं को ऋण के वितरण में अधिक कुशल थे।

पल्लवी चव्हाण (2004), ने 1975–2002 की अवधि में ग्रामीण बैंकिंग के विकास और क्षेत्रीय वितरण की जांच की है। चव्हाण के दस्तावेज में सामाजिक और विकास बैंकिंग की अवधि के दौरान पूर्व, उत्तर–पूर्व और मध्य भारत के वंचित क्षेत्रों द्वारा किए गए लाभ का दस्तावेजीकरण किया गया है।

मिश्रा (2006), ने भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन का विश्लेषण करने के उद्देश्य से एक अध्ययन किया। अध्ययन में अध्ययन के अंतिम वर्ष से पिछले तीन वर्षों से लगातार लाभ कमाने के आधार पर लाभ अजत करने वाले क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों पर विचार किया गया है। उन्होंने कहा कि 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में से केवल 150 लाभ कमाने वाली श्रेणी में हैं और शेष 46 घाटे में चल रहे हैं।

अनिल कुमार सोनी और अभय कुमार कापरे (2012), ने "भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन का मूल्यांकन" पर एक अध्ययन किया जिसने 2006–07 से 2010– 2011 की अवधि के दौरान भारत में आरआरबी के वित्तीय प्रदर्शन का विश्लेषण किया। यह अध्ययन नैदानिक और अन्वेषणात्मक प्रकृति का है और उन्होंने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या, शाखाओं की संख्या, जमा, ऋण और अग्रिम जैसे विभिन्न प्रमुख प्रदर्शन संकेतकों का उपयोग करके प्रदर्शन का विश्लेषण किया। वर्ष 2007 से 2012 तक की पांच वर्षों की अवधि के लिए नाबार्ड और भारतीय रिजर्व बैंक की वाषक रिपोर्टों से गौण आंकड़े एकत्र किए गए थे और उन्होंने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के निष्पादन पर सकारात्मक प्रभाव डाला था।

खान और अंसारी (2015) ने 2012–15 की अवधि में शाखा विस्तार, जमा, संचित घाटे, निवेश और लाभ की प्रवृत्ति जैसे कुछ प्रमुख प्रदर्शन संकेतकों के आधार पर आरआरबी के वित्तीय प्रदर्शन की जांच की है। उनके अध्ययन में पाया गया कि कुल मिलाकर निवेश में गिरावट और 5 आरआरबी द्वारा किए गए नुकसान के बावजूद उल्लेखनीय विकास हुआ है।

कुमार, मेहता और मलिक (2019), ने अपने पेपर में सीडी अनुपात और निवेश–जमा अनुपात में वृद्धि के संबंध में भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के सकारात्मक प्रदर्शन को देखा। अध्ययन में यह भी पाया गया कि इस अवधि के दौरान कृषि और गैर–कृषि के लिए बकाया ऋण में वृद्धि हुई।

अहमद नासिर (2020) ने "क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकिंगः विकास और प्रदर्शन" पर लेख का अध्ययन किया। यह अध्ययन नाबार्ड और भारतीय रिजर्व बैंक की रिपोर्टों से एकत्र किए गए गौण आंकड़ों पर आधारित है। बैंकों और शाखाओं की संख्या, कवर किए गए जिलों की संख्या, बैंकों और उनकी शाखाओं की विकास दर, जमा, अग्रिम और विकास दर सूचकांक जैसे प्रमुख प्रदर्शन संकेतकों का एक विश्लेषणात्मक अनुसंधान डिजाइन इस अध्ययन में एक प्रमुख सांख्यिकीय उपकरण है। अध्ययन में पाया गया और निष्कर्ष निकाला गया कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के वित्तीय प्रदर्शन में काफी सुधार हुआ है।

नंदिनी, बोसु और पतिजोशी (2021) ने भारत में ग्रामीण बैंकिंग के विकास और प्रदर्शन का विश्लेषण किया। 2008–09 से 2017–18 की अवधि के लिए माध्यमिक स्रोतों से डेटा एकत्र किया गया था। अध्ययन के उद्देश्य के लिए शोधन क्षमता अनुपात और लाभप्रदता अनुपात की गणना की गई थी। अध्ययन से पता

चलता है कि शाखा विस्तार की बढ़ती प्रवृत्ति के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रयोजनों के लिए ऋण की मांग में वृद्धि हुई है।

अध्ययन के उद्देश्य : वर्तमान अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ किया गया है–

1. अध्ययन का मुख्य उद्देश्य भारत के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास का मूल्यांकन करना है।
2. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास पैटर्न का आकलन करना,
3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के ऋण वितरण की जांच करना,

समंको की प्रकृति और स्रोत : वर्तमान अध्ययन विश्लेषणात्मक खोजपूर्ण प्रकृति का है और द्वितीयक डेटा का उपयोग किया गया है। प्रासंगिक द्वितीयक आंकड़े राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) तथा भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के प्रकाशनों और संबंधित बैंकों की वार्षिक रिपोर्टों जर्नल, पत्रिकाओ से एकत्र किये गये हैं।

संदर्भ अवधि : यह अध्ययन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तक सीमित है, जिसमें भारत में कार्यरत वर्तमान 43 बैंक शामिल हैं। विश्लेषण के लिए वर्तमान अध्ययन सरल तालिकाओं, अनुपात समंको का उपयोग करता है जो स्थापना (1975) से वर्तमान (2023) तक कि अवधि से सम्बधित है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का संरचनात्मक विकास : 1975 में अपनी स्थापना के बाद से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक संरचनात्मक रुप में तेजी से बढ़े हैं। पांच बैंकों के साथ 17 शाखाओं के साथ पांच राज्यों के 11 जिलों को कवर करने के साथ एक मामूली शुरुआत से 2023 की स्थिति के अनुसार 21995 के शाखा नेटवर्क के साथ 26 राज्यों के 703 जिलों में 43 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक काम कर रहे हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का ग्रामीण शाखा नेटवर्क भारत में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के कुल शाखा नेटवर्क से कम है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रो के लिए पर्याप्त हैं। 1975 से 2023 तक संरचना के संदर्भ में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की वृद्धि तालिका 2 में दी गई है। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि प्रत्येक क्रमिक वर्ष में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या, कवर किए गए जिले और शाखाओं की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई हैं।

तालिका –2 भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का विकास

वर्ष	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या	शाखाओं की संख्या	कवर किए गए जिले
1975	6	17	12
1976	40	489	84
1977	48	1187	99
1978	51	1753	102
1979	60	2420	111
1980	85	3279	144
1981	107	4795	182
1982	124	6191	214
1983	150	7795	265
1984	173	10245	307
1985	188	12606	333
1986	194	12838	351
1987	196	13353	363
1988	196	13920	369
1989	196	14079	369
1990	196	14443	372
1991	196	14527	381
1992	196	14539	392
1993	196	14543	398

1994	196	14542	408
1995	196	14509	425
1996	196	14497	427
1997	196	14461	427
1998	196	14475	451
1999	196	14499	454
2000	196	14301	457
2001	196	14468	476
2002	196	14486	487
2003	196	14462	495
2004	196	14484	518
2005	196	14433	523
2006	133	14494	525
2007	96	14520	534
2008	91	14761	594
2009	86	15181	616
2010	82	15480	619
2011	82	16001	620
2012	82	16909	638
2013	64	17861	635
2014	57	19028	642
2015	56	19472	635
2016	56	20416	644
2017	56	21251	680
2018	45	21,805	683
2019	53	21,871	648
2020	45	21,847	685
2021	43	21,856	696
2022	43	21,951	703
2023	43	21995	703
स्त्रोत– नाबार्ड, आरबीआई वार्षिक प्रतिवेदन रिपोर्ट			

इस प्रकार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों कि स्थापना के 5 साल बीत जाने के बाद 1980 के अंत तक 144 जिलों को कवर करने वाली 3279 शाखाओं के साथ 85 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक चल रहे थे। 1987 से 2005 तक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या स्थिर है लेकिन 2005 तक शाखाओं की संख्या बढ़कर 14433 हो गई है और कवर किए गए जिलों की संख्या भी बढ़ाकर 523 हो गयी। यह संख्या समामेलन कि प्रक्रिया के परिणामस्वरुप वर्ष 2023 में 703 जिलों को कवर करने वाली 21995 शाखाओं के साथ 43 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक पहुच गयी।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संकल्पना ग्रामीण क्षेत्रों में लक्षित गरीब लोगों को कृषि, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग और अन्य उत्पादक कार्यकलापों के विकास के उद्देश्य से ऋण और अन्य सुविधाएं प्रदान करके ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए की गई थी। तथापि नब्बे के दशक के प्रारंभ में वित्तीय क्षेत्र सुधारों के आगमन के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को ग्रामीण गैर–लक्षित समूह को भी सीमित सीमा तक ऋण सुविधाएं प्रदान करने की अनुमति दी गई थी।

व्यावसायिक प्रदर्शन और ऋण वितरण : क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के जन्म के बाद से विकास की प्रवृत्ति के विश्लेषण के साथ–साथ जमा संग्रहण और ऋण विस्तार के संदर्भ में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के व्यवसाय

प्रदर्शन को भी तालिका 3 में प्रस्तुत किया गया है। बैंक ने 1975 में अपनी स्थापना के प्रारंभिक वर्ष में 50 प्रतिशत ऋण–जमा अनुपात के साथ 0.20 करोड़ रुपये की कुल जमा राशि जुटाई और 0.10 करोड़ रुपये का अग्रिम दिया, जो वर्ष 2005 में बढ़कर 62143 करोड़ रुपये की कुल जमा राशि और 32870 करोड़ रुपये का अग्रिम हो गया,

चार दशकों के संचालन के दौरान भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने वर्ष 2023 में बढ़कर 608509 करोड़ रुपये की कुल जमा राशि और 410738 करोड़ रुपये का अग्रिम जुटाने और ऋण के संवितरण में महत्वपूर्ण वृद्धि दर्ज की है। ऋण–जमा अनुपात के संदर्भ में 1975 में 50 प्रतिशत से बढ़कर 1978 में 165 प्रतिशत हो गया। लेकिन उसके बाद इसमें गिरावट का रुख दिखाई देता है, जो 2005 में घटकर 53 प्रतिशत हो गया। कुछ सुधारात्मक परिणामों के स्वरूप वर्ष 2023 में ऋण–जमा अनुपात 67 प्रतिशत हो गया। जिससे ऋण–जमा अनुपात में कुछ मात्रा में सुधार दृष्टिगत हो रहे हैं।

ऋण–जमा अनुपात की प्रवृत्ति दर्शाती है कि उदारीकरण से पहले भारतीय अर्थव्यवस्था में तीव्र वृद्धि हुई थी लेकिन 1987 के बाद इसमें गिरावट की प्रवृत्ति थी जिसमें वर्ष 2005 से मामूली वृद्धि दर्ज हुई। हालांकि वर्ष 2023 में 67 प्रतिशत ऋण–जमा अनुपात से सकारात्मक सुधार दृष्टिगत हो रहे हैं।

तालिका 3: आरआरबी के जमा, ऋण और सी.डी. अनुपात में वृद्धि

वर्ष	कुल जमा	कुल अग्रिम	ऋण–जमा अनुपात (%)
1975	0.2	0.1	50
1976	0.72	7.02	91
1977	33.04	42.35	128
1978	74011	122.02	165
1979	123.22	167.41	136
1980	199.83	243.38	122
1981	336	406.59	121
1982	502.26	577.11	115
1983	677.85	750.84	111
1984	959.97	1080.77	113
1985	1285.82	1407.67	109
1986	1714.94	1784.84	104
1987	2305.82	2232.26	97
1988	2965.88	2804.29	95
1989	3118.58	2918.25	94
1990	4150.52	3554.04	86
1991	4989.24	3535.35	72
1992	5867.83	4090.86	70
1993	6938.14	4626.79	67
1994	8826.51	5253.02	60
1995	11150.01	6290.97	56
1996	14187.9	7505.03	53
1997	17970.18	8711.82	48
1998	22189.23	9860.81	44
1999	27065.74	11355.85	42
2000	32204	13184	41
2001	38278	15815	41
2002	44539	18598	42

2003	48346	21755.7	45
2004	57010	25483.47	46
2005	62143	31817	53
2006	71328	39712	56
2007	83143	48492	58
2008	99,093	58,984	60
2009	1,20,189	67,802	56
2010	1,45,035	82,819	57
2011	1,66,232	98,917	60
2012	1,86,336	1,16,385	62
2013	2,11,488	1,37,078	65
2014	2,39,504	1,59,660	67
2015	2,73,018	1,80,955	66
2016	3,13,499	2,06,538	66
2017	3,71,910	2,26,175	67
2018	4,00,459	2,53,978	63
2019	4,34,444	2,80,755	65
2020	4,78,737	2,98,214	62
2021	5,25,226	3,34,171	64
2022	5,62,538	3,62,838	64
2023	6,08,509	4,10,738	67
स्रोतः प्रमुख सांख्यिकी, नाबार्ड, मुंबई			

तालिका 3 से यह देखा गया कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने अपने अस्तित्व के 48 वर्षों के दौरान जमा जुटाने और ग्रामीण लोगों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के मामले में एक सराहनीय प्रगति हासिल की है। लेकिन बैंकों को ग्रामीण लोगों को और अधिक ऋण देने के प्रयास करने होंगे।

निष्कर्ष और सुझाव :– संदर्भ और अनुप्रयोगों के आधार पर प्रदर्शन के अलग–अलग अर्थ हो सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों द्वारा निष्पादित की जा रही विभिन्न गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए, उनके प्रदर्शन का कोई भी मूल्यांकन इसके अंतर्निहित उद्देश्यों के साथ सार्थक हो सकता है। वर्तमान अध्ययन में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के प्रदर्शन के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के विकास पैटर्न जैसे कुछ परिभाषित, मापदंडों के संदर्भ में प्रयास किया गया है। भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के स्थापना तक हजारों कि संख्या में वाणिज्यिक बैंकों और सहकारी बैंकों की शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रही थीं। लेकिन बैंक शाखाओं के इतने बड़े नेटवर्क के बावजूद भी ग्रामीण भारत की ऋण आवश्यकताएं काफी हद तक अपर्याप्त थीं। वाणिज्यिक बैंकिंग नेटवर्क के एक घटक के रूप में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने बैंकों और इसकी शाखाओं की संख्या के संदर्भ में जबरदस्त वृद्धि हासिल की है। इसने 26 राज्यों के 703 जिलों को कवर करते हुए देश के हर नुक्कड़ और कोने में अपनी सेवा का विस्तार किया है। 26 राज्यों में से उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हैं, इसके बाद मध्य प्रदेश हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अभी दिल्ली, गोवा, सिक्किम और सभी केंद्र शासित प्रदेशों में अपनी गतिविधियां नहीं कर पाए हैं। इसके अलावा भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समग्र स्थिति काफी उत्साहजनक नहीं है। खराब ऋण–जमा अनुपात अभी भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के वांछित कामकाज पर बड़ा सेंध लगा रहा है। चूंकि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक गरीब लोगों के लिए एक बैंक है, इसलिए देश के सभी राज्यों में विशेष रूप से अविकसित राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में इसकी उपस्थिति दृढ़ता से महसूस की जाती है। सरकार को ग्रामीण भारत में जरूरतमंद लोगों को बैंकिंग और ऋण सेवा प्रदान करने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं को जमीनी स्तर तक फैलाना चाहिए। इसके अलावा प्रायोजित बैंक की जिम्मेदारी है कि वे बैंक के ऋण–जमा अनुपात को बढ़ाने के लिए सुधारात्मक पहल करें। वाणिज्यिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के ऋण–जमा अनुपात के बीच अंतर को कम करने की

आवश्यकता है, जिससे ग्रामीण बैंक अपने लक्षित उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हो सके। इस हेतु भारत सरकार, राज्य सरकार और प्रायोजित बैंकों द्वारा उचित समय पर विभिन्न प्रकार की सुधारात्मक योजनाओं व अनुदान योजनाओं का क्रियान्वयन करके विभिन्न ऋण वितरण योजनाओं व नीतियों को लागू करके सरल ऋण वितरण व जमा संग्रहण नीतियों को लागू करके क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को ग्रामीण विकास के संदर्भ में ग्रामीण ऋण वितरण एवं जमा संग्रहण व ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान को सफल बनाया जा सकता है। प्रस्तुत समंको के अध्ययन करने के पश्चात निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ग्रामीण बैंको द्वारा ग्रामीण क्षेत्रीय शाखा विस्तार प्रक्रिया में सकारात्मक पहल की है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण वितरण और जमा संग्रहण के क्षेत्र में भी सकारात्मक विकास किया है। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अपनी स्थापना के उद्देश्य में सफल रहे हैं। हालांकि अभी भी इनमें कुछ आधारभूत सुधारों की आवश्यकता है। जिसे हेतु प्रयोजित बैंक एवं राज्य एवं केंद्र सरकार से सहयोग आवश्यक है।

संदर्भ–सूची :–

1. अग्रवाल, बी.पी. भारत में वाणिज्यिक बैंक, शास्त्रीय प्रकाशन कंपनी, नई दिल्ली।
2. अग्रवाल, आर.के. 1991 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कामकाज का मूल्यांकन, मित्तल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. अहमद, आर.1998 ग्रामीण बैंकिंग और आर्थिक विकास, मित्तल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. अंसारी, एमडी ए. 1988. पूर्वी उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का कार्य, अनमोल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. बैंकिंग सांख्यिकी, त्रैमासिक हैंड आउट, 1997 से 2004 तक।
6. ढींगरा, आईसी 1992। भारत में ग्रामीण बैंकिंग, सुल्तान चंद एंड संस। नई दिल्ली।
7. फाइनेंशियल एक्सप्रेस 24 अप्रैल, 1986
8. कलकुंड्रिकर, एबी (1990), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और आर्थिक विकास (दिल्ली) दया पब्लिशिंग हाउस।
9. कुमार राज "हरियाणा में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का विकास और प्रदर्शन" 1993, अनमोल प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. नाबार्ड (राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक), 2000। "भारत में सूक्ष्म वित्त के लिए सहायक नीति और नियामक ढांचे पर टास्क फोर्स, सारांश और सिफारिशें" www.nabard.org/what/what-htm
11. नायडू। एल.के. (1988), "ग्रामीण कारीगरों के लिए बैंक वित्त" (नई दिल्ली) आशीष पब्लिशिंग हाउसिंग।
12. पटेल केवी और शेटे, एनबी "क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों प्रदर्शन और प्रॉस्पेक्टस," प्रजनन, जनवरीमार्च 1980 पीपी 1–40।
13. रामचंद्रन, वीके और स्वामीनाथन, मधुरा (2002), "रूरल बैंकिंग एंड लैंडलेस लेबर हाउसहोल्ड्स, इंस्टीट्यूशनल रिफॉर्म एंड रूरल क्रेडिट मार्केट्स इन इंडिया," जर्नल ऑफ एग्रेरियन चेंज, 2, 4, अक्टूबर, पीपी 502–544।
14. भारतीय रिजर्व बैंक, भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति पर रिपोर्ट, 1997 से 2002।
15. बैंकों के अंतिम लेखाओं पर विचार करने के लिए घोष समिति की रिपोर्ट, भारतीय रिजर्व बैंक प्रकाशन, मुम्बई।
16. भारत में कृषि ऋण प्रणाली की समीक्षा के लिए खुसरो समिति की रिपोर्ट, भारतीय रिजर्व बैंक प्रकाशन, मुंबई।
17. वित्तीय प्रणाली पर नरसिम्हम समिति (1) की रिपोर्ट, नाभी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993।
18. बैंकिंग क्षेत्र सुधार पर नरसिम्हम समिति (2) की रिपोर्ट, नाभी प्रकाशन, नई दिल्ली।
19. कंसोर्टियम व्यवस्था के तहत ऋण देने की प्रणाली की समीक्षा के लिए शेट्टी समिति की रिपोर्ट, आरबीआई प्रकाशन, मुंबई, 1992।
20. भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई), 1991। वित्तीय प्रणाली संबंधी समिति का प्रतिवेदन (जिसकी अध्यक्षता एम. नरसिम्हन ने की) बॉम्बेः भारतीय रिजर्व बैंक।
21. सिन्हा रॉय, बीपी 1994, पश्चिम बंगाल में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, मित्तल प्रकाशन, नई दिल्ली।
22. भारत में बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय तालिकाएं, 2004–05।

मनरेगा की क्रियान्वयन की स्थिति का अध्ययन

ओम प्रकाश सिंह राजपूत*
डॉ. स्नेह कुमार मेश्राम**

शोध सारांश – भारत गाँवों का देश है। भारत में कुल जनसंख्या की 68.847% आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है (भारत की जनगणना, 2011)। परिणामस्वरूप, इन ग्रामीण आबादी की विशेषता व्यापक गरीबी, निम्न साक्षरता और निम्न आय स्तर, उच्च बेरोजगारी और खराब आहार पोषण और खराब स्वास्थ्य स्थिति है। इन समस्याओं के समाधान हेतु इन ग्रामीण लोगों के जीवन की गुणवत्ता में विशेष सुधार के अवसर प्रदान करने के लिए भारत सरकार व राज्य सरकार के द्वारा विभिन्न प्रकार के ग्रामीण विकास योजनाएं लागू किए जा रहे हैं यह एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है जो ग्रामीण व्यक्ति, विशेषकर गरीबों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु मील का पत्थर साबित हो सकता है। ग्रामीण विकास योजनाओं का उद्देश्य गरीबी और बेरोजगारी को कम कर, स्वास्थ्य और शिक्षा में उत्तम सुधार करना और ग्रामवासियों को रोटी, कपडा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों को पूरा करना है। साथ ही साथ उन्हें रोजगार व कौशल विकास योजनाओं के साथ जोड़ कर उन्हें आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से उन्नत बनाने का प्रयास करना है। इन योजनाओं मे मुख्यतः महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), राष्ट्रीय स्वस्थ्य बीमा योजना (आरएसवीवाई), इंदिरा आवास योजना (आईएवाई), संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (एसजीआरवाई), एकीकृत जनजातीय विकास परियोजना (आईटीडीपी), और प्रधान मंत्री ग्राम सड़क योजना सभी ग्रामीण लोगों की स्थिति (पीएमजीएसवाई) में सुधार के लिए भारत के योजना आयोग के माध्यम से भारत सरकार द्वारा शुरू की गई थी। इन विभिन्न योजनाओं मे ग्रामीण परिवेश में रोजगार प्रदान करने हेतु मनरेगा महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA) लागू की गयी है। दुर्ग जिले मे मनरेगा योजना से हनोदा, करगाडीह, कोड़िया तथा धनोरा इत्यादि ग्रामों मे क्रमशः 200, 189, 314 तथा 314 महिला व पुरुष लाभान्वित हुए इनमे 72 प्रतिशत महिला लाभान्वित हुई।

मुख्य शब्दावली : ग्रामीण योजना, मनरेगा, आत्मनिर्भरता, रोजगार गारंटी योजना, विकास।

प्रस्तावना– भारत देश एक कृषि प्रधान देश है। भारत के ग्रामीण बाहुल्य राष्ट्र है। जिसमे वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत देश की कुल जनसंख्या 121.06 करोड़ की ग्रामीण क्षेत्रो में निवास करती थी परन्तु वर्तमान समय में भारत देश की जनसंख्या 134 करोड़ तक पहुँच चूकी है। रोजगार गारंटी योजना से तात्पर्य है कि देश के ग्रामीण क्षेत्रो मे निवासरत लोगो को रोजगार उपलब्ध कराना जिससे उन्हें आसपास के स्थान के शासकीय योजनाओं से जोड़ना तथा उनके बीच बेरोजगारी के कारण हो रहे पलायन मे कमी लाना। विभिन्न योजनाओं के माध्यम से उनके परिवार की स्वास्थ्य एवं शिक्षा का विकास करना है। स्वतंत्रता के बाद देश की आर्थिक, सामाजिक, व स्वस्थ्य को दृष्टिगत रखते हुए गांवो के सम्पूर्ण विकास हेतु कई योजनाएं प्रारंभ की गई, जिनका मूल उद्देष्य ग्रामीण क्षेत्रों को आत्मनिर्भर बनाना था। इसके लिए केन्द्र व राज्य सरकार ने ग्रामीण क्षेत्र से संबंधित विभिन्न मूल समस्याओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी, महिला सशक्तिकरण, बाल व मातृत्व पोषण आहार, पेयजल, सड़क, बिजली, कृषि से संबंधित विभिन्न समस्याएं गांवों से शहर में हो रहे पलायन की रोकथाम, आदि के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाओं का शुभारम्भ किया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास संपूर्णतः गाँवों के विकास पर ही आधारित है और यदि भारत को विकासोन्मुखी करना है तो सर्वप्रथम भारत के गांवों का समुचित विकास करना होगा, भारत के विकास की रीढ़ ग्रामीण विकास है।

***शोधार्थी –समाजशास्त्र विभाग, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)**
**** शोध निर्देशक –समाजशास्त्र विभाग, सहायक प्राध्यापक, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)**

शासन की मनरेगा योजना के क्रियान्वयन से खाद्य पदार्थो की मांग में तेजी से वृद्धि देखने को मिलती। विभिन्न आंकड़ों से मनरेगा के कारण मजदूर वर्ग की आर्थिक स्थिति सशक्त हुई है। ग्रामीण वर्ग दालों व सब्जियों के अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थो का प्रयोग कभी–कभार करता था। अब वह उसके दैनिक जीवन में शामिल हो गए। कई राज्यों की अर्थव्यवस्था में तेजी से उछाल देखने को मिला है, जिसकी उम्मीद नहीं की जा सकती थी। मनरेगा से पहले जो मजदूर या गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाला व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकता के बारे में ही सोचता था। वह अब शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, राष्ट्रीय प्रतिष्ठा, खाद्य सुरक्षा आदि के बारे में सोचने लगा है। वह अपनी सामाजिक आवश्यकताओं को समझने लगा है व देश के लिए उसने क्या किया है आदि विषयों पर गंभीर हो गया है। ग्रामीणों को रोजगार मिलने से उनके जीवन शैली स्वास्थय व शैक्षिक स्थिति भी सशक्त हुई है उनमे आत्मनिर्भरता का विकास हुआ है। मनरेगा योजना से पूर्व गावों मे मजदूरो को कोई निर्धारित मजदूरी नहीं बनती थी परन्तु मनरेगा के बाद मजदूरो की न्यूनतम मजदूरी व निर्धारित दिनों के लिए मिलना तय हो गया है। इसका प्रभाव उनके आर्थिक व सामाजिक विकास पर आर्थिक रूप से पड़ा है वह देश की मुख्या धारा से जुड़ने लगा है जो इस मनरेगा द्वारा उन्हें बड़े पैमाने पर रोजगार प्राप्त हो रहा है जिससे वे आत्मनिर्भर बन रहे हैं। मनरेगा लोगों को उच्च गरीबी की स्थिति से निपटने में भी मदद कर रहा है क्योंकि इसमें वर्ष में न्यूनतम 100 दिन रोजगार का प्रावधान है तथा रोजगार के न मिलने की स्थिति में बेरोजगारी भत्ते का प्रावधान किया गया है।

मनरेगा योजना को देश में लागू करने से पूर्व जागरूकता को लेकर कोई कदम नहीं उठाया गया जिस स्तर पर इसे क्रियान्वित होना चाहिए। सरकार तंत्र, सरपंच व ग्रामीणों को मनरेगा को लेकर अधिक से अधिक जागरूक करने की आवश्यकता है। योजना क्या है और उससे क्या लाभ होगा और इसके बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। जागरूकता नहीं होने के चलते मनरेगा को सबसे ज्यादा नुकसान होगा शासन की उन्नत योजना का लाभ नहीं मिल पायेगा। ग्रामीण क्षेत्रो मे रोजगार का विकास देश की अर्थव्यवस्था के लिए बेहद लाभदायक सिद्ध होगी। मनरेगा की कमियों को दूर उसे बेहतर तरीके से सरकार द्वारा लागू किया जाना चाहिए। यह योजना प्रत्येक व्यक्ति सरकार व देश में भागीदारी को निर्धारित करती है। ऐसी योजनाओं को जागरूकता के साथ लागू किया जाना चाहिए।

दुर्ग जिले के जनसांख्यिकीय की स्थिति –

सामान्य विवरण (जनगणना 2011 के अनुसार)	
शीर्ष	**संख्या**
क्षेत्रफल	2238.36 वर्ग कि.मी.
अनुभागों की संख्या	3
तहसीलों की संख्या	3
नगरीय निकायों की संख्या	9
नगर निगमों की संख्या	3
नगर पालिका परिषदों की संख्या	3
नगर पंचायतों की संख्या	3
विकासखंडों की संख्या	3
ग्राम पंचायतों की संख्या	297
ग्रामों की संख्या	388

मनरेगा –महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (MGNREGA) अर्थात मनरेगा कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक परिवार के अकुशल श्रम करने के इच्छुक वयस्क सदस्यों हेतु एक वित्तीय वर्ष में कम–से–कम 150 दिन का गारंटी युक्त (राज्य शासन द्वारा 50 दिन अतिरिक्त जोड़ा गया है) रोजगार प्रदान किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप निर्धारित गुणवत्ता और स्थायित्व की उत्पादक संपत्ति का निर्माण होता है। मनरेगा योजना के तहत कार्य करने वाले श्रमिको के आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी अधिनियम उन ग्रामीणों कों जो शारीरिक श्रम करने के लिए तैयार किये गये हैं। यह अधिनियम पहली बार पी.व्ही द्वारा 1991 में प्रस्तावित किया गया था। नरसिंह राव 2006 में, इसे संसद में अंत में स्वीकार किया गया और भारत के 625 जिलों में कार्यान्वित किया गया। इस पायलट अनुभव के आधार पर, एनआरईजीए को 1 अप्रैल, 2008 से भारत के सभी जिलों में शामिल करने हेतु विकसित किया गया था। वर्ष 2010 में नरेगा (NREGA) का नाम बदलकर मनरेगा (MGNREGA) कर दिया गया। इस कानून को भारत शासन द्वारा "दुनिया का सबसे बड़ा और सबसे महत्वाकांक्षी सामाजिक सुरक्षा और सार्वजनिक कार्यक्रम" कहते है मनरेगा का एक और उद्देश्य है टिकाऊ संपत्तियां (जैसे सड़क, नहर, तालाब तथा कुआं आदि के निर्माण मे रोजगार उपलब्ध कराना। जिसमे आवेदक को उनके निवास के 5 किमी के भीतर रोजगार उपलब्ध कराया जाना प्रस्तावित एवं क्रियान्वित है और न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करना है। यदि आवेदन करने के 15 दिनों के भीतर काम नहीं किया गया है, तो आवेदक बेरोजगारी भत्ता के अधिकारी हैं। इस प्रकार, मनरेगा के अंतर्गत रोजगार एक कानूनी अधिकार है। मनरेगा कार्यक्रम से श्रमिक वर्गों को जैसे हस्त श्रमजीवी वाले काम करने वालो के लिए बहुत बड़ी राहत है। छत्तीसगढ़ के मजदूरों के लिए 221 रुपये प्रतिदिन की मजदूरी तय की गई है। यह नई दर 1 अप्रैल 2023 से लागू हो गई हैं। इसके लिए केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय ने चालू वित्तीय वर्ष 2022–23 के लिए 204 रुपये मजदूरी दर निर्धारित थी।

भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास योजनाओं के माध्यम ग्रामीण विकास कार्यक्रम के माध्यम से जन–जन में समुचित विकास के लिए निम्नलिखित प्रकार की मुख्य योजनाऐं चलायी जा रही है, इस योजना के अंतर्गत गरीब बेघर ग्रामीण व्यक्ति को आवास, पुनर्वास योजना के तहत कुछ राशि ऋण के रूप में मुहैया कराया जाता है। इस योजना में ग्रामीण युवाओं के लिए प्रशिक्षण द्वारा अनुदान के आधार आय के स्रोत का सृजन करना है। इस योजना के अंतर्गत शिक्षित बेरोजगारों युवक–युवतियों को अपना उद्योग धंधा शुरू करने के लिए उत्प्रेरित करती है

- दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना
- रोशनी : आदिवासियों के लिए कौशल विकास योजनास्वच्छ भारत मिशन
- सांसद आदर्श ग्राम योजना
- विरासत विकास और संवर्धन योजना (HRIDAY)
- राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन
- प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना
- स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण (TRYSEM)
- अन्त्योदय अन्न योजना (AAY)
- ग्राम अनाज बैंक योजना
- राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन
- आम आदमी बीमा योजना
- कुटीर ज्योति कार्यक्रम
- सर्व शिक्षा अभियान

संबंधित शोध अध्ययन की समीक्षा

बडोदिया एवं अन्य (2011) ने महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारटी याजेना का गरीबी उन्मुलन के सदर्भ में अध्ययन किया। अध्ययन में मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले के मोरार विकासखंड के 110 ग्रामीण लाभार्थी जो कि निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के थे, का चयन किया गया। अध्ययन से प्राप्त परिणामों से ज्ञात हुआ कि मनरेगा में कार्य करने से हितग्राहियों की आर्थिक स्थिति में सकारात्मक सार्थक बदलाव हुआ। अध्ययन से यह भी पता चला कि मनरेगा में कार्य के दौरान अधिकारियों से सपंर्क में आने से हितग्राहियों का शिक्षा, सामाजिक व्यवहार सुविधा के बारे में जानकारी में भी सार्थक वृद्धि हुई।

होनाकेरी और कोटे (2012) ने महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना ने गाँव से पलायन की समस्या एव आर्थिक स्थिति पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन के लिए गुलबर्गा जिले के दो

ग्रामों काडेला एव कुसनुरू से प्रदत्तो को लिया गया। अध्ययन के परिणाम दर्शाते है कि मनरेगा के अंतर्गत 15 पारिश्रमिक का भुगतान एक सप्ताह के अन्दर कर दिया गया एवं इस सबंध में कोई शिकायत दर्ज नहीं हुई अध्ययन में यह पाया गया कि मनरेगा में कार्यरत अधिकतर लोग मनरेगा के विषय में अनजान थे। अध्ययन से प्राप्त महत्वपूर्ण परिणाम में यह ज्ञात हुआ कि मनरेगा के शुरू होने के पश्चात् ग्रामीणों की पलायन की प्रवृति घटी जिसका मूल कारण उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार था।

सीमा जायसवाल (2016) ने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में महिलाओं की भूमिकारू दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में अध्ययन किया तथा परिणाम में पाया किया कि महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना राज्य सरकार की लोकप्रिय योजनाओं में से एक है। जिससे ग्रामीण महिलाओं में सशक्तिकरण का विकास हुआ है। इस योजना का ग्रामीण महिलाओं में सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। योजना के माध्यम से ही दुर्ग जिले का ग्रामीण विकास हुआ है तथा दुर्ग जिले को सर्वाधिक महिलाओं को रोजगार प्रदान करने में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ है। अंत में इस योजना के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि मनरेगा महिलाओं की आत्मा है, महिलाओं का जीवन है, मनरेगा शरीर में धमनी की भांति है जो महिलाओं को जीवित रखती है।

महेंद्र कुमार वर्मा (2019) ने सरकारी योजनाओं का ग्रामीण विकास मे योगदान का विशलेश्नात्मक अध्ययन किया अध्ययन मे पाया कि ग्रामीण विकास के लिए शासन स्टार पर उपरोक्त प्रयानो के अलावा कृषि उत्पादकता व रोज्फार बढ़ने की लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम संचालित किये जाते है। जैसे प्रशीतन गृह व गोदामों या वेयर हाउस का निर्माण, नियमित मंडियों की स्थापना, परिवहन साधनों का विकास, श्रीनिकरण व मानकीकरण की व्यवस्था सार्वजनिक वितरण प्रणाली का क्रियान्वयन आदि उपाय किये जाते है।

पंकज कुमार (2021) ने धनात्मक बाह्यतायें एवं मनरेगा – एक आर्थिक अनुशीलन (दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में) अध्ययन किया। प्राप्त निष्कर्षों से यह कहा जा सकता है कि चयनित क्षेत्र पाटन में मनरेगा का कार्य दिवस (प्रतिशत) धमधा की तुलना में अधिक पाया गया है। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर तहसील धमधा और पाटन दोनों ही तहसीलों में मनरेगा के बाद किये गये कार्य में कृषि का : सबसे अधिक है और कृषि के बाद सबसे अधिक : निर्माण कार्य में पाया गया है। इस प्रकार प्राप्त आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि तहसील धमधा और पाटन में नियमित आय (मनरेगा अवधि में) प्राप्त का प्रतिशत अधिकतम है। जो कुल सर्वेक्षित प्रतिशत का 68 प्रतिशत है।

दिलेश्वरी साहू (2021) ने छत्तीसगढ़ राज्य के मनरेगा योजना में महिलाओं की भूमिका ''राजनांदगांव जिले के विशेष संदर्भ में'' अध्ययन किया अध्ययन के परिणाम में पाया कि मनरेगा ने ग्रामीण महिलाओं और भूमिहीन श्रमिकों हेतु एक सुरक्षा कवच के रूप में कार्य किया है जिससे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना अधिनियम केन्द्र व राज्य सरकार की सबसे बड़ी लोकप्रिय योजनाओं में से एक है, जिससे ग्रामीण महिलाओं में सशक्तिकरण का माध्यम से ही राजनांदगांव जिले का ग्रामीण महिला अच्छे से विकास की प्रगति पर आ गया है।

हिमांशु एवं विजय (2022) ने ग्रामीण भारत के विकास योजनाओं पर अध्ययन किया तथा अध्ययन के परिणाम मे पाया की आवास और सड़कों सहित ग्रामीण क्षेत्रो के बुनियादी ढांचे मे दिन ब दिन सुधर हो रहा है। पिछले कुछ वर्षो की तुलना की गई तो परिणाम सकारात्मक वृद्धि दर्शाते है। ग्रामीण निर्धन लोगो की मुख्य समस्याएं आवास, परिवहन, और रोजगार थी।

सेजल सोनी (2023) ने मनरेगा का ग्रामीण विकास पर प्रभाव का अध्ययन किया तथा पाया कि वर्तमान अध्ययन से पता चलता है कि पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या हर साल बढ़ रही है, जॉब कार्ड के लिए पंजीकृ त परिवारों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है, यह दर्शाता है कि इस कार्यक्रम के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है, विशेष रूप से महिलाओं के मामले में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि

पंजीकृत होने वाले अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के परिवारों का अनुपात भी प्रत्येक वर्ष बढ़ता गया।

बिरेन्द्र एवं धीरेन्द्र (2023) ने मनरेगा योजना का ग्रामिउन समाज पर प्रभाव पर अध्ययन किया। निष्कर्ष मे पाया की सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि मनरेगा कर्मियों की सम्पूर्ण भारत में मनरेगा कार्यक्रम शुरू करने के बाद सामाजिक स्थिति में सुधार में हुआ है। जैसे–जैसे ग्रामीणों में शिक्षा, रोजगार के अवसर पाने का रूझान बढ़ा है अर्थात् वे सुदृढ़ हुए हैं, –वैसे वे सभी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में भी सुदृढ़ हुए हैं तथा आत्मनिर्भर बने हैं। अतः मनरेगा और श्रमिक (ग्रामीण) रथ के दो पहियों के समान हैं। यदि एक निर्बल होगा तो समाज रूपी रथ आगे नहीं बढ़ सकता है।

एम.सिद्धिकी एवं शिखा बघेल (2023) ने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की उपलब्धियों का मूल्यांकन सीधी जिले के विशेष सन्दर्भ में अध्ययन किया। निष्कर्ष मे पाया कि महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना सीधी मध्यप्रदेश मे जिस तरह से अपना कार्य कर रही है उससे निश्चित ही गरीब परिवारों को सहारा मिला है। यह योजना जिस तरह से परिवार की सुरक्षा सुनिश्चित करती है। उससे प्रदेश मे गरीबी के खिलाफ अपने युद्ध मे हम कामयाब हो सकेंगे। महात्मा गाँधी राष्ट्रीय योजना गारंटी योजना मध्यप्रदेश ने प्रदेश के गांवों में विकास की नई संभावनाएं बनायीं है।

अध्ययन विषय का समाजशास्त्रीय महत्व – मनरेगा योजना को सिर्फ रोजगार प्रदान करने की योजना समझना सही नहीं है। इस योजना के तहत् अनेक अन्य दृष्टिकोण भी हैं। वर्तमान में किसी भी कार्यक्रम की सफलता की पहली सीढ़ी सूचना माध्यमों पर निर्भर करती है। मीडिया ने लगातार शासकीय योजनाओं के बारे में जानकारी दी है। आज मनरेगा के बारे में सकारात्मक या नकारात्मक जैसी भी धारणा लोगों के अंतर्मन में है। आर्थिक विकास हमेशा ही भारतीय योजनाओं का एक मुख्य अंग रहा है। मनरेगा ने ग्रामीण परिवारों को कई तरह से लाभान्वित किया है–ग्रामीण परिवारों को रोजगार की गारण्टी मिली। ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि होने से उनके उपभोग व्यय में वृद्धि एवं जीवन–स्तर में काफी सुधार आया। शहरों की ओर पलायन में कमी देखी गई है। मनरेगा योजना से जनता की रोजगार एवं प्राप्त आय से जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन कार्यक्रम के संचालन को गति मिला है। ग्रामीणों को निकट ही रोजगार मिलने से उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। मनरेगा के जरिए गैर कुशल श्रमिकों के आय में बढ़ोत्तरी होने में सहायता मिली है। ग्रामीण क्षेत्रों में ढांचागत विकास कार्यों को गति मिली है। उदाहरण के लिए सड़क रोड कनेक्टिविटी, जल संवर्द्धन, कृषि भूमि सुधार आदि। इससे कोरोना काल में बड़ी संख्या में प्रदेश लौटे प्रवासी श्रमिकों को भी तत्काल रोजगार उपलब्ध कराया जा सका। मनरेगा के तहत बढ़े हुए काम से मजदूरी के रूप में ग्रामीण श्रमिकों के हाथों में ज्यादा राशि पहुंची और गांवों की अर्थव्यवस्था सशक्त हुई है। राज्य में बेरोजगारी दर में कमी दर्ज की गई है।

अध्ययन का उद्देश्य –

- मनरेगा योजना के क्रियान्वयन की स्थिति का अध्ययन करना।
- मनरेगा योजना के लाभान्वितों के वस्तु स्थिति का अध्ययन करना।

उपकल्पना –

- संबंधित अध्ययन क्षेत्र में मनरेगा योजनाओं का क्रियान्वयन भलीभाँति हो हो रहा है।
- मनरेगा योजना के लाभान्वित अध्ययन क्षेत्र में उचित अनुपात में है।

अध्ययन विधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन मे आंकड़ो के संकलन हेतु अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रारूप, अवलोकन व सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय – छत्तीसगढ़ राज्य के हृदय स्थल पर शिवनाथ नदी के पूर्व में स्थित है दुर्ग जिला छत्तीसगढ़ में औद्योगिक विकास का अग्रदूत है। जहां भिलाई इस्पात संयंत्र की स्थापना के साथ न सिर्फ जिले बल्कि संपूर्ण प्रदेश का चौतरफा औद्योगिक विकास हुआ है। इसके साथ ही दुर्ग जिला सांस्कृतिक

विविधता, सामाजिक सामंजस्य, संसाधनों के अर्थपूर्ण उपयोग एवं विभिन्न जातियों एवं धर्मो के लोगों के बीच आपसी सौहार्द्र के लिये भी जाना जाता है। जिला दुर्ग का गठन 1 जनवरी, 1906 को रायपुर और बिलासपुर जिलों के कुछ क्षेत्रों को मिलाकर किया गया था। उस समय आज के राजनंदगांव और कबीरधाम (कवर्धा) जिले भी दुर्ग जिले का हिस्सा थे। 26 जनवरी, 1973 को जिला दुर्ग को विभाजन किया गया और राजनंदगांव जिला अस्तित्व में आया। 6 जुलाई, 1998 को जिला राजनांदगांव भी विभाजित किया गया और नया कबीरधाम जिला अस्तित्व में आया। 1906 से पहले, दुर्ग रायपुर जिले का एक तहसील था। 1906 में दुर्ग जिले के गठन के समय, इसमें दुर्ग, बेमेतरा और बालोद तीन तहसीलें थी। जिला फिर से 1 जनवरी 2012 को विभाजित किया गया है और दो नए जिलें बेमेतरा और बालोद अस्तित्व में आये। 2011 की जनगणना के अनुसार दुर्ग जिले की कुल जनसंख्या 1721948 है। इसमें अनुसूचित जाति 101188 और अनुसूचित जनजाति के 245587 लोग शामिल है। जिले मे 6 तहसील एवं 3 ब्लॉक तथा 388 गाँव है। जिले का मुख्यालय दुर्ग है। दुर्ग जिले के दुर्ग विकासखंड के 4 ग्रामों हनोदा, करगाडीह, कोड़िया तथा धनोरा गांवों को प्रस्तुत अध्ययन हेतु चयन किया गया है। इन क्षेत्रों से आंकड़ें एकत्रित कर उनमें मनरेगा की स्थिति का अध्ययन किया गया है। कोड़िया दुर्ग तहसील से 12 कि.मी. पर स्थित है जिसकी जनसंख्या लगभग 4500 के करीब है, हनोदा तथा धनोरा की दूरी दुर्ग तहसील से लगभग 6 कि.मी पर स्थित है जिसकी जनसंख्या लगभग 6500 तथा 7000 है एवं करगाडीह दुर्ग तहसील से लगभग 14 कि.मी. दूरी पर स्थित है जिसकी जनसंख्या लगभग 2500 है।

अध्ययन का दुर्ग जिले में विकास पर योगदान – मनरेगा योजना से दुर्ग जिले के ग्रामीण क्षेत्र उन्नति की ओर है इस योजना से गाँव की स्थिति बेहतर हुई है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना रोजगार के क्षेत्र में सबसे बड़ी योजना है। मनरेगा से ग्रामीण क्षेत्र में स्थायी सम्पतियों का सृजन हुआ है। इस योजना से ग्रामीण क्षेत्रो के रोजगार मे वृद्धि हुई है। महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना मे कार्यरत महिला व दिव्यांग वर्गों को रोजगार प्रदाय करने मे छत्तीसगढ़ राज्य के दुर्ग जिला का प्रथम स्थान है। वित्तीय वर्ष 2023–24 मे कुल महिला श्रमिकों की संख्या 1,04,056 है। ग्राम पंचायतो मे श्रम मूलक पर्याप्त मात्र मे कार्य स्वीकृत है, जिसके तहत मांग अनुसार निरंतर मजदूरो को रोजगार मुहैया कराया जा रहा है। वित्तीय वर्ष 2023-24 मे मनरेगा में कुल रजिस्टर्ड परिवार 1,83,384 है। जिसमे से 85,512 परिवारों को रोजगार प्रदान किया जा चूका है। इन कार्यों मे वृक्षारोपण, नहर–तालाब निर्माण, तालाब गहरीकरण, नवीन पंचायत भवन, आँगनबाडी केंद्र, उचित मूल्य की दूकान आदि कार्य अनवरत जारी है।

जिले मे मनरेगा से लाभान्वित ग्रामों की स्थिति – वित्तीय वर्ष 2023-24 में दुर्ग जिले के मनरेगा योजना में 80.08% महिला श्रमिक कार्यरत है। दुर्ग जनपद पंचायत में 84.02%, धमधा जनपद पंचायत मे 73.79%, पाटन जनपद पंचायत में 83.32% महिलाएं शामिल है। दुर्ग जिले के 3 ग्रामों तथा उनमे मनरेगा से लाभान्वित हितग्राहियों की संख्या दर्शाया गया है, जिन्हें शासन की इस योजना से बहुत अधिक लाभ प्राप्त हुआ है। मनरेगा योजना उन्हें रोजगार प्रदान किया ही है वरन उनके आत्मविश्वास के साथ–साथ उनकी कार्यक्षमता मे भी वृद्धि की है। ग्रामीणों मे रोजगार मिलने से उनकी मानसिक व आर्थिक स्थिति मे अत्यंत परिवर्तन आया है जिससे इन ग्रामीणों की दिशा और दशा दोनों मे सकारात्मक सुधार पाया गया है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत जिले में श्रमिकों को रोजगार देने की दिशा में कलेक्टर एवं जिला पंचायत के निर्देशन में श्रमिकों के हित में लगातार कार्य किए जा रहे हैं। जिसके तहत आज श्रमिकों को रोजगार देने में दुर्ग जिला प्रदेश में पहले नंबर पर है। जिला पंचायत द्वारा मनरेगा के तहत् स्वीकृत 927 निर्माण कार्य चल रहा है। 51 हजार 362 श्रमिकों को प्रतिदिन रोजगार उपलब्ध कराया गया है। अमृत सरोवर, नवीन तालाब निर्माण, तालाब गहरीकरण, डबरी निर्माण, नरवा बंधान, स्व.सहायता समूह के वर्क शेड निर्माण सहित विभिन्न कार्यों में मनरेगा के तहत श्रमिक कार्य कर रहे हैं। जिले में श्रमिकों को स्थानीय स्तर पर रोजगार उपलब्ध कराया गया।

गौरतलब है कि धमधा विकासखंड के 319 कार्यों में 16 हजार 511 श्रमिक, दुर्ग विकासखंड के 248 कार्यों में 14 हजार 79 श्रमिक, पाटन विकासखंड के 360 कार्यों में 20 हजार 772 श्रमिक कुल जिले में 51,362 श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराया गया है। ग्राम पंचायत में मांग के आधार पर कार्य स्वीकृत हैं। श्रमिकों को नवीन मजदूरी दर 221 रूपए की राशि के अनुसार भुगतान किया जा रहा है। मनरेगा के कार्यों में महिलाओं की भागीदारी सबसे अधिक 72 प्रतिशत रही है। वहीं प्रदेश में सर्वाधिक श्रमिक जिले में कार्यरत हैं।

मनरेगा से संबंधित ग्रामीण हितग्राहियों की संख्या तालिका

क्रमांक	गावों के नाम	कुल जनसंख्या (लगभग)	लाभार्थियों की संख्या		
			महिला	पुरुष	कुल लाभार्थी
1	हनोदा	6500	172	28	200
2	करगाडीह	2500	136	53	189
3	कोड़िया	4500	216	98	314
4	धनोरा	7000	455	178	633
	कुल योग		**979**	**357**	**1336**

निष्कर्ष :—

1. मनरेगा योजना का क्रियान्वयन संबंधित 4 ग्रामों में संतोषजनक है।
2. म्नरेगा योजना के लाभार्थी अध्ययन क्षत्र में संतोषजनक संख्या में है।

संदर्भ–सूची –

1. Birendra & Dhirendra P. Singh (2023), Effect of MNREGA Scheme on Rural Society, *Social Research Foundation*, X(VII), 1-4.
2. Badodia, S.K. Khushwah, R.S.A nd Shakya, S.K. (2011). Impact Of Mahatma Gandhi National Rural Employment GuaranteeA ct (Mnrega On PovertyA lleviation. Raj.*J. Extn. Edu*. 19: 206-209.
3. दिलेश्वरी साहू (2021), छत्तीसगढ़ राज्य के मनरेगा योजना में महिलाओं की भूमिका ''राजनांदगांव जिले के विशेष संदर्भ में, *International Journal of Scientific Research in ScienceA nd Technology,* 8(4), 263-272
4. Himanshu Pandey & VijayA grawal (2022),A Study on Development Schemes of Rural India, *International Journal of EngineeringA nd Management Research*, 12(3), 202-211
5. Honnakeri, P.M.A nd kote,A .K. (2012), The Impact Of MNREGA Scheme On Rural-Urban Migration In Rural Economy With Special Reference To Gullbarga District In Karnataka State, Indian Streams *Research Journal*, 2(I), 1-4.
6. महेंद्र कुमार जैन (2019), सरकारी योजनाओं का ग्रामीण विकास में योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन
7. एम. यू. सिद्दीकी, शिखा सिंह बघेल. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना की उपलब्धियों का मूल्यांकन (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में, *International Journal ofA dvances in Social Sciences*, 11(1)14-2. doi: 10.52711/2454-2679.2023.00003
8. पंकज कुमार (2021),धनात्मक बाह्यतायें एवं मनरेगा–एक आर्थिक अनुशीलन (दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में) *Journal of Ravishankar University*, 27(1), 50-45
9. सीमा जायसवाल (2016), महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में महिलाओं की भूमिकारू दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में, *Golden Research Thoughts,* 5-1 ,(6)6.
10. Sejal Soni (2023), Effect of MANREGS on rural development of India, *International Journal of Education, Modern Management,A pplied Science & Social Science (IJEMMASSS*, 5 (1), 79-82
11. डॉ. वी.सी. सिन्हा – भारतीय अर्थव्यवस्था एव सांख्यिकीय एस.बी.डी.पी. पब्लिशिगं हाउस, मथुरा 2005.
12. आनंद प्रकाश मिश्र – ग्रामीण निर्धनता, साहित्य भवन, आगरा, 1998.
13. https://durg.gov.in/
14. www.dprcg.gov.in
15. https://www.jagran.com/

आरम्भिक उपन्यासों में स्त्री जीवन की अभिव्यक्ति का विवेचन

रन्जू बिन्द*

शोध सार : उपन्यास समकालीन समाज के जीवन्तता को अभिव्यक्त करने का सर्वोत्तम माध्यम माना जाता है। हिन्दी भाषा के आरम्भिक उपन्यासों में राष्ट्रीय अधिकारों के प्रति सजगता, व्यक्तिगत जीवन से जुड़े पक्षों की सत्यतता तथा सामाजिक रूढ़ियों के प्रति जागरूकता की स्थिति दृष्टिगत होती है। आरम्भिक उपन्यासों में स्त्री जीवन से जुड़ी विभिन्न समस्याओं को व्यक्त करने के साथ–साथ उसकी समाज में भूमिका का विवेचन मिलता है। विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका तत्कालीन उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त की गयी है। आरम्भिक उपन्यासों में स्त्रियों की शिक्षा, उनके पुनर्विवाह, बाल विवाह पर रोक, विधवा पुनर्विवाह एवं दहेज जैसी कुप्रथा के ऊपर कथ्य निर्मित करते हुए उपन्यास सृजित किये गये। इस समय के उपन्यासों में उच्च वर्गों में बढ़ रही बिलासिता एवं मूल्यों की अनदेखी मध्यम वर्ग में विभिन्न सामाजिक एवं पारिवारिक विसंगतियों के बीच अन्तर्द्वन्द्व एवं निम्न वर्गों में उत्पन्न विकृतियों का विवेचन किया गया है। तत्कालीन उपन्यासों में भाग्यवती, कुमुदनी आदि उपन्यासों में सरल व सहज भाषा में तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति का स्पष्ट विवेचन किया गया है। इस तरह आरम्भिक उपन्यासों में विभिन्न प्रकार की बाध्यताओं एवं निर्योग्यताओं से जकड़ी स्त्री जीवन का यथार्थ विवेचन किया गया है।

मूल शब्द : आरम्भिक उपन्यास, स्त्री जीवन, अभिव्यक्ति विवेचन।

भूमिका : उपन्यास समाज का ऐसा प्रतिबिम्ब होता है जिसमें तत्कालीन परिवेश की छाया निहित होती है। ऐसा माना जाता है कि उपन्यास समाज को सर्वाधिक करीब से देखने की कोशिश करता है। इसलिए स्त्री जीवन को भी उसी तन्मयता से उपन्यासों में समाहित किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र आरम्भिक उपन्यासों के अन्तर्गत श्रद्धाराम फिल्लौरी की भाग्यवती आर मल्लिका देवी के 'कुमुदिनी' को स्त्री जीवन के चित्रण का आधार बनाया गया है क्योंकि इन उपन्यासों में तत्कालीन स्त्री जीवन के प्रत्येक पक्ष का सूक्ष्म एवं वास्तविक चित्रण किया गया है।

भारत में 1857 ई0 के बाद का समय सामाजिक एवं राजनैतिक नवजागरण का काल माना जाता है। इस काल में जिस तन्मयता के साथ राष्ट्रीय अधिकारों के प्रति सजगता दिखाई दती है, वही तन्मयता व्यक्तिगत अधिकारों तथा सामाजिक रूढ़ियों के प्रति भी दिखाई देती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि उक्त दोनों उपन्यास कितने यथार्थवादी हैं, कितने आदर्शवादी हैं, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना यह कि ये उपन्यास एक नयी विधा के उदय काल में ही स्त्री जीवन की समस्याओं को उठाने के साथ–साथ स्त्री की कर्मठता और उसकी अहमियत को साहित्य में उचित स्थान देने पर बल देते हैं।

श्रद्धाराम फिल्लौरी के उपन्यास 'भाग्यवती' का रचनात्मक उद्देश्य स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना है। उपन्यासकार ने इसकी भूमिका में ही अपना मंतव्य व्यक्त करते हुए लिखा है– 'बहुत दिनों से इच्छा थी कि कोई पोथी हिन्दी भाषा में लिखूँ कि जिसके पढ़ने से भारतवर्ष की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा प्राप्त हो क्योंकि यद्यपि कई स्त्रियाँ पढी–लिखी तो होती हैं परन्तु सदा अपने ही घर में बैठे रहने के कारण उनको देश–विदेश की बोलचाल और अन्य लोगों से बात–व्यवहार की पूरी बुद्धि नहीं होती। मल्लिका देवी के उपन्यास 'कुमुदिनी' की रचना के पीछे इसकी प्रमुख पात्र कुमुदिनी के बाल विधवा जीवन की व्यथा–कथा को उपन्यास में उठाया गया है। मल्लिक देवी ने अपने अन्य उपन्यासों में भी स्त्री समस्या को उठाया है। मल्लिका देवी के सन्दर्भ में ज्ञानचन्द्र जैन ने लिखा है कि मल्लिका देवी ने जिन उपन्यासों में को चुना

* सहायक अध्यापिका–हिन्दी, श्रीराम इण्टर कॉलेज, पहाड़ गाँव, जालौन–284306।

उनकी कथा उनके हृदय के अत्यन्त निकट रही होगी। वह स्वयं वैधव्य की पीड़ा भोग चुकी थी और समाज की अंध रूढ़ियों की शिकार थी। इन दोनों उपन्यासों के मूल में नवजागरणकालीन चेतना है। उस काल में स्त्रियों के सामाजिक अधिकारों के प्रति जो जागरूकता आन्दोलनों के माध्यम से प्रसारित हो रही थी उसका प्रभाव इन दोनों उपन्यासों पर बहुत गहराई से दिखाई देता है। नवजागरण काल के प्रारम्भिक दौर में सती प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी गयी। उस समय के समाज चिंतकों नें उसे भारतीय समाज पर अभिशाप के रूप में देखा। इसे भारत में स्त्री–समस्या में सुधार का पहला चरण कहा जा सकता है। दूसरे चरण में विधवाओं और खासकर बाल विधवाओं की स्थिति उस समाज में बहुत खराब थी। इसलिए समाज सुधार के तहत दो बातों पर विशेष ध्यान दिया गया। एक तो बाल विवाह को रोकने की कोशिश की गयी तथा दूसरे विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया गया। 'भाग्यवती' और 'कुमुदिनी' दोनों उपन्यासों में समाज के इस भयावह और विकृत रूप को उठाया गया है जो इन्हें अपने समय के यथार्थ से जोड़ता है।

प्रायः साहित्य का यथार्थ इतिहास के यथार्थ से भिन्न होता है। इतिहास में नाम सत्य होता है और साहित्य में अपने समय की सामाजिक परिघटनाएं सत्य होती है और सामाजिक समस्याओं का स्वरूप सत्य होता है। यही कारण है कि साहित्य का यथार्थ, समाज का यथार्थ (सामाजिक यथार्थ) होता है। उक्त दोनों उपन्यास सामाजिक यथार्थ के दस्तावेज के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। स्त्री जीवन की जिस समस्या को 'भाग्यवती' में उठाया गया है वह उस समय के समाज की बहुसंख्यक जनता की समस्या थी। बाल विवाह के सम्बन्ध में भाग्यवती के पिता का कहना है कि हम लड़की का विवाह ग्यारह वर्ष के पहले होना कभी श्रेष्ठ नही कहेंगे। जब हमने बालक का विवाह अठारह वर्ष पर ठहराया तो लड़की ग्यारह वर्ष से छोटी कैसे व्याही जा सकती है। क्या तुमने मनुष्य और स्त्री की रूचि और स्वभाव में कुछ भेद समझ रखा है? भला यह तो सोचो कि जब मनुष्य को अठारह वर्ष के पीछे स्त्री की पूरी रूचि होती है तो स्त्री को ग्यारह वर्ष के पीछे कैसे होनी चाहिए। उस समय प्रायः लड़कियों का विवाह सात वर्ष से लेकर नौ वर्ष के बीच कर दिया जाता था। पं0 उमादत्त का यह विचार कि लड़की का विवाह ग्यारह वर्ष के पहले नहीं होना चाहिए, उनकी जागरूकता का परिचायक है।

'कुमुदिनी' की मूल समस्या पुनर्विवाह की है। पुनर्विवाह में आने वाली बाधा को ईश्वर की अनिच्छा बताया गया है, जो अंधविश्वास का परिचायक है। विवाह के समय वर के आने में देर होने पर एक पात्र (हरिनाथ बाबू) कहता है कि 'विधवा विवाह जगदीश्वर का मन मत नहीं है, जो हो सब त्यागकर आप क्या कुकार्य किये हैं। स्त्री जीवन को भारतीय समाज में जिसने सर्वाधिक घेरा है, वह है धर्म। धर्म और कर्मकाण्ड ने भगवान के नाम पर भय और डर का वातावरण बताया है, जिसका प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। यह पुरूष वर्ग का एक ऐसा हथियार है जो अनियत सत्ता के नाम पर अपनी सत्ता चलाता है। पुरूषों ने पूरी स्त्री समाज के इर्द–गिर्द इतने तरह के कर्मकाण्ड निर्मित कर दिया है जो किसी को भी सामान्य जीवन नहीं जीने दे सकता। 'कुमुदिनी' में बाल विवाह और बाल विधवाओं की समस्या साहचर्य जनित प्रेम, और पुनर्विवाह के माध्यम से दिखाने तथा समाधान करने के रास्ते को दिखाया गया है।

कुमदिनी उपन्यास की कथावस्तु बंगाल के एक गॉव पर आधारित है। ऐसा नहीं है कि वह समस्या सिर्फ बंगाल की थी, यही समस्या पूरे भारतीय समाज की थी और स्त्री जीवन की समस्या समान थी। भाग्यवती उपन्यास में भाग्यवती को जब उनके परिवार से अलग कर दिया जाता है तो वह अपने कर्म और विवेक से न सिर्फ आत्मरक्षा करती है बल्कि धन और ऐश्वर्य भी प्राप्त करती है। 'कुमुदिनी' में उसे पति की मृत्यु के बाद जब उसके श्वसुर की भी मृत्यु हो जाती है तो वह अकेले हो जाती है। वह भी अपने जीवन संघर्ष में पीछे नहीं हटती और पुनर्विवाह करके अपने समाज के समाने एक नया उदाहरण प्रस्तुत करती है। ऐसे समाज में जहाँ स्त्रियों के हँसने–बोलने, चलने–फिरने आदि से भी सामाजिक–धार्मिक अवमानना हो सकती थी वहाँ पुनर्विवाह करना या परिवार से अलग रहकर अपना जीविकोपार्जन करना तो सीधे–सीधे धर्म और समाज को खण्डित करने जैसा था। दोनों उपन्यासों में अपने समय की रूढ़ियों के विरुद्ध प्रतिरोध को दिखाया गया है।वह प्रतिरोध ऐसा प्रतिरोध था जो समाज को नई दिशा प्रदान करने वाला था। 'भाग्यवती' में उमादत्त का कथन है कि 'अच्छे काम में आगे होने में यदि थोड़ा अपकीर्ति भी हो तो डरना नहीं चाहिए

और तुम यह भी सोचो कि जैसा हम अपने घर से पहले इस काम को आरम्भ करना नहीं चाहते, वैसे और कौन है जो अपने को इस अपकीर्ति से बचाना न चाहेगा? सो योग्य यही है कि शुभकार्य का आरम्भ मैं ही अपने घर से करूँ। फिर देखा–देखी बहुत लोग मेरे पीछे हो लेंगे। पं. उमादत्त एक तरह से अपने समय, समाज और बनी–बनायी लोक रूढ़ियों को न सिर्फ चुनौती देते हैं बल्कि तोड़ने की इच्छा भी व्यक्त करते हैं जिसका विरोध पूरा विद्वत समाज करता है, उसे आगे आकर स्वीकार करने को वे अपना कर्तव्य समझते हैं। बाल विवाह से होने वाली समस्याओं तथा विधवाओं की समस्याओं को वे अत्यन्त गम्भीरता से लेते हैं। उनका कथन है कि 'श्रेष्ठ लोग जो काम करते हैं उनको देख के इतर लोग भी वैसा ही करते हैं, सो यदि मैं श्रेष्ठ हूँ तो मुझे वैसा काम अवश्य करना चाहिए जो सारे संसार को सुखदायक हो क्योंकि मुझे देख के और लोग भी वैसा करने में उद्यम करेंगे।'

भारतीय समाज में स्त्री को विवाह में अपना मत रखने का कोई अधिकार नहीं था। उल्लेख 'कुमुदिनी' में कुछ इस प्रकार मिलता है, 'कुलकामिनीगण को (तो) व्याह के बात में मतामत देने का कोई अधिकार नहीं है, केवल मात्र रोने का अधिकार है।' इस उपन्यास में इस तरह के अनेक उदाहरण मिलते हैं जो स्त्री अधिकारों की बात करते हैं। कुमुदिनी के बाल्यकाल से लेकर पुनर्विवाह तक की कथा इस उपन्यास में है। इस उपन्यास में दो बातें स्पष्ट हैं पहली यह कि इसमें बंगाल के नवजागरण की चेतना साफ–साफ दिखाई देती है तथा दूसरी यह कि नवजागरण का प्रभाव सीधे–सीधे स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति सजग करता है। 'भाग्यवती' और 'कुमुदिनी' दोनों उपन्यास स्त्री समस्या को उठाने में सफल रहे हैं। दोनों के केन्द्र में स्त्री जीवन है। भारतीय समाज के लिए यह आवश्यक था कि इस प्रकार के मतों की स्थापना हो और समाज में समानता का वातावरण पैदा हो सके। यह कहना गलत नहीं होगा कि प्रस्तुत दोनों उपन्यास साहित्य की श्रेणी के ऐतिहासिक सत्य हैं जो समाज आधारित हैं। भाग्यवती के सम्बन्ध में गोपाल राय ने लिखा है कि 'कथा में अन्धविश्वासों के उल्लेख से एक तरफ तो उस काल के हिन्दू समाज, विशेषकर ब्राम्हण वर्ग के बौद्धिक पिछड़ेपन का बोध होता है और दूसरी तरफ इनके विरोध में पैदा हो रही बौद्धिक जागरूकता भी सामने आती है। यह नवजागरण की चेतना का यथार्थ है। भाग्यवती की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें पहली बार स्पष्ट रूप से विधवा विवाह का समर्थन किया गया था जिसे उस समय का रूढ़िवादी हिन्दी समाज मानने को तैयार न था। कुमुदिनी के सन्दर्भ में भी उपरोक्त मत उतना ही सत्य है जितना भाग्यवती के सन्दर्भ में। भाग्यवती में जहाँ विधवा विवाह का समर्थन किया गया है, वहीं कुमुदिनी के एक अंश का शीर्षक है विधवा सधवा भई।'

भाषा की दृष्टि से दोनों उपन्यासों में प्रारम्भिक हिन्दी के दोनों रूप मिलते हैं 'कुमुदिनी' की भाषा बांग्ला प्रभावित हिन्दी है तथा 'भाग्यवती' की भाषा खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप है। दोनों उपन्यास अपनी बात को स्पष्ट रूप में पहुंचाने में सफल रहें हैं। जिन मुद्दों को इन उपन्यासों में उठाया गया है, उस विषय में उस समय सोचना भी अपराध तथा लोक विरुद्ध था। लेकिन यह सामाजिक आन्दोलनों का प्रभाव और लेखकों की जागरूकता के कारण ही ये उपन्यास आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। अतः आज प्रारम्भिक उपन्यासों में स्त्री जीवन एवं अधिकारों पर व्यापक चिन्तन एवं प्रयास किया गया है।

संदर्भ–सूची :–

1. सिंह, श्याम (2005) बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर : व्यक्तित्व परिचय, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पश्चिमपुरी।
2. सिंह, शरद (2009) : पिछले पन्ने की औरतें, नई दिल्ली, हिन्दी बुक सेन्टर।
3. भारती, अशोक (2010) : डॉ. अम्बेडकर और मजदूर आन्दोलन, नई दिल्ली, लोकमित्र प्रकाशन शहादरा।
4. राठौर, ललिता एन0 (2006) : आधुनिक स्त्री विमर्श, कानपुर, विश्व प्रकाशन।
5. रावत, ज्ञानेन्द्र (2008) : औरत एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, नई दिल्ली, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड दरियागंज।
6. सीमोन, द बोडवार (2008) : स्त्री उपेक्षा, अनुवादक प्रभा खेतान, नई दिल्ली, हिन्दी पॉकेट बुक्स।
7. स्नेही, कालीचरण (2015) : डॉ. अम्बेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श, कानपुर, आराधना ब्रदर्स प्रकाशक एवं वितरक गोविन्द नगर।
8. जैन, अरविन्द (2000) : औरत अस्तित्व और अस्मिता, दिल्ली, सारांश प्रकाशन प्रा0लि0।

डायस्पोरिक समुदायों की गतिकी के मध्य धर्म : सैद्धांतिक सर्वेक्षण

डॉ. मोनिका वर्मा*

सारांश : विगत तीन दशकों से 'डायस्पोरा' संबंधी अकादमिक संवादों तथा विमर्शों में 'प्रवासी धर्म एवं संस्कृति' परिचर्चा के केंद्र में रहा है। जिससे 'नृजातीयता', 'पारदेशियता' तथा 'सांस्कृतिक पूंजी' जैसी अवधारणाएं प्रमुख रूप से उभरकर सामने आई है। अवधारणात्मक विकासक्रम की यह निरंतरता डायस्पोरा तथा धर्म के अंतरसंबंधों को पुनर्मुल्यांकित तथा समीक्षित करने हेतु निरंतर निर्देशित करती है। इसका एक प्रमुख कारण डायस्पोरा को परिभाषित अथवा चिंहित करने के क्रम में 'धार्मिक जुड़ाव' को एक प्रमुख तत्व के रूप में सम्मिलित करना है। नैराश्य में अंतरराष्ट्रीय मानकों के बदलते परिदृश्य में धर्म की बढ़ती महत्ता व भूमिका के सापेक्ष 'सांस्कृतिक राजनीति' तथा 'सांस्कृतिक द्वंद' को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। विश्व के विभिन्न देश अपने–अपने डायस्पोरा समुदाय के सहयोग से वैश्विक संप्रभुता को चुनौती देते दिखाई पड़ते है। इस दृष्टि से भारतीय डायस्पोरा समुदाय द्वारा सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण तथा वैश्विक पटल पर प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। इस हेतु प्रस्तुत पत्र में भारतीय संस्कृति को केंद्र में रखते हुए 'डायस्पोरा तथा धर्म' के बीच अंतरसंबंधों की पड़ताल की गई है। डायस्पोरा समुदाय के वर्तमान परिदृश्य के साथ–साथ अतीत में धर्म स्थापना हेतु किए गए साझा प्रयासों को उजागर करना आवश्यक है। अध्ययनोपरांत यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि धर्म प्रवासित समुदाय को समझने, उनके आवश्यकताओं को प्रत्यक्षीकृत करने तथा 'स्व' की अभिव्यक्ति में एक महत्वपूर्ण अंग है। यह उन्हें मातृभूमि से जोड़ने के साथ–साथ स्वयं पर गौरव महसूस कराने में सक्षम होगा।

मुख्य शब्द : भारतीय, धर्म, संस्कृति एवं डायस्पोरा।

वैश्विक पटल पर विभिन्न डायस्पोरा समुदाय एक नवीन विश्व शक्ति के रूप में उभरे है। डायस्पोरा समुदायों की बढ़ती शक्ति ने विभिन्न मूल तथा गंतव्य देशों की आंतरिक व बाह्य सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिदृश्य को गंभीरता से प्रभावित किया है। इनकी सांस्कृतिक साधन संपन्नता तथा प्रभावी स्थिति के कारण ही मूल देशों की विदेश नीति के साथ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निर्मित होने वाली नीतियों में भी डायस्पोरिक समुदायों के हितों को ध्यान में रखा जाता है। इसी का परिणाम रहा है कि विगत तीन दशकों से 'प्रवासी धर्म और संस्कृति' के संबंध में अध्ययनों की तीव्रता दर्ज की गई है। इन अध्ययनों की बढ़ती मात्रा के नैराश्य में 'वैश्विक सांस्कृतिक प्रवाह' की गतिकी रही है, जिसने संपूर्ण विश्व की पारिस्थितिकी को प्रभावित किया है। संचार साधनों की बढ़ती भूमिका के कारण आज भौगोलिक दूरी बहुत अधिक मायने नहीं रख रही है। आभासी रूप में स्थापित होने वाला 'सामाजिक–सांस्कृतिक नेटवर्क' लोगों को जोड़ने में सफल रहा है। सुदूर भौगोलिक निवास स्थान के पश्चात भी मनोभावों का प्रकटीकरण हो अथवा सांस्कृतिक पर्व–त्योहारों का प्रत्यक्षीकरण, सभी एक अलग सांस्कृतिक अनुभूति कराती है। इस आभासी अनुभूति ने एक तरफ संस्कृति को विस्तार दिया है तो दूसरी तरफ मूल से संबंध स्थापित करने तथा कृतज्ञता ज्ञापित करने का अवसर प्रदान किया है। सांस्कृतिक व्यवहारों के इस आदान–प्रदान ने डायस्पोरा के धार्मिक स्वरूप के निर्धारण के संबंध में एक नवीन विमर्श प्रारंभ कर दिया है। इस निर्धारण के गर्त में एक से अधिक कारणों को दर्ज किया गया है किंतु यहाँ प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'धर्म एवं डायस्पोरा का अध्ययन क्यों आवश्यक है?' इस प्रश्न के उत्तर के संबंध में स्मार्ट (1999) मुख्य रूप से तीन मत प्रकट करते है– प्रथम, प्रवासी धर्म और निवास स्थान के अनुकूलन का ज्ञान हो सकेगा, जिससे धार्मिक परिवर्तन के पैटर्न को समझा जा सकता है। दूसरा प्रवासी स्वयं मातृभूमि में धर्म के विकास को धन, शिक्षा और सांस्कृतिक हस्तांतरण के साथ–साथ धार्मिक–सांस्कृतिक सांगठनिक निर्माण को बल प्रदान करते हुए प्रभावित करता हो तथा तीसरा वे जाने–अनजाने में बहुलवाद को बढ़ावा दे रहे हो (वर्टोवेक, 2000: 08)।

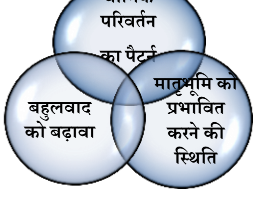

*सहायक प्रोफेसर, सामाजिक विज्ञान विभाग, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, कटनी (म.प्र.)

इन तीनों बिंदुओं में परिवर्तनकारी संभावनाओं की स्थिति को देखते हुए डायस्पोरा एवं धर्म का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है, जिससे यह पता लगाया जा सकता है कि डायस्पोरिक समुदाय धार्मिक, सांस्कृतिक परिवर्तन एवं उसके संरक्षण में किस हद तक उलझा हुआ है। इसी प्रकार क्लिफोर्ड (1992) 'ट्रेवलिंग कल्चर' में सांस्कृतिक गतिशीलता का वर्णन करते हुए लिखते है कि एक व्यक्ति के विस्थापन के साथ–साथ एक संस्कृति भी विस्थापित होती है। ऐसी स्थिति में अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक तथा स्थानीय विचार व्यवहार भी स्थान परिवर्तन करते हैं।' यह स्थान परिवर्तन अथवा विस्थापन जहाँ संक्रमण कालिक होता है वहीं गंतव्य में संघर्षमयी परिस्थितियों का संवाहक भी होता है। यह संघर्ष तब और भी जटिल हो जाता है जब यह 'अस्मिता निर्माण' के प्रश्न को संबोधित करना प्रारंभ कर देता है। उदाहरणस्वरूप मॉरीशसीय इतिहास की बहुसांस्कृतिक स्थिति, भारतीय से इंडो–मॉरीशियन बनने की प्रक्रिया तथा आंतरिक धार्मिक सुधार आंदोलन के क्रम में भारतीय संस्कृति (पौराणिक तथा आर्यसमाजियों के आपसी द्वंद) की समीक्षा एक परिवर्तनकारी स्थिति का वर्णन करता है। इसी प्रकार की स्थिति अन्य देशों (फ़िजी, सूरीनाम, गयाना आदि) में भी देखने को मिलती है। यह परिवर्तन जीविकोपार्जन के प्रश्न से प्रारंभ होकर अस्तित्व स्थापना (सांस्कृतिक पहचान) के प्रश्न तक आ पहुंचता है। अस्मिता निर्माण की इस प्रक्रिया में 'धर्म' एक प्रमुख तत्व के रूप में उभरकर सामने आता है और नृजातीय पहचान की निर्मिती करता है।

इसी संवाद को विस्तार देते हुए पत्रू (2021) 'रिलीजियस डायस्पोरा' की अवधारणा से संबंधित नवीन पक्षों को उजागर करने का प्रयास करती हैं इनका मानना है एक पौराणिक क्षेत्र का अस्तित्व, एक प्रवासी चेतना और लौटने की लालसा इन धार्मिक समुदायों को प्रवासी के रूप में माना जा सकता है। इसी प्रकार यदि मूल देश में स्थित धार्मिक रूप की लालसा प्रवासी रूप से रखते हैं और इन्हें नए रूप में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है तो इन रूपों से संबंधित लोगों के लिए वह (मूल देश) धार्मिक घर माना जा सकता है। इन्होंने धर्म और डायस्पोरा को अलग रूप में न मानते हुए 'धार्मिक डायस्पोरा' के विमर्श को विस्तार दिया है। यद्यपि इनके द्वारा अमेरिका तथा यूरोप के देशों को आधार बनाते हुए धार्मिक स्वरूप की व्याख्या की गई है किंतु प्रस्तुत व्याख्या धार्मिक आधार पर निर्मित डायस्पोरा समुदायों (जैसे– 'हिंदू डायस्पोरा', 'मुस्लिम डायस्पोरा' तथा अन्य) के आवश्यकता तथा महत्व को उजागर करने की दिशा में बल प्रदान करता है।

डायस्पोरा द्वारा धर्म व संस्कृति का संरक्षण :– प्रवासी समुदाय धर्म एवं संस्कृति का संरक्षण अपने सामाजिक–सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा नृजातीय पहचान को बनाए रखने के लिए करता है, किंतु यह संगठित रूप से किया जाने वाला व्यवहार होता है। इस प्रक्रिया में अपनाई जाने वाली पद्धति में वह प्रायः मौलिक स्वरूप के अनुपालन को सुनिश्चित करता है। यद्यपि कुछ स्थानों पर इसमें संक्रियात्मक परिवर्तन को दर्ज किया गया है। किंतु सैकड़ों वर्षों बाद भी मूल स्वरूप से इसकी साम्यता इन्हें मूल संस्कृति तथा धर्म से निकटता से जोड़ती है। इसी के साथ–साथ वह अपने धर्म और उससे जुड़े धार्मिक व्यवहार, अर्चना, देशज ज्ञान, पारंपरिक वस्त्र, भोजन, लोक कथा तथा संगीत आदि का हस्तांतरण विभिन्न कार्यक्रमों, उत्सवों के माध्यम से नई पीढ़ी में करते हैं। इसी सांस्कृतिक विरासत के हस्तांतरण तथा पारदेशियता ने वैश्विक सांस्कृतिक प्रवाह के नवीन आयामों की निर्मिती की। अप्पादोराई (1996) ने 'मोडरनिटी एट लार्ज: कल्चर डाईमेनसंस ऑफ़ ग्लोबलाइजेशन' में वैश्विक सांस्कृतिक प्रवाह के लिए जिम्मेदार पांच कारकों को रेखांकित करते हुए लिखा है कि 'राष्ट्र राज्य की भावना, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, डायस्पोरिक समुदाय, विभिन्न सांगठनिक आंदोलन, आस–पास का वातावरण सांस्कृतिक प्रवाह को गति प्रदान करता है।' इन्होंने जिन पाँच आयामों के विषय में बताया है, वह निम्नवत हैं–

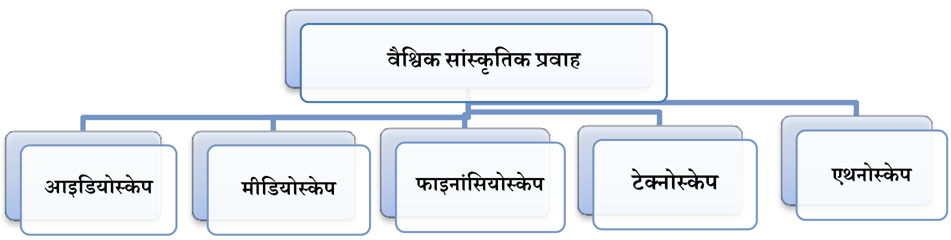

उपर्युक्त रेखाचित्र में प्रस्तुत 'वैश्विक सांस्कृतिक विस्तार' में प्रवासित समूह और उनके द्वारा सांस्कृतिक प्रवासन की क्रिया पर ज़ोर दिया गया है, जिससे वास्तव में प्रवासन के माध्यम से सांस्कृतिक विस्तार का एक अवसर प्राप्त हुआ है। एथनोस्केप्स और मीडियास्केप्स के माध्यम से इस बात को सत्यापित करने

का प्रयास किया है कि वैश्वीकरण और तकनीकी विकास ने लोगों के जीवन को आसान बनाया है। तकनीकी विकास और संचार साधनों ने इस कार्य में वैश्विक स्तर पर एक पटल (प्लेटफॉर्म) उपलब्ध कराया; आर्थिक व्यवहार (पूंजी का आदान प्रदान) सभी कार्यों के मध्य में होता है, इसलिए वैश्विक अर्थव्यवस्था के स्वरूप में भी परिवर्तन आया है। अप्पादोरई (1996) का मानना है कि इन सब के योग ने विभिन्न देशों के मध्य राजनीतिक संबंधों में सांस्कृतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा दिया है। इसी के साथ–साथ ऑनलाइन मार्केटिंग तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ दोनों ही सांस्कृतिक विस्तार व बहुसांस्कृतिक समाज के निर्माण में भूमिका निभाती हैं।

डायस्पोरा का धर्म अथवा धार्मिक पहचान :– प्रौद्योगिकी तथा संचार माध्यमों द्वारा विभिन्न धर्मों का 'डिजिटलाइज' एवं 'ग्लोबलाइज' होना, इन समुदायों के लिए अत्यंत सहयोगी साबित हुआ है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में धार्मिक यात्राओं में वृद्धि देखी जा सकती है, तीर्थयात्रियों के लिए तीर्थ यात्रा के अवसर बढ़े हुए है (कोहेन, 2008)। इस तरह की पारिस्थितिकी ने 'बहुसंस्कृतिवाद' और 'बहुधर्मवाद' को न सिर्फ जन्म दिया बल्कि सिंचित भी किया है। ध्यातव्य है कि डायस्पोरा समुदाय अनिश्चितता से भरा हुआ है; कभी यह धर्म जातीयता के संदर्भों से जुड़ा दिखाई पड़ता है तो कभी अलग संदर्भों में। इसी प्रकार कई बार 'राष्ट्रीयता' को भी प्रवासियों का धर्म माना जाता है; उदहारणस्वरूप 'भारतीय डायस्पोरा' शब्द में प्रवासी नागरिकों का एक धर्म, एक नागरिकता, एक पहचान प्रदर्शित होता है लेकिन इनकी आंतरिक संरचना में भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक वैविध्यता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मॉरीशस में भारतवंशी समुदाय का अवलोकन, 'राष्ट्रीयता' अर्थात 'मुझे गर्व है कि मै मॉरीशियन हूँ' के भाव के साथ 'गर्व से कहो की मैं हिंदू हूँ' तथा 'क्रियोल संस्कृति' के अनुपालन के मध्य 'हिंदू, मुस्लिम तथा क्रिश्चियन पद्धति से धार्मिक अभ्यास', इनके धार्मिक स्वरूप तथा राष्ट्रवाद जैसे संदर्भों के मध्य यह सुनिश्चित करने में कठिनाई पैदा करता है कि वास्तव में यह किसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इसी प्रकार यूरोप तथा अमेरिका में निवास करने वाले भारतीय डायस्पोरा के मध्य सांस्कृतिक द्वंद के कारण धर्म अथवा धार्मिक पहचान निर्धारित करना कठिन है। जीवन पद्धति में वे गंतव्य तथा मूल दोनों पद्धतियों के अनुपालन से एक नवीन संस्कृति को जन्म देते दिखाई पड़ते हैं किंतु संगठित रूप में वह मूल संस्कृति के प्रतिनिधित्वर्ता के रूप में उभरकर सामने आते हैं। किंतु इनका सूक्ष्म अवलोकन इन्हें विविध धार्मिक पहचान प्रदान करता है। इसी कारण से वह अपने अथवा मूल देश में बहु–पक्षीय पहचान को धारण किए हुए है।

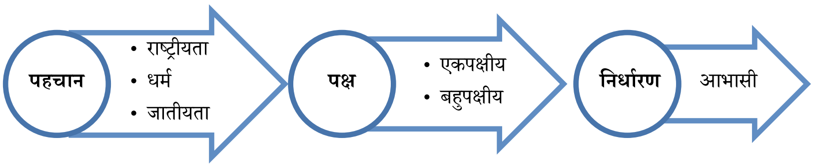

इसी संदर्भ में वर्टोवेक (2000) 'रिलीजन एंड डायस्पोरा' में तर्क देते हैं कि, 'धर्म और जातीयता के अंतरसंबंध को 'डायस्पोरिक धर्म' माना जाना चाहिए।' इनका मानना है कि 'वर्तमान वैश्विक संदर्भों में तेजी से हुए बदलवों ने 'धर्म' और 'प्रवासी' के मध्य संबंधों के पैटर्न में बहुत तेजी से बदलाव किया है, अब डायस्पोरिक समुदाय मातृभूमि से जुड़े रहने के साथ ही अपने होस्टलैंड में स्थायी धार्मिक स्थान यथा–मंदिर, मस्जिद व चर्च आदि का निर्माण करके अपने धार्मिक पहचान को सुरक्षित करने का प्रयास करता है और इसके साथ ही वह धार्मिक, सांस्कृतिक रूप से अपने मूल भूमि से और अधिक जुड़े रहने का प्रयास करता है।' इसी विमर्श को विस्तार देते हुए कोहेन (2008), पत्रू (2021) तथा अन्य विद्वानों ने धर्म और डायस्पोरा के मध्य के संबंध को 'आभासी प्रकार' का संबंध माना है, जो प्रवासन के साथ ही आरंभ हो जाता है।

भारतीय डायस्पोरा एवं धार्मिक अभ्यास प्रणाली का अंतरसंबंध :– प्रवासी भारतीय समुदायों का सूक्ष्म अवलोकन विदेशों में भारतीय समाज एवं संस्कृति की वैविध्यता के दर्शन कराते है। इस विशिष्ट सांस्कृतिक संरचना के कारण प्रवासी भारतीय मूल के लोगों ने स्वयं को भारतीय होने के नाते संगठित किया है। भारतीय मूल की वैश्विक पहचान को धारण करने के साथ–साथ विविध रूपों (हिंदू, मुस्लिम, सिख, जैन, पारसी, क्रिश्चियन तथा बौद्ध आदि) में धार्मिक अभ्यास किया जाता है। इस धार्मिक अभ्यास के अनुपालन में इन समुदायों द्वारा एक से अधिक मत एवं संप्रदाय के साथ संबद्धता देखी जा सकती है। उदाहरण स्वरूप मॉरीशस में भारतीय मूल के लोग हिंदू धर्म के पौराणिक और आर्य समाजी, मुस्लिम धर्म के लोग शिया और सुन्नी के रूप में अलग–अलग अभ्यास प्रणाली का आयोजन करते दिखाई पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त यह

विभाजन सिर्फ हिंदू या मुस्लिम तक सीमित नहीं है अपितु शैव, वैष्णव, कबीर पंथी, रामकृष्ण मिशन आदि रूपों तथा क्षेत्र एवं भाषाई संबद्धता के आधार पर मराठी, बिहारी, कलकतिया, उड़िया आदि रूपों में स्थानीय रीति–रिवाजों एवं परंपराओं (मूल) का निर्वहन करते भी दिखाई पड़ता है। इसी के साथ–साथ गंतव्य की सामाजिक–सांस्कृतिक तथा धार्मिक वातावरण के प्रभाव को उनके धार्मिक अभ्यास में देखा जा सकता है। एक बड़ी संख्या में विदेशों में भारतीयों द्वारा ईसाई धर्म में परिवर्तित होना, गंतव्य के अनेक प्रलोभनों तथा परिवेश का ही परिणाम है। मन, वचन एवं कर्म से भारतीय जीवन पद्धति (अभ्यास प्रणाली) से विमुख होने के बाद भी भारतीय मूल की पहचान से संबोधित किया जाना एक विशिष्ट स्थिति को दर्शाता है। भारतीय डायस्पोरा के आरंभिक दौर में यह धार्मिक विभाजन देखने को नहीं मिलता है। पारिख (1994) ने इसके लिए तीन प्रमुख कारण बताए थे,

- भारतीय गिरमिटिया प्रवासन विषम परिस्थितियों में हुआ था, उनके सामने मात्र जीवित रहने के लिए संघर्ष था।
- जात–पात, भेद–भाव, ऊंच–नीच, छुआ–छूत जैसे अनेक बंधनों से मुक्त उनकी एक मात्र नृजातीय पहचान थी कि वे सभी गिरमिटिया थे। इस कारण वे एक दुर्दांत जीवन जीने के लिए विवश थे।
- उनके सामने परिवार निर्माण की भी चुनौती थी।' इन चुनौतियों के मध्य ईश्वर उपासना एकमात्र संबल देने वाला कार्य था।

भारतीय समाज एवं संस्कृति का आशावादी दृष्टिकोण 'जिसका कोई नहीं उसका प्रभु होता है और वही इन कष्टों से मुक्ति दिला सकता है...' यह आम धारणा इन समुदायों के लोक कथाओं में आज भी देखने को मिलती है (मॉरीशस में क्षेत्र कार्य के दौरान)। इसी का परिणाम था कि उपासना में उनके द्वारा 'रामायण' का पाठ आरंभ किया गया। अब रामायण ही उनके जीवन का सबसे बड़ा परामर्शदाता बन गया। एक लम्बी अवधि तक डायस्पोरा समुदायों के बीच इसी प्रकार की स्थिति देखने को मिलती है। आंतरिक सामाजिक–सांस्कृतिक सुधार तथा दीर्घ कालिक संघर्ष का परिणाम था कि वे संगठित रूप से नृजातीय पहचान की निर्मिती में सफल हो सके। इस संदर्भ में एक व्यापक धार्मिक अभ्यास के इतिहास को देखा जा सकता है, इनका यह संघर्ष काफी हद तक एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न था। किंतु एक साम्यता थी कि इस पहचान निर्माण की प्रक्रिया में धर्म ने अहम भूमिका निभाई। इनके धार्मिक रूप से संगठित स्वरूप ने कई देशों की शासन सत्ता प्राप्त करने में सहयोग किया। इसी के सापेक्ष यदि स्वतंत्रता पश्चात हुए प्रवासन पर दृष्टि डाले तो प्रवासन की दिशा, स्थिति एवं स्वरूप पूर्णतया भिन्न था। इन भारतीय प्रवासियों के सम्मुख गिरमिटिया श्रमिकों जैसी परिस्थितियां नहीं थी। अपितु पारिस्थितिकी विभेद के कारण इनकी समस्याएं, स्वरूप तथा लक्ष्य भिन्न थे। इनके मध्य व्याप्त अंतर को परिभाषित करने के क्रम में भारतीय डायस्पोरा विशेषज्ञों द्वारा पुराना डायस्पोरा तथा नया डायस्पोरा जैसे संबोधन/अवधारणा का प्रयोग किया गया। किंतु इनके मध्य जो सकारात्मक समानता दिखाई पड़ती है वह भारतीय धर्म एवं संस्कृति का अनुपालन। यद्यपि इसके अभ्यास, प्रत्यक्षीकरण तथा अंतिम लक्ष्यों में पर्याप्त रूप से भिन्नता है, किंतु इन दोनों द्वारा सामूहिक रूप से भारतीय संस्कृति तथा धर्म को वैश्विक विस्तार दिया है। जो यह दर्शाता है कि धार्मिक अभ्यास, मातृभूमि से लगाव तथा भावनाओं के संदर्भ में एक निकट संबंध है। किंतु जटिलता तथा वैविध्यता का परिणाम है कि भारतीय डायस्पोरा के मध्य किसी निश्चित धार्मिक अभ्यास के एकाकी स्वरूप को मान्यता नहीं दी जा सकती बल्कि भारतीय मूल की वैश्विक पहचान के रूप में संबोधित किया जा सकता है।

विश्व के अन्य देशों के डायस्पोरा समुदायों के धर्म अथवा धार्मिक अभ्यास प्रणाली के अध्ययन में प्रायः इतनी जटिलताएं देखने को नहीं मिलती। इस लिए इनके एक निश्चित स्वरूप को आंशिक प्रभावों के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। किंतु यह अवश्य देखने को मिलता है कि किसी भी डायस्पोरा समुदाय का धार्मिक स्वरूप संबंधित होस्टलैंड की राजनीति के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय राजनितिक परिदृश्य को प्रभावित करता है। उदाहरणस्वरूप अमेरिका के आम चुनावों में नृजातीय समुदायों का वोट बहुत अधिक मायने रखता है। इसी प्रकार गिरमिटिया देशों जैसे– मॉरीशस, सूरीनाम, फ़िजी आदि देशों में धार्मिक स्वरूप राजनीतिक परिदृश्य को प्रभावित करता है। इसी प्रकार भारत में घटने होने वाली किसी सामाजिक–धार्मिक घटना के प्रति भारतीय डायस्पोरा समुदायों का रोष अथवा समर्थन व्यापक रूप से देखने को मिलता है। इससे वे स्वयं को जोड़ते दिखाई पड़ते है। इसी का परिणाम है कि वैश्विक पटल पर भारत विरोधी किसी भी गतिविधि या परिस्थितयों के उत्पन्न होने पर उनका प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष समर्थन भारत को प्राप्त होता है। इसी प्रकार 1990 की आर्थिक मंदी के दौर में अपनी मातृभूमि पर आए संकट में इन प्रवासी भारतीय/ भारतवंशियों द्वारा बड़ी मात्रा में आर्थिक निवेश किया गया। एक अन्य घटना जो आतंकवाद को संबोधित करती है उसमें पाकिस्तान का वैश्विक रूप से विरोध भी प्रवासी भारतीयों द्वारा किया गया। आर्थिक निवेश के साथ–साथ

इनके द्वारा एक बड़ी संख्या में अपने–अपने तीर्थों की यात्रा (वाराणसी, चार धाम, विनायक मंदिर तथा दक्षिण भारतीय धार्मिक स्थलों) की जाती है, जो सांस्कृतिक प्रवाह के क्रम में विस्तार करती है। मॉरीशस में क्षेत्र कार्य के दौरान तमाम ऐसे वृतांत सुनने को मिले, जिसमें मरने से पहले धार्मिक स्थलों अथवा अपनी पूज्य मातृभूमि के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त की गई। भारतीय डायस्पोरा की धार्मिक–सांस्कृतिक अब्यास प्रणाली तथा परिवर्तन की स्थिति को निम्न रेखाचित्र के आधार पर समझा जा सकता है–

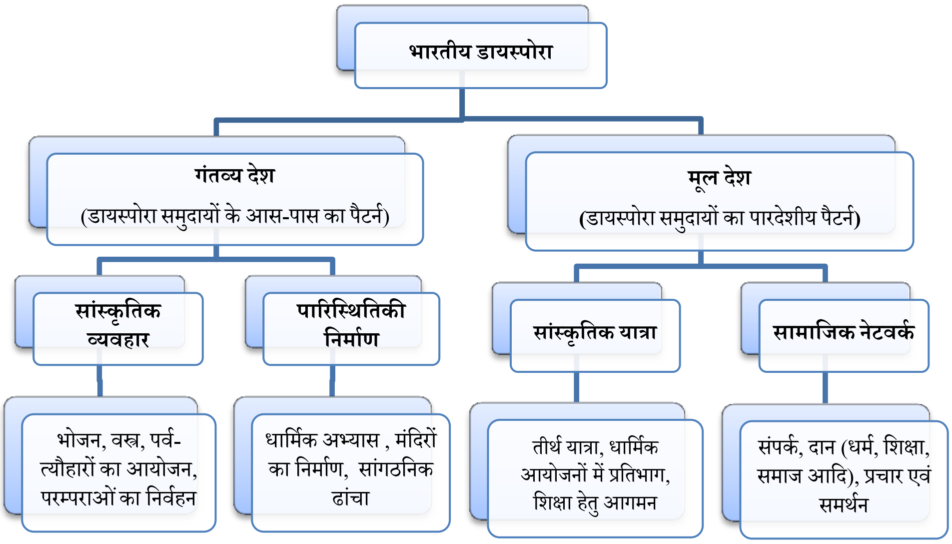

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि डायस्पोरा समुदायों के आस–पास का पैटर्न जहाँ उन्हें धार्मिक अभ्यास से जोड़ता है, वही पारदेशीय पैटर्न 'नेटवर्क' स्थापित करने की दिशा में अग्रसर करता है। वैश्विक 'पहचान' तथा 'प्रभुत्व' स्थापना में डायस्पोरिक समुदायों को एक विशिष्ट पहचान दिलाने का कार्य भी धर्म ने किया है। यह पहचान न केवल उन्हें विशिष्ट पहचान प्रदान करता है बल्कि विभिन्न साधनों से भी जोड़ता दिखाई पड़ता है। विश्व इतिहास का अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि किसी भी राष्ट्र की स्थापना से लेकर वर्चस्व स्थापना तक 'धर्म' एक प्रमुख तत्व रहा है, जिसने लोगों को संगठित करने से लेकर, उन्हें एक छाते के नीचे आने के लिए प्रेरित किया। इसीलिए डायस्पोरा को परिभाषित करने के क्रम में विद्वानों ने 'सांस्कृतिक पहचान' तथा 'स्व के जुड़ाव' में धार्मिक संबद्धता (मूल देश से) को प्रमुख स्थान दिया है। यह सांस्कृतिक पहचान गंतव्य में उनके मूल को संरक्षित करने की दिशा में कार्य करता है। इसी सांस्कृतिक पहचान का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण डायस्पोरा समुदायों के मौलिक आवश्यकताओं को संदर्भित करता रहता है।

संदर्भ सूची :–

1. Vertovec, S. (2000). Religion and Diaspora. Paper presented at the conference on *'New Landscapes of Religion in the west', School of Geography and the Environment, University of Oxford*.)27-29 September, 2000(. http://www.transcomm.ox.ac.uk/working%20papers/Vertovec.01PDF
2. Smart, Ninian. (1999). The Importance of Diaspora. *In Migration, Diaspora and transnationalism, steven vertovec and robin cohen (eds)*. Aldershot: Edward elgar. https://www.e-elgar.com/shop/gbp/migration-diasporas-and-transnationalism-.9781858988696html
3. Clifford, J.. (1992). *Traveling Cultures*. (eds) New York: Routledge.
4. Patru, A. (2021). Religion Diaspora: A New Approch to Its Existence and Meaning. Religions 12 : 831. https://doi.org/10.3390/rel12100831
5. Appadurai, A. (1996). *Modernity at large: Cultural dimensions of globalization7) th ed.(*. London: university of Minnesota press. https://is.muni.cz/el/fss/jaro2017/SAN106/Arjun_Appadurai_ModernityatLarge1996.pdf
6. Cohen, R.. (2008). *Global Diasporas An Introduction* (2nd edi.). Ney York: Routledge.
7. Parikh, B.. (1994). Some Reflection on the Hindu Diaspora. New Community 20: 603-620.https://doi.org/10.1080/1369183X.1994.9976456
8. वर्मा, मोनिका, (2023) मॉरीशस में भारतवंशियों के उत्थान पर आर्य समाज का प्रभाव (1903 से 1968 ई.) (अप्रकाशित पी.एचडी. शोध प्रबंध). प्रवासन एवं डायस्पोरा विभाग, म.गां.अं.हिं.वि.वि. वर्धा।

℘★☙

भट्टोजिदीक्षितनागेशभट्टाभिमतकारकलक्षणसमीक्षा

डॉ. नीरजकुमारभार्गवः*

भूमिका – संसारेऽस्मिन् सर्वमपि कार्यजातं कारकाधीनं वर्तते। कारकं च किमिति? विषये दार्शनिकाः परस्परं विवादं समाचरन्ति। तत्र वैयाकरणेषु भट्टोजिदीक्षिताः करोति स्वसम्बन्धेन क्रियायां विशेषरूपतामापादयति इति व्युत्पत्तिं स्वीकृत्य 'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' इति कारकसामान्यलक्षणमभ्युपगच्छन्ति। नागोजिभट्टाश्च करोति क्रियां निर्वर्त्तयति इति व्युत्पत्तिं स्वीकृत्य 'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्' इति कारकसामान्यलक्षणं प्रतिपादयन्ति।

अत्र समुपस्थितयोरुभयोः पक्षयोः यथामति समीक्षणात्मको विचारः प्रस्तूयते। अपि चोभयोः पक्षयोः युक्तः कः? इत्यपि यथाशास्त्रं यथामति विचार्यते।

अत्र भट्टोजिदीक्षिताः – करोति स्वसम्बन्धेन क्रियायां विशेषरूपतामापादयति इति व्युत्पत्तेः महासंज्ञया 'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' इति कारकसामान्यलक्षणं स्वीकुर्वन्ति। अथवा कारके इति सूत्रे करोति कर्तृकर्मादिव्यपदेशान् इति व्युत्पत्या कारकशब्दः क्रियापरः। तेन कारके इत्यस्य क्रियायाम् इत्यर्थः। अत एवोक्तं महाभाष्ये 'यावद् ब्रूयात् कारके तावद् ब्रूयात् क्रियायाम्' इति। अन्वेति पदञ्चात्राध्याह्रियते तथा च यत् क्रियायाम् अन्वेति इति सूत्रार्थो भवति। एवं च सूत्रार्थानुरोधेनापि क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् इति लक्षणं समायाति। तथा चोक्तं भट्टोजिदीक्षितेन ''अन्वर्था चेयं संज्ञा करोतीति कारकमिति''।[1] एवमग्रे तैरुक्तम् ''यद्वा कारकशब्दः क्रियापरः करोतीति कर्तृकर्मादिव्यपदेशान् इति व्युत्पत्या तथा च अपादानादिसंज्ञाविधौ क्रियायामित्यस्योपस्थित्या क्रियान्वयिनामेव तत्तत्संज्ञाः स्युः''।[2] एवं चोक्तप्रामाण्येन क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् इति लक्षणं प्रतिफलितम्। तत्र अन्वयित्वं कारकत्वम् इत्युक्तौ राज्ञः पुरुषः इत्यादौ नामार्थान्वयिनः राज्ञः अपि कारकत्वापत्तिरतस्तद्वारणाय क्रियापदमुपात्तम्। तथा च न दोषः।

अत्र केचन वदन्ति यत् 'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' इति लक्षणं न युक्तम्। तथा स्वीकारे 'कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च' इत्यादौ कान्तस्य क्रियायामन्वयेन षष्ठ्यर्थस्यापि कारकत्वापत्तिः। यद्यत्र दोषवारणाय षष्ठ्यर्थभिन्नत्वम् इति पदं विनिवेश्य 'षष्ठ्यर्थभिन्नत्वे सति क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' इति लक्षणे स्वीक्रियमाणे 'कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति' इत्यादौ कान्तस्य क्रियायामन्वयेऽपि षष्ठ्यर्थभिन्नत्वाभावेन न कारकत्वापत्तिः। परन्तु एवं सति तण्डुलस्य पाकः इत्यादौ तण्डुलस्यापि षष्ठ्यर्थभिन्नत्वाभावेन कारकत्वं न स्यात्, इष्यते च तस्य कारकत्वम्। यतोहि अत्र 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्रेण कर्मणि षष्ठी विहिता अतस्तेन सूत्रेण विहिता षष्ठी कारकषष्ठी इत्युच्यते। अतः षष्ठ्यर्थभिन्नत्वनिवेशेऽपि दोषः। तस्मादुक्तदोषवारणाय 'कृद्युक्तान्यषष्ठ्यर्थभिन्नत्वे सति क्रियान्वयित्वम् कारकत्वम्' इति लक्षणं स्वीकर्तव्यम्, इत्युच्यते चेत्तदा तण्डुलस्य पाकः इत्यत्र तण्डुलपदोत्तरा या षष्ठी–सा कृद्युक्ता–न तु कृद्युक्तान्या। अतः विशेषणप्रयुक्तविशिष्टाभावः इति नियमेन तत्र कृद्युक्तान्यषष्ठ्यर्थभिन्नत्वमस्ति किञ्च क्रियान्वयित्वमपि तत्रास्ति अतस्तत्र कारकत्वं सेत्स्यति। किन्तु एवं प्रकारेण 'तण्डुलस्य पाकः' इत्यादौ दोषवारणेऽपि न निस्तारः। यत्र कृद्योगे 'शेषे षष्ठी' सूत्रेण सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी तत्रातिव्याप्तिः। यथा 'समर्थः पदविधिः' सूत्रे विधिशब्दः कर्मसाधनः तद्योगे पदानाम् इत्यत्र सम्बन्धसामान्यविवक्षायाम् 'शेषे षष्ठी' सूत्रेण षष्ठी। अत्र यद्यपि सम्बन्धे षष्ठी तथापि कृद्योगस्तु अस्त्येवात्र, अतः 'पदानाम् विधिः' इत्यत्र 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्रेणाऽविहिताऽपि कृद्युक्ता एव न कृद्युक्तान्या। अतोऽत्रापि कृद्युक्तान्यषष्ठ्यर्थभिन्नत्वमस्ति षष्ठीविभक्तौ किञ्च तस्य विधानक्रियायामन्वयोऽप्यस्ति, तस्माद् अत्राऽपि षष्ठ्यर्थस्य कारकत्वापत्तिः। एवमन्यत्रापि एवं भूतस्थलेषु दोषो बोध्यः। यदि चात्र दोषवारणाय 'कृद्युक्तान्यषष्ठ्यर्थभिन्नत्वे सति' इति सत्यन्तविशेषणं परित्यज्य 'धात्वर्थेतरान्वयायोग्यत्वे सति' इति विशेषणं च प्रदाय 'धात्वर्थेतरान्वयायोग्यत्वे सति क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' इति लक्षणं स्वीक्रियते चेत्तदा नोक्तदोषः, शेषषष्ठ्यर्थस्य सम्बन्धस्य धात्वर्थेतरनामार्थादावपि अन्वयदर्शनेन तत्र धात्वर्थेतरान्वयायोग्यत्वाभावात्। परन्तु एतल्लक्षणमपि न युक्तम् अन्योन्याश्रयदोषग्रस्तत्वात्। तथाहि धात्वर्थेतरान्वयायोग्यत्वन्नाम धात्वर्थेतरान्वययोग्यभिन्नत्वम्, तच्च कारकान्यत्वमेव, कारकान्यत्वञ्च कारकभिन्नत्वम्।

***सहायकाचार्यः, संस्कृतदर्शनविभागः, रामकृष्णमिशन्विवेकानन्दशैक्षणिकशोधसंस्थानम्, बेलुडमठः, हावडा।**

एवं च 'अभावज्ञानं प्रति प्रतियोगिज्ञानं कारणम्' इति नियमेन कारकभिन्नत्वस्य ज्ञानाय पूर्वं कारकत्वस्य ज्ञानमपेक्षितम्। तथा च धत्वर्थेतरान्वयायोग्यत्वस्वरूपकारकत्वस्य ज्ञानं धात्वर्थेतरान्वययोग्यत्वस्वरूपकारकान्यत्वज्ञानाधीनम्, धात्वर्थेतरान्वयोग्यत्वस्वरूपकारकान्यत्वस्य च ज्ञानं धात्वर्थेतरान्वयायोग्यत्वस्वरूपकारकत्वज्ञानाधीनम्। अत उभयोः परस्पराधीनत्वेनान्योन्याश्रयः स्पष्टः। एवं च प्राचीनवैयाकरणाभिमतकारकलक्षणे दोषं प्रदर्श्य तस्यासमीचीनत्वं प्रतिपादयन्ति।

अत्र समाधानम् – परन्तु यैः शास्त्रज्ञैः ये दोषाः 'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' इति लक्षणे समुद्भाविताः ते अविचिन्त्यैव तैः दर्शिताः अतो ते न दोषकराः। तथाहि क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् इति लक्षणे स्वीकारे 'कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च' इत्यत्र षष्ठ्यर्थस्य क्रियायामन्वयेन कारकत्वापत्तिः इत्युक्तं तैः। परन्तु एवं प्रकारेण तत्र दोषदानं न युक्तम्। यतोहि तत्र 'भोगाय' पदमध्याहृत्य 'कुमार्य इव कान्तस्य भोगाय त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च' इति व्याख्यानेन तत्र षष्ठ्यर्थस्य नामार्थे एवान्वयस्य सत्वेन अदोषात्। अथवा विभक्तिविपरिणामेन 'कुमार्य इव कान्ताय त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च' इति व्याख्यानेनापि न दोषः। तथा चोक्तं भट्टोजिदीक्षितेन ''कुमार्य इवेत्यत्र तु विभक्तिविपरिणामेन कान्ताय स्पृहयन्तीति व्याख्येयम्''।[3] श्रीनागेशभट्टेनापि स्पृहेरीप्सितः सूत्रव्याख्यानप्रसङ्गे ''अन्ये तु भोगाय इत्यध्याहृत्य कान्ताय इति विभक्तिविपरिणामेन वा व्याख्येयमित्याहुः''।[4]

अत्रायं विशेषः 'शेषे षष्ठी' इति सूत्रेण शेषे षष्ठी भवति। तत्र को नाम शेषः इति चेदत्रोच्यते 'उक्ताद्–योऽन्यार्थः' सः शेषः। तत्र 'कर्मणि द्वितीया' 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' 'चतुर्थी सम्प्रदाने' 'अपादाने पञ्चमी' 'सप्तम्यधिकरणे च' 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' इत्यादिभिः सूत्रैः कर्मादयः अर्थाः अभिहिताः तेभ्यो यो ह्यन्यार्थः स्वस्वामिभावरूपादिसम्बन्धः स एव शेषः।[5] अत एवोक्तं भट्टोजिदीक्षितेन ''कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषः'' तत्रैव च षष्ठी भवति। परन्तु अत्रेदं विचारणीयं यन्नहि कश्चनापि कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तोऽर्थोऽस्ति। अत एवोक्तं कैयटेन महाभाष्ये 'शेषे षष्ठी' सूत्रव्याख्यानावसरे प्रदीपे ''किमप्रधानं शेषः, अत उपयुक्तादन्यः शेषः। पूर्वस्मिन्पक्षे सर्वेषां कारकाणां क्रियार्थत्वाच्छेषत्वमिति तत्रापि षष्ठीप्रसङ्गः, सर्वत्रापि कर्मादीनां सद्भावादुत्तरोऽपि शेषार्थो न प्रकल्प्यते''।[6] अतो महाभाष्यकारेणाप्युक्तम् ''नहि कर्मादिभ्योऽन्येऽर्थाः सन्ति इह तावत् 'राजपुरुषः' इति राजा कर्ता पुरुषः सम्प्रदानम्''।[7] अत एव भाष्यस्यास्य तात्पर्यं प्रकटयन्नाह कैयटः ''क्रियामन्तरेणासम्बन्धात् सर्वत्र तस्या अवश्यं भावात् तन्निमित्तस्य च कर्मादेरिति भावः। किञ्च ''राजा कर्ता पुरुषः सम्प्रदानम्''[8] इति प्रतीकमुपादाय तेनोक्तम् ''राजा पुरुषाय ददाति''[9] इत्यर्थसम्प्रत्ययात् एवं चोक्तभाष्यप्रामाण्येन कैयटप्रामाण्येन चात्र निष्कर्षतया वक्तुं शक्यते यन्नहि कारकादतिरिक्तः कश्चनार्थः। वाक्यपदीयकारेण भर्तृहरिणाऽपि वाक्यपदीये साधनसमुद्देशनामकप्रकरणे सम्बन्धस्वरूपप्रतिपादनप्रसङ्गे प्रोक्तम्

सम्बन्धः कारकेभ्योऽन्यः क्रियाकारकपूर्वकः।
श्रुतायामश्रुतायं वा क्रियायां सोऽभिधीयते।। (156)

अर्थात् क्रियाकारकपूर्वकः कारकेभ्योऽन्यो यः सम्बन्धः सः श्रुतायाम् अश्रुतायां क्रियायाम् अभिधीयते। तत्राश्रुतायां राज्ञः पुरुष इत्यादौ क्रियाकारकसम्बन्धपूर्वकोऽन्य एव स्वस्वामिभावादिकः सम्बन्धः प्रतीयते। मातुः स्मरतीत्यादौ तु श्रूयमाणे क्रियाशब्दे सदपि कर्मत्वमविवक्षित्वा विशेषभाव एव स्मरणं प्रति मातुः प्रतिपाद्यते–मातृसम्बन्धिस्मरणमिति।

अत्र क्रियाकारकपूर्वकः इत्यनेन कारिकांशेन सम्बन्धः पूर्वं कारकमेवेति समायाति। तथाहि राज्ञः पुरुषः, वृक्षस्य शाखा, पशोः पादः, पितुः पुत्रः, इत्यादावश्रूयमाणनानाविधक्रियाविषये यथाक्रमं स्वस्वामिभावावयवावयविभावजन्यजनकभावादिरूपे सम्बन्धे यथाक्रमं ददातिस्थितिजन्यादिक्रियाप्रयुक्तं कारकत्वं स्पष्टमेव।

अयम्भावः– 'राज्ञः पुरुषः इत्यत्र राजा कर्ता पुरुषः सम्प्रदानम्' राजा पुरुषाय धनं ददातीत्यर्थसम्प्रत्ययात्। यतोहि स्वत्वं चतुर्भिः प्रकारैः भवति याञ्चायाः, क्रमणात्, अपहरणात्, परिवर्तनात्। यथा 'राज्ञः पुरुषः' इत्यत्र याचनात् पुरुषे स्वत्वम्। यदा पुरुषः राजानं याचते यत् मह्यं वेतनं ददातु, अहं तव कार्यं करिष्यामि तदा याचितो राजा पुरुषाय धनं ददाति, अतोऽत्र याचनेन राजनिरूपितं स्वत्वं पुरुषे, राज्ञः वस्त्रम् इत्यत्र क्रयणात् राजनिरूपितं स्वत्वं वस्त्रे। एवमेव कुत्रचित् अपहरणात् यथा कृष्णस्य भार्या रुकिमणीः इत्यत्र। यतोहि भगवता कृष्णेन रुकिमण्यापहरणं कृत्वा, तया सह परिणयः कृतः। कुत्रचित् परिवर्तनेन स्वत्वं समायाति। अतः सर्वत्रापि कारकत्वमस्ति। एवमेव वृक्षस्य शाखा

इत्यत्र वृक्षः कर्ता शाखा अधिकरणम् अवयवभूतायां शाखायां वृक्षोऽवयवी तिष्ठति इत्यत्र बोधनात्। एवमेव पशोः पादः इत्यत्रापि पशुः कर्ता पादोऽधिकरणम्। पितुः पुत्रः इत्यादावश्रूयमाणक्रियाविषये स्वस्वामिभावावयवावयविभावजन्यजनकभावादौ सम्बन्धे ददातिस्थितिजन्यादिक्रियाप्रभाविते पूर्वभाविकारकत्वम् इति। एवं तर्हि सर्वत्रापि कारकत्वमस्त्येव तथा च कः शेषः इति चेदुच्यते भगवता भाष्यकारेण ''एवं तर्हि कर्मादीनामविवक्षा शेषः''[10] एतस्य भाष्यस्य तात्पर्यं प्रकटयन्नाह कैयटः''क्रियाकारकसम्बन्धोऽपि सर्वत्र वस्तुस्थित्यास्ति तन्निमित्तश्च स्वस्वामिभावादिरपि। तत्र स्वस्वामिभावादिविवक्षायां सन्नपि क्रियाकारकसम्बन्धो न विवक्ष्यते''।[11] अयमाशयः यद्यपि सर्वत्र कारकत्वं क्रियाकारकभावसम्बन्धश्चास्ति तन्निमित्तश्च स्वस्वामिभावादिसम्बन्धोऽप्यस्ति। तथापि यद्यद् वस्तुस्थित्यास्ति तत्तदभिधातव्यमेवेति न नियमो यदेव विवक्षितं तदेव कायकृद् भवति। अतः 'कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च' इत्यत्र सम्प्रदानस्य अविवक्षायामत्र षष्ठी, अतस्तस्य क्रियायामन्वयेऽपि न क्षतिः, क्रियाकारकभावं विना षष्ठ्यसम्भवात्। अत एव वृक्षस्य शाखा इतिवत् पर्वतस्य वृक्षः, पर्वतस्य शाखा इत्यादयः प्रयोगा न भवन्ति। यतोहि वृक्षस्य शाखा इत्यत्र अवयवभूतायां शाखायामवयविवृक्षः तिष्ठति इत्यर्थेन आधाराधेयभावमूलको अवयवावयविभावसम्बन्धोऽस्ति, तस्मात्तत्र आधाराधेयभावसम्बन्धस्याविवक्षायाम् अवयवावयविभावसम्बन्धस्य विवक्षायां षष्ठीविभक्तिः भवति। पर्वतस्य वृक्षः इत्यादौ च न तथा आधाराधेयभावमूलकः कश्चन सम्बन्धोऽतो न तादृशप्रयोगः। तथा चोक्तं लघुमञ्जूषायां नागेशभट्टेन "अत एव पर्वतस्य वृक्ष इति न प्रयोगः। वृक्षपर्वतयोराधाराधेयभावमूलकसम्बन्धाभावात्''।[12] तस्मात् क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् इति लक्षणे कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च इति प्रयोगमादाय दोषदानं नैयायिकानामयुक्तमेव। एवं च कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च इत्यत्र दोषाभावेन अत्र दोषवारणाय षष्ठ्यर्थभिन्नत्वे सति विशेषणदानमपि निष्फलम्। एवं च तादृशविशेषणदाने सति तण्डुलस्य पाकः इत्यत्रागतस्य दोषवारणाय कृतं प्रयत्नमपि तेषां निष्फलमेव। तस्मात् क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् इति लक्षणे नैयायिकानां प्रवादोऽयुक्तः। अथवा क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् इत्यस्य स्थाने 'क्रियामात्रान्वयित्वं कारकत्वम्' इति लक्षणं वक्तव्यम्। तथा च षष्ठ्यर्थस्य न कारकत्वापत्तिः, तस्य 'कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च' इत्यादौ क्रियायामन्वयेऽपि राज्ञः पुरुषः इत्यादौ नामार्थेऽप्यन्वयस्य सत्वेन क्रियामात्रान्वयित्वाभावात्। अत एवोक्तं कलाटीकाकारेण ''क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् इति प्रतीकमुपादाय 'क्रियान्वयित्वमेव कारकत्वम्' अत एव तत्र ब्राह्मणस्य न कारकत्वं क्रियान्वयित्वाभावात्"।[13] अन्यथा सुन्दरं पुत्रं पृच्छति इत्यादौ सुन्दरादिविशिष्टस्य पुत्रस्य क्रियाव्याप्यत्वेन सुन्दरादीनां कर्मकारकत्ववत् ब्राह्मणसम्बन्धिपुत्रस्य विशिष्टस्य क्रियाव्याप्यत्वेन तस्यापि तत्त्वं स्यादिति।

अथ क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् लक्षणमिदं न युक्तम् 'कारकाणां भावनान्वयः' इति भाष्यवचनस्य 'घटत्ववतां घटत्ववता' इति वाक्यवद् अनर्थकत्वापत्तिः। उक्तलक्षणस्वीकर्तृणाम् अधिकरणस्य कारकत्वेन क्रियान्वयः इति स्ववाक्यस्यापि निरर्थकत्वापत्तिः। अयं भावः उद्देश्यतावच्छेदकरूपेण भाने सत्येव किञ्चिद् विधीयते। उद्देश्यतावच्छेदकविधेययोरैक्ये उद्देश्यतावच्छेदकस्य ज्ञातत्वात् तत्रापूर्वबोध्यत्वरूपविधेयत्वासम्भवः। यथा घटत्ववतां घटत्ववता इत्यत्र घटत्वस्यैवोद्देश्यतावच्छेदकतया तस्य विधेयत्वासम्भवेनान्वयबोधो न भवति। तथैव कारकाणां भावनान्वयः इत्यस्यापि क्रियान्वयिनां क्रियान्वयः इत्यर्थकत्वे क्रियान्वयित्वस्योद्देश्यतावच्छेदकतया तस्य विधेयत्वासम्भवात् 'कारकाणां भावनान्वयः' इति वाक्यस्य निरर्थकत्वापत्तिः। एवमेव 'अधिकरणस्य कारकत्वेन क्रियान्वयः' इत्यत्रापि ''अधिकरणस्य क्रियान्वयित्वेन क्रियान्वयः'' इत्यर्थेन अनन्वयापत्तिः। पौनरुक्त्यापत्तिश्च। अत एवोक्तं नवीनैः ''यथाश्रुतं तु न युक्तम्, कारकाणां भावनान्वयः इति वाक्यस्य घटत्ववतां घटत्ववता इत्येतत्तुल्यतापत्तेः।''[14] अन्यत्रापि प्रतिपादितं तैः ''क्रियान्वयित्वं कारकत्वमिति तु न कारकाणां भावनान्वयः इत्यस्य क्रियान्वयिनां क्रियान्वय इत्यर्थापत्त्याऽसंगत्यापत्तेः। अधिकरणस्य कारकत्वेन क्रियान्वय इत्यादिभवदीय व्यवहारासंगत्यापत्तेश्च''।[15] तस्मादिदं प्राचीनोक्तं लक्षणं न युक्तमिति वदन्ति नवीनाः। परन्तु नवीनानामत्र दोषदानं न युक्तम्।

'कारकपदस्य रूढत्वपक्षे संकेतसम्बन्धेन कारकपदवत्त्वस्य कारकपदज्ञाप्यतत्तच्छक्तिमत्त्वस्य वा रूढ्यर्थतावच्छेकतयान्वयबोधे बाधकाभावात्'।

आचार्यनागेशभट्टाः – आचार्याः नागेशाः 'करोति क्रियां निर्वर्त्तयति' इति व्युत्पत्त्यनुरोधेन 'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्' इति कारकलक्षणं स्वीकुर्वन्ति। अथवा 'कारके' इति सूत्रे 'करोति कर्तृकर्मादिव्यपदेशान्' इति व्युत्पत्या कारकशब्दो क्रियापरः, सप्तम्यर्थो निरूपितत्वम्, 'जनकत्पद्' पदं चात्राध्याह्रियते। तस्यैकदेशे जनकतायां निरूपितत्वस्यान्वयः,

शरैः शातितपत्रः इत्यत्रेव। तथा च क्रियानिरूपपितजनकतावद् इति सूत्रार्थो भवति, एवं च सूत्रार्थानुरोधेनापि क्रियाजनकत्वम् इति लक्षणं समायाति। अत्र लक्षणे प्रकृतसूत्रभाष्यमपि मानम्। तत्र हि ''कारक इति संज्ञानिर्देशश्चेत् संज्ञिनोऽपि निर्देशः कर्तव्यः साधकं निर्वर्तकं कारकसंज्ञं भवतीति वक्तव्यम्'' अयं तर्हि दोषः कर्म संज्ञाप्रसङ्गश्चाऽकथितस्य ब्राह्मणस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छतीति। नैष दोषः। कारक इति महती संज्ञाक्रियते। संज्ञा च नाम यतो न लघीयः कुत एतत्?, लघ्वर्थं हि संज्ञाकरणम्। तत्र महत्याः संज्ञायाः करणे एतत्प्रयोजनम् अन्वर्था संज्ञा यथा ''विज्ञायेत करोतीति कारकमिति इति''[16] भाष्यकारेणोक्तम्। तत्र करोति इत्यस्य निष्पादयति निर्वर्तयति जनयति वार्थः। तत्र किं निष्पादयतीति साध्यजिज्ञासायां क्रियैव सम्बध्यते। अतोऽनेन भाष्येण 'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्' इति लक्षणं प्रतिफलति। अत एव कैयटेनापि 'करोतीति कारकमिति' प्रतीकमादाय उक्तम् ''साध्यत्वेन क्रियैव शब्दात्प्रतीयते इति क्रियायाः निर्वर्तकस्य कारकसंज्ञा अपादानादिसंज्ञा च प्रवर्तते''।[17] एवमग्रेऽपि भाष्यकारेणोक्तम् ''एवं तर्हि सामान्यभूता क्रिया वर्तते। तस्य निर्वर्तकं कारकमिति''।[18]

एवं च क्रियाजनकत्वं कारकत्वम् इति स्थितम्। अत एवाह नागेशः स्वमतं कारकत्वं क्रियाजनकत्वम्। तत्र क्रियाजनकत्वं नाम क्रियानिष्ठजन्यतानिरूपितजनकताश्रयत्वम्। अत्र क्रियापदेन व्यापारस्यैव ग्रहणम्। क्रियते इति व्युत्पत्त्या क्रियायाः फलम् अप्यर्थः। एवं च क्रियापदेनात्र फलस्य कथं न ग्रहणमिति तु नाशङ्कनीयम्। यतोहि योगात् क्वचित् क्रियापदेन फलार्थस्य ग्रहणेऽपि योगरूढ्यात्र व्यापारस्यैव ग्रहणम्।

व्यापारश्च धातुवाच्य एव साध्यभूतः। तथा च धातुवाच्यव्यापारनिष्ठजन्यता– निरूपितजनकतावत्त्वम्, धातुवाच्यव्यापारोत्पत्यनुकूलव्यापारवत्त्वं वा कारकत्वमिति निष्कर्षः। एवं चैत्रः काष्ठैः स्थाल्यां तण्डुलं पचति इत्यादौ पचिधात्वर्थव्यापारः अधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधोपकर्षणाद्यवयवकलापः। तत्र तादृशव्यापारनिष्ठा या जन्यता तादृशजन्यतानिरूपितजनकत्वं चैत्रादिके कर्तरि वर्तमाने यत्नादिरूपमनोव्यापारे तद्वत्वात् कर्तुः कारकत्वम्। एवं पचिधातुवाच्याधिश्रयणादिव्यापारनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकत्वं कर्मणि तण्डुलादौ विद्यमाने विक्लित्तिधारणरूपव्यापारे, करणे काष्ठादौ वर्तमाने ज्वलनादिव्यापारे, अधिकरणे स्थाल्यादौ विद्यमाने धारणरूपव्यापारे चास्ति, अत तत्तदाश्रयत्वात् तेषां समेषां कारकत्वं सिद्ध्यति। एवम् अन्यत्रापि बोध्यम्। अत एवोक्तं नागेशभट्टेन ''सर्वेषां च कारकाणां स्वस्वावान्तरक्रियाद्वारा प्रधानक्रियानिष्पादकत्वं बोध्यम्''[19] । अत्र क्रियायां प्राधान्यं फलजनकत्वरूपं बोध्यम्। तथा च सर्वेषां कारकाणां स्वस्ववृत्तिव्यापारद्वारा फलजनकक्रियानिष्पादकत्वं ज्ञेयम् इति फलितार्थः। यथा चैत्रः तण्डुलं पचति इत्यत्र विक्लित्तिरूपफलजनकत्वं धातुवाच्याधिश्रयणादिरूपव्यापारे तन्निष्पादकत्वं च कर्तरि चैत्रे विद्यमाने यत्नादिरूपमनोव्यापारे। एवमेव अन्यत्रापि।

अत्रेदमवधेयम् – क्रियाजनकत्वम् इति लक्षणे जनकत्वं कारणत्वरूपं विवक्षितम्। तत्र कारणत्वं नाम कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वम्। अर्थात् कार्यं प्रति नियतत्वे सति पूर्ववृत्तित्वं कारणत्वम्। अत्र लक्षणे नियतत्वविशेषणानुपादाने पूर्ववर्तिनो रासभादेरपि घटादिकारणत्वं स्यादतो नियतत्वे सतीति विशेषणम्। परन्तु लक्षणे नियतत्वविशेषणदानेऽपि नियतपूर्ववर्तिनो दण्डरूपादेरपि घटकारणत्वं स्यादतस्तद्वारणाय अनन्यथासिद्धपदमपि कारणलक्षणे निवेशनीयम्, एवं च न तत्रातिव्याप्तिः, दण्डरूपादीनामन्यथासिद्धत्वात्। एवं च 'अन्यथासिद्धिशून्यत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वमिति लक्षणं प्रतिफलति'। तथा चोक्तं मुक्तावल्यां विश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्येण– ''अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियतापूर्ववर्तिता। कारणत्वं भवेत्तस्य''[20] इति।

अत्रान्यथासिद्धत्वं नाम ''अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिर्दण्डादिभिरेव घटरूपकार्यसम्भवे तत्सहभूतत्वम्''। एतच्च दण्डत्वादौ वर्तते, अतः अन्यथासिद्धत्वेन घटं प्रति न दण्डत्वं कारणम्। एतच्च पञ्चविधम्। तत्र प्रथममन्यथासिद्धम् ''यत्कार्यं प्रति कारणस्य पूर्ववृत्तिता येन रूपेण गृह्यते तत्कार्यं प्रति तद्रूपमन्यथासिद्धम्''[21]। यथा घटरूपकार्यं प्रति दण्डरूपकारणस्य पूर्ववृत्तिता दण्डत्वेन रूपेण गृह्यते अतो घटरूपकार्यं प्रति दण्डत्वमन्यथासिद्धम्। द्वितीयमन्यथासिद्धम् ''यस्य स्वात्मना कार्यं प्रति पूर्व भावो न भवेत् किन्तु स्वकारणं गृहीत्वैव पूर्वभावः स्यात् सोऽप्यन्यथासिद्धः''[22]। अर्थात् कारणसमवेतविशेषगुणत्वं द्वितीयमन्यथासिद्धमित्यर्थः। यथा दण्डरूपस्य स्वात्मना घटरूपकार्यं प्रति पूर्वभावो नास्ति, अपितु दण्डगतरूपस्य कारणं यो हि दण्डः तं गृहीत्वैव दण्डरूपस्य घटरूपकार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वमतः घटरूपकार्यं प्रति दण्डरूपमन्यथासिद्धम्। तृतीयमन्यथासिद्धम्– ''अन्यम्प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्यं प्रति–अन्यथासिद्धत्वम्''[23]। यथा घटं प्रत्याकाशस्य। यतोहि– आकाशत्वं नाम शब्दसमवायिकारणत्वम्। एवं च शब्दं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव आकाशस्य घटकार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते, अतः आकाशस्य घटकार्यं प्रत्यन्यथासिद्धत्वम्। चतुर्थमन्यथासिद्धम्– ''यत्कार्यजनकं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव

यस्य यत्कार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धत्वम्''[24] । यथा ''घटरूपकार्यजनकं कुलालं प्रति कुलालपितुः पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव घटकार्यं प्रति कुलालपितुः पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते, अतः घटं प्रति कुलालपितुरन्यथासिद्धत्वम्। पञ्चममन्यथासिद्धम्– ''अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिन एव कार्य सम्भवे तदि्भन्नमन्यथासिद्धमित्यर्थः''[25]। यथा घटं प्रति रासभादिः। एवं च सति 'जनकत्वञ्चात्र कारणत्वम्' इति स्वीकारेण 'ब्राह्मणस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छति' इत्यादौ ब्राह्मणस्य कुलालपितुरिव चतुर्थान्यथासिद्धत्वेन न कारकत्वमिति बोध्यम्। यतोहि अत्रापि प्रश्नक्रियाजनकपुत्रं प्रति पूर्ववृत्तिं गृहीत्वैव तादृशक्रियां प्रति ब्राह्मणस्य पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते, अतस्तस्य स्पष्टमेव चतुर्थान्यथासिद्धत्वम्। अत्रेयं शंका भवति यत् 'ब्राह्मणस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छति' इत्यत्र कुलालपितुरिव ब्राह्मणपिता अन्यथासिद्धः, अतस्तस्य न कारकत्वं किन्तु 'ब्राह्मणस्य पितरं पन्थानं पृच्छति' इत्यत्र तु न ब्राह्मणस्य अन्यथासिद्धत्वमतस्तस्य तु कारकत्वं स्यादेवेति चेत् न अत्राऽपि रासभादेरिव ब्राह्मणस्य पञ्चममन्यथासिद्धत्वम्। तथाहि यथा अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिः दण्डादिभिरेव घटकार्यसम्भवे तदि्भन्नरासभादीनां यथा पञ्चमान्यथासिद्धत्वम्, तथैव अत्रापि अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिः पित्रादिभिरेव क्रियोत्पत्तिसम्भवे तदि्भन्नब्राह्मणस्य पञ्चमान्यथासिद्धत्वमिति भावः।

अत्र कैश्चिद् उच्यते यत् 'ब्राह्मणपितुरेव पन्थाः प्रष्टव्य' इति प्रतिज्ञावत्पुरुषकर्तृकप्रश्नपरे ब्राह्मणस्य पितरं पन्थानं पृच्छति इत्यादिवाक्ये तु ब्राह्मणस्य स्यादेव कारकत्वम्– यतोहि तत्र ब्राह्मणपितृत्वेनैव प्रश्नक्रियां प्रति ब्राह्मणपितुः कारणत्वेनान्यथासिद्धत्वाभावात् इति चेत् न अत्राऽपि ब्राह्मणस्य दण्डत्वादेरिव प्रथममन्यथासिद्धत्वात्। अतः न कुत्रापि दोषः। अत एव च सम्बन्धस्य न कारकत्वं क्रियाजनकत्वाभावात्।

अत्र केचित् आक्षिपन्ति यत् कारकत्वस्य 'क्रियाजनकत्वम्' इति लक्षणस्वीकारे सति यस्य कारकत्वं चिकीर्षितम्– तस्य क्रियोत्पत्तेः प्राक् तत्रोपस्थितिरावश्यकी, यतोहि जनकत्वन्नाम– 'अन्यथासिद्धिशून्यत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वम्'। एवं च यत्र कश्चन याचकः दातारं याचते यत् 'मह्यं देहि' इति तदनन्तरं दाता तं याचकं ददाति, तत्र तु याचकस्य दानक्रियारूपकार्यपूर्ववृत्तित्वेन क्रियाजनकत्वात् कारकत्वं भविष्यति।

परन्तु 'विप्राय धनं दास्यामि' इत्यादिषु स्थलेषु दानग्रहणकर्तुरसत्वेऽपि तज्ज्ञानमात्रेण यत्र दानं तत्र तस्य दानक्रियारूपकार्यपूर्ववृत्तित्वाभावेन कारणत्वं न स्याद् एवं तत्र कारकत्वमपि न स्यात् इति चेत् अत्रोच्यते दानग्रहणकर्तुरसत्वस्थलीयदानेऽपि दातृबुद्धौ दानग्रहणकर्तुः ज्ञानमपेक्षितम्, अतस्तत्र सम्प्रदानज्ञानवर्तिन्या दानजनकतायाः सम्प्रदाने आरोपेण तत्रापि कारकत्वं सुलभम्। अत एवोक्तं नागेशभट्टेन ''असन्निहितसम्प्रदानस्यापि दातृबुद्धिस्थत्वावश्यकत्वेन स्वज्ञानूपर्वकालकत्वेनैव जनकत्वमिति''[26]। अर्थात् यथा यागस्य साक्षात् स्वर्गाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वाभावेऽपि परमापूर्वद्वारा स्वर्गजनकत्वन्तथा अत्रापि विषयविधयाऽसन्निहितसम्प्रदानजन्यं यत्तद्विविषयकं ज्ञानं तज्ज्ञानक्रियाऽव्यवहितपूर्वकालवृत्तीति सम्प्रदानस्यापि क्रियाजनकत्वमस्तीति भावः। एवं 'स्तोकं पचति' इत्यादौ फलस्यापि पाकक्रियोत्पत्तेः प्राक् अनुपस्थितत्वेन कारकत्वानापत्तिः, अतोऽत्रापि स्वज्ञानपूर्वकालकत्वेनैव जनकत्वं बोध्यम्। अयमाशयः प्रथमम्फलज्ञानं ततः फलेच्छा ततस्तदुपायान्वेषणं ततस्तदुपाये फलसाधनताज्ञानन्तत उपायेच्छा तत उपायनिष्ठसाध्यत्वाख्यविषयताका प्रवृत्तिरित्येवं क्रमेण फलस्य स्वज्ञानद्वारा क्रियाजनकत्वं बोध्यम्। अथवा फलज्ञाननिष्ठायाः क्रियाजनकतायाः फले आरोपेण फलस्य कारकत्वं बोध्यम्। अत एवाह नागेशभट्टः शेखरे ''स्तोकं पचति'' इत्यादौ फलस्यापि''[27]।

अथ घटं करोति इति प्रयोगः घटस्यानुत्पत्तिदशायामेव इष्यते। स च न स्यात्, तदानीं घटाभावेन तस्य जनकत्वासम्भवात्। एवमेव घटं स्मरति इत्यत्रापि घटे स्मरणजनकत्वासम्भवात्, अत्रापि तस्य कारकत्वं न स्यात् इति चेदुच्यते घटं करोति इत्यत्र मृदादिवृत्तिजनकत्वस्य घटे आरोपात् घटस्य कारकत्वं बोध्यम्। किञ्च घटं स्मरति इत्यत्र घटज्ञानं विना स्मरणं न सम्भवति। अतः स्मरणात्पूर्वं घटस्य ज्ञानमपेक्षितम्। अतः घटसम्बन्धिज्ञाननिष्ठजनकत्वस्य घटे आरोपात् क्रियाजनकत्वं बोध्यं घटस्य।

अथवा वैयाकरणानां मते बौद्धार्थस्यैव स्वीकारेण, प्रदर्शितस्थलेषु बौद्धघटस्य च अनुत्पादनीयतया नियतपूर्ववृत्तित्वेन तत्र जनकत्वमस्त्येव अतो न दोषलेशोऽपि। अत एवाह शेखरे नागेशभट्टः ''घटं करोति स्मरति इत्यादौ बौद्धघटादेः पूर्वकालिकत्वेन स्मृत्यादीनां निष्पादकत्वं बोध्यम्''[28] । परन्तु नागेशोक्तं समाधानं समीचीनं नैव प्रतिभाति। यतोहि घटं स्मरति इत्यादौ बौद्धघटादेः स्मृत्यादिजनकत्वे बौद्धघटादेरेव कर्मत्वं स्यान्न तु बाह्यघटादेरिति,

इष्टं च बाह्यघटादीनामपि अतः सर्वत्रापि स्तोकं पचति इत्यादाविव स्वज्ञानपूर्वकालकत्वेनैव क्रियाजनकत्वं बोध्यमिति।

ननु ब्राह्मणस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छति इत्यादौ पुत्रेणैव प्रश्नक्रियासम्भवे सति तद्भिन्नस्य ब्राह्मणस्य अन्यथासिद्धत्वेन कारकत्वं न कश्चनापि स्वीकरोति, तथैव विप्राय धनं दास्यामि, स्तोकं पचति, घटं करोति, घटं स्मरति इत्यादावपि तत्तद्विषयकज्ञानेनैव दानादिक्रियासम्भवे तद्भिन्नस्य विप्रादेः अन्यथासिद्धत्वेन कथं कारकत्वमिति तु नात्र शंकनीयम्, तत्तद्विषयकज्ञानस्य सम्प्रदानत्वासम्भवेनात्र तथाऽस्वीकारात् इति भावः।

एतेन व्याख्यानेन क्रियाजनकत्वं न कारकत्वम् तथा स्वीकारे असदुत्पद्यते इति वादे घटो जायते घटं करोति इत्यादौ कारकत्वानापत्तेः इति केषाञ्चित् कथनमपास्तम्। इति भावः।

निष्कर्षः — भट्टोजिदीक्षितानुसारं क्रियान्वयित्वं कारकत्वमिति लक्षणं विद्यते। नागेशभट्टमतानुसारं क्रियाजनकत्वं कारकत्वमिति लक्षणं विद्यते। अत्र प्रतिपादितयोरुभयोर्मतयोः नास्ति कश्चन दोषः, उभयत्रापि समागतदोषाणां परिहारात्। तथापि ''क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्'' इत्येव लक्षणं समीचीनं मे प्रतिभाति ''क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्'' इति लक्षणस्य जनकत्वघटितत्वेन गौरवात्।

सन्दर्भ–सूची :–

1. सटीकटिप्पणशब्दरत्नप्रौढमनोरमा पृष्टः 783 संस्करणम्– वि.सं. 2059, प्रकाशकः– चैखम्भासंस्कृतसंस्थानम्।
2. वही, पृष्टः 785।
3. वही, पृष्टसंख्या– 911।
4. हिन्दीभाष्योपेतलघुशब्देन्दुशेखरः पृष्टसंख्या– 205 संस्करणम्–2002 प्रकाशकः– सम्पूर्णानंदसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी।
5. टीकाद्वयोपेतासिद्धान्तकौमुदी पत्रसंख्या– 672, संस्करणम्–2004, प्रकाशकः मोतीलालबनारसीदासः।
6. उद्योतपरिवृतप्रदीपसहितमहाभाष्यप्रदीपः भाग–2, पत्रसंख्या–518 संस्करणम् 1988, प्रकाशकः– चैखम्भासंस्कृतप्रतिष्ठानम्।
7. वही, पत्रसंख्या–518।
8. वही, पत्रसंख्या–518।
9. वही, पत्रसंख्या–518।
10. वही, पत्रसंख्या–519।
11. वही, पत्रसंख्या–519।
12. कलाटीकासहितलघुमञ्जूषा, भागः 2, पत्रसंख्या 1311, संस्करणम् 2004, संस्कृतपुस्तकभण्डारः कोलकाता।
13. वही, पत्रसंख्या 1196।
14. सटीकटिप्पणशब्दरत्नप्रौढमनोरमा पत्रसंख्या 786।
15. कलाटीकासहितलघुमञ्जूषा, भागः 2, पत्रसंख्या 1195।
16. उद्योतपरिवृतप्रदीपसहितमहाभाष्यम् भाग–2, पत्रसंख्या–240–42।
17. वही, पत्रसंख्या–242।
18. वही, पत्रसंख्या–242।
19. हिन्दीभाष्योपेतलघुशब्देन्दुशेखरः पत्रसंख्या 36।
20. दिनकरीरामरुद्रीटीकोपेतान्यायसिद्धान्तमुक्तावली पत्रसंख्या–108 संस्करणम् वि.सं. 2039 प्रकाशकः चैखम्भासंस्कृतसीरीजआफिस।
21. वही, पत्रसंख्या–117।
22. वही, पत्रसंख्या–118।
23. वहीं।
24. वही, पत्रसंख्या–120।
25. वही, पत्रसंख्या–122।
26. हिन्दीभाष्योपेतलघुशब्देन्दुशेखरः पत्रसंख्या 37।
27. वही, पत्रसंख्या 38।
28. वही, पत्रसंख्या 38।

A Study of Pandava Kingdom of Mekala

Dr. Heera Singh Gond*

Abstract: The present area of East Baghelkhand and South Kosala is connected to the Narmada River from Amarkantak. Satpura mountain range in the south of the origin and Narmada and Vindhya mountain range in the north, both mountain ranges meet in the areas around Amarkantak, which is still famous by the name of the Mekala range, which acts as a link between Vindhya and Satpura. The description of the Mekala mountain range is found in various literature and records. According to the Bamhani copper plate, the area in Mekala is described as a village, each of which was divided into sub-districts, the eastern part of which is called Amarkantak and the northern part is called Vardhamanaka (Bamhani). In early Indian literature, Mekala It has been known as the name of a mountain range from where the Narmada River originates; hence, it is called Mekalkanya or Mekalsuta. At the same time, it is also called a country. In the Balaghat inscription of Vakataka king Prithvisena II, Mekala is described as a country. But according to the literature, it is difficult to determine the extent of Mekala country, which must have been different from time to time along with political ups and downs, but from the present inscriptions, we can reasonably say that Mekala was under the Pandavas, especially. Under Surbal Udiranvaira, its vast expansion was in the Baghelkhand region of Madhya Pradesh. The kingdom of the Pandava dynasty might have extended to the southern part of Shahdol district, the eastern part of Mandla district, and the northern part of Bilaspur district. According to the Malhar copper plate, during the rule of Surbal Udiranvaira, a large part of Bilaspur district, including Malhar, was under the Pandava dynasty, and new areas were also included in Mekala as dominant rulers from time to time during the rule must have attended.

Keywords: Amaryakul, Bamhani, Janhavi, Kshitipat-Tilaka, Kshitisa and Nripati, Mekala, Satapura, Vindhya, Vardhamanka, Uttarastra,

History: Maikala country is mentioned in the epics and Puranas along with the neighboring countries Dashana, Chedi and Utkala. In all these areas, the Mekala people have been mentioned. Some historians believe that the Mekala were a small tribe living in the modern Amarkantak hills and surrounding areas. According to V.V. Mirashi, Bhadrabal was an army commander of the contemporary Magha king and his son Vaishravana, who held the title of king. He probably ruled a small principality around Bandhogarh, where inscriptions from his reign have been found. The Padavas of Mekaal consider both of them to be the ancestors of King Jayabal. Copper plates of Surbal, alias Udiranvaira, have been found in village Bamhani, whose old name was Vardhamanka, in Kotma tehsil of Anuppur district. They belonged to a local dynasty, which belonged to the north-eastern part of the district. Their rule is believed to have been around the 5th century and the beginning of the 6th century AD, as the copper plate inscriptions belong to that period. The Panduvas of Mekala were related to the Pandav dynasty of Central India and South Kosala. In the Bamhani copper plate, four rulers of this dynasty are mentioned: Jayabala, his son Vatsaraja; Maharaja Nagabaal, son of Vatsaraja by queen Dronabhattarika and Bharat or Bharatbala, son of Vatsaraja by his queen Indrabhattarika. Who was also known as Indra or Indrabala. Bharat had only one queen, Lokaprakasha, who was the princess of Koshala.

As the power of the imperial Gupta declined in the late fifth and early sixth centuries AD, there was an opportunity for the rise of new political powers that first accepted the suzerainty of the Gupta and later became independent after the fall of the Gupta Empire. During the 6th century AD, the

*** Assistant Professor Department of History Government College Rajnagar, District Anuppur (M.P.)Mobile No: 7746817458**

Maukharis and the later Gupta and Sarabhapuriy took a place on the political map of Bharatbala, first as feudatories of the Gupta and then as sovereign powers in the middle of the 6th century AD. The same seems to be the case with the Pandavas of Mekala. The first two members of the dynasty, Jaibala and Vatsaraja, were, in principle, feudal chiefs, probably due to their allegiance to the royal Gupta. The next ruler, Nagabala, flourished at a time when the Gupta Empire was in decline, took full advantage of this opportunity, and assumed not only the title of Maharaja but also the superior title of Paramguru Devtadhidevata, usually held by paramount rulers. Such titles were also assumed by his sons Bharatbala and Surbala, alias Udiranvaira. Jaybala and Vatsaraja did not have any titles, while the latter two rulers have been attributed with epithets like Param-Maheshwar. Parambrahmanya and Param Guru Devtadhidaivat are special. And they further strengthened their position by capturing new areas. It appears that Jayabala and Vatsaraja were feudatories of the royal Gupta, and when the Gupta power weakened, Nagabala and Bharatabala gained independence, but as is evident from the Balaghat copper plate of Vakataka ruler Prithvisena II, the Panduvanshi of Mekala ruled for some time. Narendrasena subordinate must have become an ally or the rulers of Mekala, who thus appear to have come under the domination of the Vakatakas.

Jaybala: Jaabala is the first ruler of the Pandava dynasty mentioned in the inscription, about which there is no information about historical fame. It is said that he was born in Mekala, a country under the control of Padava. He was called Raja, and he was known as the ruling chief (Kshitipati Tilak). He attained great fame and is endowed with excellent qualities and a beautiful body.

Vatsaraja: Son and successor of Jaybala, Vatsaraja appears to be more majestic and powerful than his father. He is traditionally compared with the famous Vatsaraja Udayan. And it is said that he won the war, attacked the enemies with the help of his own weapons, and achieved victory. They are also called king chiefs (Kshitisa and Nripati) and are depicted as the foremost among the kings. Vatsaraja married a woman named Dronabhattarika.

Nagabal: Vatsaraja was succeeded by his son, Nagabal, who was born to Queen Dronabhattarika. In a purely traditional manner, his cavalry and elephants played a major role in the war against his enemies. He was probably the first ruler of the Pandava dynasty to assume the title of Maharaja. He was a more powerful, independent, and sovereign ruler than his predecessors. Nagbala is described as a devotee and worshiper of Maheshwar, who taught Brahmins respect for teachers and the supreme divinity. Their queen was Indrabhattarika, who was very dedicated.

Bharatbal: The son of Nagbala and the successor of Bharatabal, born to Indrabhattarika. Described in more detail than the ancients, was more powerful and assumed the title of Maharaja than him. He respected Brahmins, was a teacher, and was highly devoted to the supreme deity. His other name was Indra, and he was compared to Indra, the god of gods is performed. Who is more brilliant than Lord Agni in his destruction of enemies and bravery, Besides these, his birth from Queen Indrabhattarika is equivalent to that of Lord Kartikeya from Parvati, daughter of Himavat, the lord of the mountains. According to the Malhar copper plate, Bharatbal has been compared to the epic hero Bharat, the younger brother of Raghav and born into the family of Dasharatha. It appears that he achieved important successes against his enemies. Like a huge quartered elephant, he was surrounded on all sides by a crowd of trees echoing in the form of imperious enemies. He was pulled and torn by them and surrendered to the fate of the host of his enemies, and he killed the female Amryakula of the Koshala region. Married to Lokaprakash, born in His character was compared to the sacred river Janhavi, i.e., Ganga. It has been done. Just as it descends from heaven to earth with pure character, self-control, and self-discipline, High praise probably indicates great importance which has become popular due to Bharatbal as well as power and prestige. The wives of the two previous rulers are not mentioned as such.

Queen Lokapraksha of Bharatbal is said to have been born in Koshala, and various attempts have been made to identify her. BC Chhabra has suggested that she probably belonged to the Pandava family of Koshala. V.V. Mirasi and D.C. Cirkar, The government is not in support of their belief that they would have been cognates of both the Pandava families of Mekala and Koshala, and Hindu marriage between cognates is not accepted as per law. And the Pandavas of South Koshala were established after the Pandavas of Mekala. There is a difference of opinion among the scholars in this regard. According to some scholars, she was the princess of the Pandava dynasty of South Koshala, but this seems inconsistent because the supremacy of the Pandava kings had not been established in South Koshala till the reign of Bharatbal, and according to other scholars, Lokprakash was from the Suryavansh. The fourth member of the related family was the daughter of Bhimsen I, but no evidence of this is available. Most scholars believe that she was a princess of the Sarabhpuria dynasty of South Koshala, and she was the daughter of Sarabh and sister of Narendra. Jai Bhattaraka was the father of Vyaghraraja of the Amarya clan mentioned in the Malhar copper plate in the fourth year of his reign. The Armararajkul is similar to the Amaryakul. Bharatbal may have captured or acquired the Malhar region in dowry at the beginning of the sixth century AD and married a princess of this family. And the leaves of his ancestors are Dronabhattarika, wife of Vatsaraja, and Indrabhattarika, wife of Nagbala, their last name is equivalent to Bhattaraka. They might have been from the same kul.

Surbala Udiranvaira: After Bharatbala, his son Maharaja Surbala ascended the throne. He was also known as Udiranvaira, he overthrew his enemies and conquered all his opponents. He defeated many feudal chiefs who were subdued by his complete triple power, and it is not possible to determine the imperial extent of his rule, administered extensive areas, which included Mekala. According to Ajay Mitra Shastri, Bamhani and Malhar copper plates are not of Bharatbal. Rather, it is of Surbala alias Udiranvaira. The supposed reference to Narendra Sen actually describes the successor. The traditional line of engraving Surbala on the Bamhani copper plate must have had some origin. Therefore, Narendra Sen feudatory might not have been Bharatbala but Surbala. But the surprising thing is that Chhabra and Mirasi translated the word Sarvabhaum as sovereign and supreme on the Bamhani copper plate, whereas in the above line, it also talks about falling at the feet of Udiranvaira. Also, Malhar considered him the supreme ruler of many feudal chiefs on the copper plate. In the Vakataka inscriptions, Mekala Raja was mentioned as following the orders of Narendra Sen. There is no reference. It is accepted by most scholars that the inscriptions of Vakataka Prithvisena II clearly state that the orders of his father, Narendra Sen, were honored by the kings of Koshala, Mekala, and Malwa.

Capital: There is disagreement among scholars regarding the capital of the Pandava Empire of Mekala. According to V.V. Mirashi identified the capital as about 95–100 km from Bamhani in the northwest located in Bandhavgarh. Father of Rajan Baishnav, from an inscription found at Badhavgarh An attempt has been made to establish the relationship between Pandavas and Bhadrabal, but it is important does not provide evidence. K.D. Bajpai believes that Jaibala is the capital of the Jaibaal family. It was in Sharabhpur, which is said to be the old name of Malhar that copper plates were obtained from the Malhar region. On this basis, it is justified to consider it the capital of the dynasty, but there is a lack of definite evidence.

Conclusion: Some scholars are of the opinion that Mekala and Koshala are two rival branches. On the contrary, scholars believe that the supremacy of the Pandava kings of South Koshala was not established till the reign of Bharatbala, under the Vakataka king Narendra, or under the contemporary or later Gupta rulers. They later became independent during the time of Bharatbala. Maharaj Narendra has been praised in disguised form on the copper plate. Narendra was the king. There is a difference of opinion among the scholars as to which dynasty he belonged. According to K.P. Jaiswal, Koshala and Mekala were probably two rival branches of the Pandavas, which later transformed from a marriage relationship to a friendship, shows Bharatbala alleged marital relationship with Princess

Lokpraksha. But there is no information about the queen's family or parents. The end of Pandava rule in one region and its beginning in an adjacent region at about the same time cannot be considered entirely coincidental, and the two Pandava families appear to be related to each other. In the absence of insufficient information, what relationship existed between them or not, this cannot be detected.

There is a need to completely reconsider and revise the current assumptions about the history of the Mekaal Pandavas. The first known Pandava chief, Jayabala, came to power in the early sixth century AD, and his reign can be placed around 500–525 AD, while the next three rulers ruled for about 75 years. The last ruler, Surabala Udinvaira, probably ascended the throne around the sixth century AD. The reign period of Jay Bhattarak was around 550–60 AD. Lokpraksha was the sister or daughter of Jay Bhattarak. The reign period of Pravarraj I, i.e., Pravar Bhattarak, was around 590 AD. If Lokpraksha was his sister or daughter, then Bharatabal can be considered to be at the end of the sixth century and Surabal at the beginning of the seventh century.

On an epigraphic basis, the Malaga copper plate of feudal lord Indraraj is situated in the east of Anuppur district. According to this, they seem to be related to the Pandavas in some way or another, however, this cannot be determined in the absence of any accurate evidence in this regard, according to DC Cirkar and S. Shankaranarayan have conjectured that Indraraj ruled independently. Either sometime after the death of Maukhari Grihavarma or sometime after the death of Harshavardhana According to the date of the copper plate, it can be said that the Pandava king of Mekala would have ruled independently after Surbal Udiranvaira. It is noteworthy in this regard that many scholars have tried to connect by making connections with their names. Sarabhpuriya, Magha, Pandavas of South Koshala and Mekala. What was the family or matrimonial relationship between the final decisions is reserved for the future.

Reference :-

1. Chhabra, B.C. (1947-48) Epigraphia Indica, Part 27, P. 13-145.
2. Chadhar, M.L. (2017) Amarkantak Kshetra Ka Puravaibhav, S. S. D.N. Publishers and Distributors, New Delhi, P. 31-
3. Mookarjee, R.K. (1945) Bharat Kaumudi, Part I, P. 215-19.
4. Mirashi, V.V. (1963) Corpus Inscription Indicarum, Vol. 5, P. 82-86.
5. Mirashi, V.V. (1953) Indica. The Indian Historical Research Institute Silver Jubille Commemoration Volume, P.288.
6. Shastri, A.M.(1995) Inscriptions of the Sharmpuriya, Panduvanshiya and Somvanshiya, Motilal Banarsidas New Delhi, Volume 1, P. 117-32.
7. Shastri, A.M.(1995) Inscriptions of the Sharabpuriya, Panduvanshiya and Somvanshiya Motilal Banarsidas New Delhi, Volume 2 P. 73-79.
8. Shama, R.K. (1010) Madhya Pradesh Evam Chhattisgarh ke Puratatva ka Sandarbhgranth, Madhya Pradesh Hindi Granth Academy Bhopal, P. 60-61.
9. Sharma, R.K (2010) History of Madhya Pradesh, Ancient Period Volume 1. Madhya Pradesh Hindi Granth Academy Bhopal, P. 51-325.
10. Verma, Rajendra and Guru Shambhu Dayal (1992) Rewa District Gazetteer, Directorate of Culture Department, Madhya Pradesh Bhopal, P. 24

☆

Climate Change and Gender : Understanding the Vulnerabilities of Women in Post-Pandemic India

Jyotasana*

Abstract : Gender and climate change are closely interlinked and also relevant in the post-pandemic era. The Covid-19 pandemic has accelerated the effects of climate change, putting further strain on food systems, livelihoods, employment, gender-based violence, and health. Particularly, Women and girls have been identified to be the worst affected in terms of the gendered impacts of climate change. In times of natural disasters, wars, or disease outbreaks, it is commonly agreed that women's triple burden, including gender division of labour, productive, reproductive, and community roles has made them more vulnerable. In the post-pandemic era, women face challenges in every sphere, from health to economic, security to social protection, women's education to gender-based discrimination and violence against women. The economic effects on women and girls who often earn less, work in the unorganized sector, have unstable occupations, or are living near poverty are significant. Therefore, the paper tries to understand the relationship between climate change and gender. The article also explores women's vulnerability in post-pandemic in India.

Keywords: Climate change, gender, violence, employment, poverty, health.

Introduction : Climate change has been severely impacting women and girls in developing countries, particularly in India. Due to the unique challenges and risks associated with resource scarcity brought on by climate change, women in developing nations must primarily rely on a consistent source of water and wood fuel for work. Moreover, the ongoing pandemic has affected the lives and other social, economic, and other spheres of almost all communities across the world while also exposing systemic inequalities, especially gender inequality.

Objective : The following research objective forms the basis for the study.:

1. To explore the vulnerability and hardship experienced by women in the pandemic era
2. To understand the impacts of climate change on women in the post-pandemic era in India.

Research Methodology : The study is grounded in the technique of qualitative research. Qualitative methods are essential in comprehending the post-pandemic era and its impacts on people, especially women. This study is based on both primary and secondary data. Primary data is collected from Government reports and other documents. For secondary data, relevant literature, news articles, magazines, and non-governmental reports were reviewed. Secondary data was also collected from various international organizations like the Global Gender and Climate Alliance, the United Nations, the UN Environment Program, the Women's Environment and Development Organization, Oxfam, Action Aid, and the World Health Organization's (WHO) Vulnerability Capacity Index (VCI). The prime focus of the research is to critically analyze the various organizational reports, government and nonprofit organization reports in India as well as the globe. Apart from this, other organizational reports worked on climate change and gender vulnerability, especially in the post-pandemic era in India. One of the main aims of the research seems to be to find factual evidence of the increased degree of vulnerability and hardship experienced by women in post- pandemic era.

Gender and Climate Change : A considerable number of pieces of literature about gender and climate change have established that gender relations are an integral feature of social transformations associated with climate change (Pearse, 2017). Most social scientists concur that gender is a social

---

*** Assistant Professor, Department of Law, KCC Institute of Legal and Higher Education, Greater Noida, UP.**

construction, distinct from biological sex, that determines people's roles and identities as either masculine or feminine (MacGregor, 2010). Women's work is especially dependent on the reliable availability of water and wood fuel, which exposes women in the global South to risks associated with climate change and resource scarcity. Women in developing countries face distinctive strains and risk risks related to climate-induced resource scarcity (Pearse, 2017).

Two major changes that highlight the connection between climate change, water, and gender are socioecological changes attributable to climate change and historical patriarchal civilizations that are currently struggling with gendered power structures. As scholars have pointed out, access, control, use, and knowledge of resources are gendered, thereby making any changes in natural resources from climate change play out in different ways for different livelihood outcomes for men and women in any context (Sultana, 2018, p. 22).

Women are more impacted by climate change and its results than males are, as evidenced by the loss of crops, assets, cattle, and property in catastrophes and the drastic ecological shifts that can push entire communities into poverty. Since male out-migration is more widespread, migration and displacement in these processes are similarly gendered. Men and women are affected differently by the loss of social networks brought on by displacement, as well as by being more vulnerable to abuse, exploitation, and poverty (Sultana, 2018, p. 23).

Women's roles are unchanging when portrayed as weak or strong in response to their surroundings. Due to their inferior social status compared to men, women frequently wind up being portrayed as a homogenous group. As can be seen from the policy document citations on the first page, the primary issue is thought to be that women are more vulnerable to climate change than males are and that this is primarily an issue in developing nations (Jonsson, 2011).

According to Teti et al. (2020), Covid-19 is not only a medical pandemic but also a social ill disrupting social order, and its impacts are distributed along with social constructs where women are more disadvantaged because of the low social status they occupy in society (Nyahunda, Chibvura, & Tirivangasi, 2021). Covid-19 and climate change are social justice issues because they excessively affect women and other marginalized groups and negatively impact how people interact with one another and their environment. Therefore, the next section discusses the relationship between gender and the pandemic.

Gender and Pandemic : Gender-neutral crises are uncommon, and Covid-19 is no exception. Covid-19 increased the burden on women, both economically and socially, in India, where the majority of systems have historically been prejudiced against minorities and women. Being gender-sensitive while we fight to repair the ecosystem is more important than ever, especially in light of the pandemic's revelation of the poor state of our healthcare, education, and general societal institutions (Nundy, 2022). Moreover, the ongoing pandemic has affected the lives and other social, economic, and other spheres of almost all communities across the world while also exposing systemic inequalities, especially gender inequality.

The Covid-19 pandemic has accelerated the effects of climate change, putting further strain on food systems, livelihoods, employment, gender-based violence, and health (Dlamini, 2020). The impact of the COVID-19 pandemic on gender lines is enormous, with women being the worst affected (Nevo et al.2021). Particularly, Women and girls have been identified to be the worst affected in terms of the gendered impacts of climate change since its socio-economic impacts pose gender-specific risks which disproportionately affect more women than men (Abbasi et al. 2019; Eastin 2018; Goodrich et al. 2019). It is widely acknowledged that women's triple burden such as gender division of labor, productive, reproductive, and community roles exacerbated their vulnerabilities in times of natural disasters, wars, or disease outbreaks (Bradshaw 2015; Sanaul and Mondal 2014). Due to the crucial

roles that women play in the production of food, providing for the household, and providing healthcare, they are particularly impacted by the Pandemic.

Climate change has been severely impacting women and girls, especially in developing countries in South Asia (Jonsson, 2011). Women are the particularly vulnerable victims of climate change, which is acknowledged in the Indian Government's National Action Plan on Climate Change (Jonsson, 2011:744). The NAPCC (2008:14) states that:

> *"The impacts of climate change could prove particularly severe for women. With climate change there would be increasing scarcity of water, reductions in yields of forest biomass, and increased risks to human health with children, women, and the elderly in a household becoming the most vulnerable…special attention should be paid to the aspects of gender (Jonsson, 2011:744)."*

Gender and climate change are closely interlinked and also relevant in the post-pandemic era, particularly in India. Gender-based violence particularly women and girls' vulnerability and inequality is a major concern in this research. There is a lack of research into the gender dimension of climate change during the post-pandemic era in the context of South Asia, particularly in India.

Women in the post-pandemic era confront difficulties in every area, including gender-based violence, women's education, security, and the economy. The economic effects on women and girls who often earn less, work in the unorganized sector, have unstable occupations, or are living near poverty are significant. Therefore, the paper tries to understand women's vulnerability in post-pandemic India to climate change. The next section deals with how covid-19 affects women and explores post- covid women's vulnerabilities.

Women and Health : With 4.6 million deaths and counting, the Covid-19 pandemic has wreaked havoc on people's lives all over the world. The pandemic has revealed severe economic and social disparities and expanded the gap between the most vulnerable members of society, with particular adverse effects on women and girls due to their gender. (Ghouaibi, 2021). Women's health, safety, and financial security were in danger even before the pandemic. Many times, maternal and other important health services are stigmatized, understudied, and underfunded (Barnes, Ramanarayanan, & Matthews, (n.d.). Many health-related issues plagued women after COVID along with their physical, mental and sexual, and reproductive health. International Labour Organization (2021), Due to their significant participation in 'essential' frontline occupations like the health, care, education, and service sectors, women are more likely to be exposed to the disease (ILO, 2021). Women patients reported a variety of symptoms, including fatigue, ear, nose, and throat problems, psychiatric disorders, and skin, gastrointestinal, and rheumatologic problems. With women making up more than 80% of nurses and midwives, Indian women play a key role in the medical and healthcare fields (Nunday, 2022).

Impact on Gender-based Violence : Violence against women and girls occurs in a range of settings, including the home, the neighborhood, and larger society. Technology development has brought cyberviolence against women as a new way for Gender-based Violence. The term 'violence against women' is used to refer to 'physical, sexual, or psychological harm or suffering to women'. According to the world bank, 2019 (pre-COVID-19), 35% of women worldwide have experienced intimate partner violence, including physical and/or sexual assault, or non-partner sexual assault. 7% of women worldwide have been the victim of sexual assault by someone other than a love relationship. An intimate partner is responsible for up to 38% of all female homicides globally (The World Bank, 2019).

The numbers in India grew steadily both during and after the outbreak. The number of women who experienced physical abuse has grown, according to the National Family Health Survey (NFHS-5). This conversation demonstrates that:

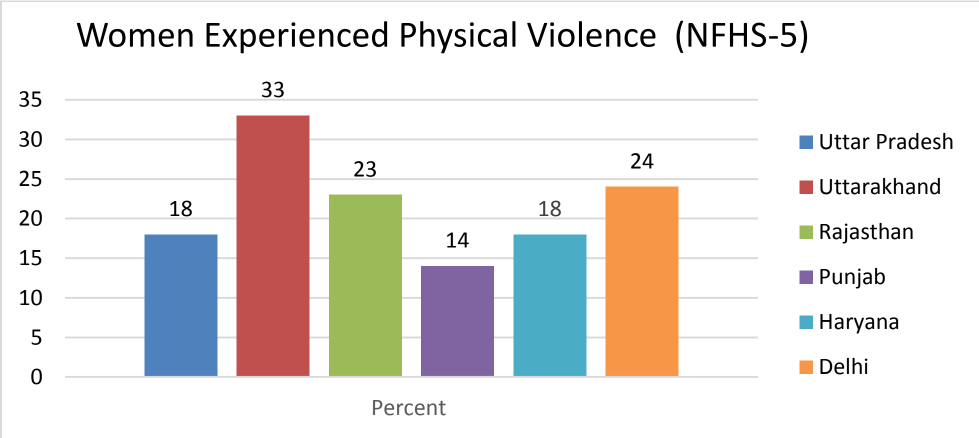

Sources: NFHS-5

The graph above depicts the number of women who experienced physical and sexual abuse in India. The percentages vary by state, with one-third of women aged 18 to 49 in Uttar Pradesh having ever experienced physical assault, compared to 23 percent of women in Rajasthan, 18 percent in Haryana, 24 percent in the NCT of Delhi, 18 percent in Uttarakhand, and 14 percent in Punjab.

In addition, according to a policy brief published by the UN, there has been a 25% increase in violence against women (Ghouaibi, 2021). Gender disparities have been worse since the pandemic, and girls and young women have been disproportionately affected by things like marital rape, familial violence, and threats of forced marriage. According to the WHO, violence against women continues to pose a serious threat to both women's health generally and to it in times of emergency and after crises. In India, 1 in 4 girls get married by the age of 18 years (27% prevalence) (NFHS, 2015-16). In this regard, 32 percent of women who had married before turning 18 reported that their husbands had physically abused them. In India, there are 899 females for every 1,000 boys at birth (SRS, 2016-18)

According to the UNFPA's State of the World Population (SWOP) report, which was just released, Covid-19 may make the already alarming statistics around early marriage, violence, and sex birth ratio at birth even worse. Covid-19 will hinder attempts to stop child marriage, possibly leading to an additional 13 million child marriages that could have been avoided between 2020 and 2030. (UNFPA, 2020). According to data from the National Commission on Women, domestic abuse cases rose to their greatest level in ten years during the first four months of the pandemic, according to numerous women's support groups and organizations. The government discovered a startling 21-year high in domestic abuse cases in 2021, during the second wave (Nunday, 2022). Girls' education has also been impeded by Covid-19 lockdowns. Previous financial crises provide evidence that families prefer to educate the males and that girls are more likely to take up caregiving obligations and drop out of school. Much of the schooling was relocated by Covid-19 to the Internet and other distance learning platforms. As a result, learning has been lost, the gendered digital divide has widened, and the ability of education to question gender norms and promote gender equality has been jeopardized (Nunday, 2022).

Work and Employment : The economic effects of the pandemic have primarily been felt by women. The majority of jobs have been lost in the service and hospitality industries, which are dominated by women. Additionally, women lost more jobs than males in practically every area (ILO, 2021). Inequitable pay and the burden of providing unpaid care after the epidemic has led to an increase in the number of women quitting their jobs and entering poverty. The earnings of women in India were only one-fifth of those of men even before the pandemic.

According to a UN Women report, rural Indian women working in informal jobs accounted for 80% of job losses in 2021. Indian women also devote more time to unpaid domestic duties than men. On average, they spend 9.8 times more time than men on unpaid domestic chores and 4.5 hours a day

caring for children, elders, and the sick (UN Women Report, 2021). Finding gender differences in the labor market's reintegration is crucial because it indicates both women's vulnerability in times of crisis and their agency's limitations in a nation where female labor force participation is low and declining.

In India, 47% of women lost their jobs when the pandemic struck, compared to only 7% of men. In India, women make up the majority of the labor force, particularly in unskilled labor. Women make up the majority of the workforce and work in all sectors, including agriculture, domestic assistance, and primary healthcare (Nunday, 2022). However, due to the global economic crisis, which saw more women forced into unemployment and taking on the primary caregiving roles for their families and the sick without compensation, they were the ones who were most impacted by the pandemic. Many of them now live in extreme poverty and hunger as a result of this (Nunday, 2022).

Proposed Solutions for Women's Vulnerabilities in Post-COVID-19 : One of the most significant concerns facing the world now is climate change. Numerous international and national organizations are working on it, and there are numerous laws and policies relating to climate change. However, the consequences of climate change are becoming more and more obvious, and the COVID-19 epidemic is one of the greatest illustrations of this grave problem. Second, achieving gender equality is vital for society, governance, and policy-making.

One of the key causes of women's vulnerabilities is gender inequity. Both the victims of inequality and society at large suffer from it. The first step in protecting society against post-pandemic problems, particularly those women confront in terms of their health, employment, and gender-based violence. Gender budgeting is an initiative to use fiscal policy and administration to address gender inequality and women's advancement (Dlamini, 2021). Governments must enact legislation and allocate funds to empower women economically, guarantee their equal access to land, and assure their safety, sanitation, and access to decent education. To construct more effective programs and create transformative, meaningful opportunities and routes that are adequately targeted for both genders, it is essential to encourage funders in that direction.

Various opportunities must be developed for the meaningful participation of women from varied backgrounds in decision-making at the local, municipal, and national levels as we try to repair the ecosystem after the destruction wrought by covid-19. More women must be encouraged to hold leadership roles in the government and NGO boards, and services for the prevention of violence, as well as mental health and psychological support for women, must be given top priority (Nundy, 2022). Adopting a gendered strategy has become even more important in light of the unfathomable agony brought on by Covid-19. Therefore, to stop gender inequality from persisting and strengthening, concerns such as existing unemployment, abuse, poverty, and hunger must be addressed.

Conclusion : The impact of climate change exacerbates structural inequalities such as caste, class, gender, and on. Climate change and gender are interlinked phenomena. Therefore, the effects of climate change perpetuate differences between the man and women. In India, women play a significant role in agricultural activities, and in some parts of the country, women depend on natural resources like water and fuel. So, in this sense, covid- 19 has increased women's vulnerabilities in every sphere. Women in post-pandemic India suffer numerous difficulties in terms of their health, work, gender-based violence, and other issues. Because the effects of climate change are not the same for men and women, and because women are more affected by natural disasters and calamities, it is imperative that the government and civil society develop gender-specific climate change policies and programs. It is crucial to devote greater funding to gender in this area.

References:-

1. Abbasi S. S., Anwar M. Z, Habib, N., Khan Q. & Waqar, K. (2019). Identifying gender vulnerabilities in the context of climate change in the Indus basin. *Environ Dev 31*, 34–42.

2. Barnes, B. S., Ramanarayanan, D., & Matthews, S. (n.d.). The Lasting Effects of the COVID-19 Pandemic on Women's Work, Health, and Safety. Retrieved from https://www.wilsoncenter.org/publication/lasting-effects-covid-19-pandemic-womens-work-health-and-safety.
3. Bradshaw, S. (2015) Engendering development and disasters. *Disasters 39,* (s1), s54–s75. https://doi.org/10.1111/disa.12111
4. Dlamini, J. N. (2021). Gender-Based Violence, Twin Pandemic to COVID-19, *Critical Sociology, 47* (4-5), 583-590.
5. Eastin, J. (2018). Climate change and gender equality in developing states. *World Dev, 107*, 289–305.
6. Ghouaibi, A. (2021). The pandemic has hurt women's health. This is why that's bad for everyone. Retrieved from https://www.weforum.org/agenda/2021/09/lessons-must-be-learned-from-covid-19-s-impact-on-women-s-health-and-rights/
7. Goodrich C. G., Udas P.B. & Larrington-Spencer H. (2019). Conceptualizing gendered vulnerability to climate change in the Hindu Kush Himalaya: Contextual conditions and drivers of change. *Environ Dev 31*, 9–18.
8. International Labour Organization (ILO). (2021). World Employment and Social Outlook 2021: Trends 2021. https://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/---dgreports/---dcomm/---publ/ documents/publication/wcms_795453. pd
9. Jonsson, A.S. (2011). Virtue and vulnerability: Discourses on women, gender and climate change, *Global Environmental Change,* 744-751.
10. Louis Nyahunda, L., Chibvura, S., Happy Mathew Tirivangasi, M. H. (2021). Social Work Practice: Accounting for Double Injustices Experienced by Women Under the Confluence of Covid-19 Pandemic and Climate Change Impacts in Nyanga, Zimbabwe. *Journal of Human Rights and Social Work, 6,* 213–224.
11. Macgregor, S. (2010). Gender and climate change: from impacts to discourses, *Journal of the Indian Ocean Region, 6* (2), 223-238.
12. Mark M.A., Mudasiru, M., & Nevo, M. C. (2021). Nexus between the gendered socio‑economic impacts of COVID‑19 and climate change: implications for pandemic recovery, *SN. Soc Sci, 1,* 198.
13. National Family Health Survey (NFHS-5). (2021). *Haryana*. Retrieved from https://rchiips.org/nfhs/NFHS-5Reports/Haryana.pdf
14. National Family Health Survey (NFHS-5). (2021). *National Capital Territory (NCT) of Delhi*. Retrieved from https://rchiips.org/nfhs/NFHS-5Reports/NCT%20of%20Delhi.pdf
15. National Family Health Survey (NFHS-5). (2021). *Punjab.* Retrieved from https://rchiips.org/nfhs/NFHS-5Reports/Punjab.pdf
16. National Family Health Survey (NFHS-5). (2021). *Rajasthan.* Retrieved from https://rchiips.org/nfhs/NFHS-5Reports/Rajasthan.pdf
17. National Family Health Survey (NFHS-5). (2021). *Uttar Pradesh.* Retrieved from https://rchiips.org/nfhs/NFHS-5Reports/Uttar_Pradesh.pdf
18. National Family Health Survey (NFHS-5). (2021). *Uttarakhand.* Retrieved from https://rchiips.org/nfhs/NFHS-5Reports/Uttarakhand.pdf
19. Nundy, N. (2022). The need for supporting women in a post-Covid world. Retrieved from https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/voices/the-need-for-supporting-women-in-a-post-covid-world/
20. Nyahunda, L., Chibvura, S., &Tirivangasi, M. H. (2021). Social Work Practice: Accounting for Double Injustices Experienced by Women under the Confluence of Covid‑19 Pandemic and Climate Change Impacts in Nyanga, Zimbabwe, *Journal of Human Rights and Social Work, 6*, 212-224.
21. Omari, K. (2010). *Gender and Climate change: Botswana Case Study.* Cape Town: Heinrich Böll Foundation Southern Africa.
22. Pearse, R. (2017). Gender and climate change. *WIREs Clim Change, 8,* e451.
23. Policy Brief Population Foundation of India. (2020). The Impact of Covid-19 On Women Retrieved from https://populationfoundation.in/wp-content/uploads/2020/07/Policy-Brief_Impact-of-COVID-19-on-Women.pdf
24. Sanaul M., & Mondal, H. (2014). Women's vulnerabilities due to the impact of climate change: case from Satkhira Region of Bangladesh. *Glob J Human-Soc Sci 14,* 46–52
25. Sultana, F. (2018). Gender and Water in a Changing Climate: Challenges and Opportunities. In C. Fröhlich et al. (eds.), *Water Security Across the Gender Divide (pp. 17-33*). New York: Springer. DOI 10.1007/978-3-319-64046-4_2
26. The World Bank (2019) Gender-Based Violence (Violence Against Women and Girls). Retrieved from https:// www.worldbank.org/en/topic/socialsustainability/brief/violence-against-women-and-girls
27. Triantafyllou, V. (2019). Johan Bellamy Foster on the 'Green new deal'. Retrieved from https://climateandcapitalism.com/2019/02/12/john-bellamy-foster-on-the-green-new
28. United Nations Women Report. (2021). Retrieved from https://www.unwomen.org/en/digital-library/annual-report

‘घर को याद किया दिनभर’ की मर्म-स्पर्शिता

(पुस्तक-समीक्षा)

डॉ. सुनील कुमार मानस*

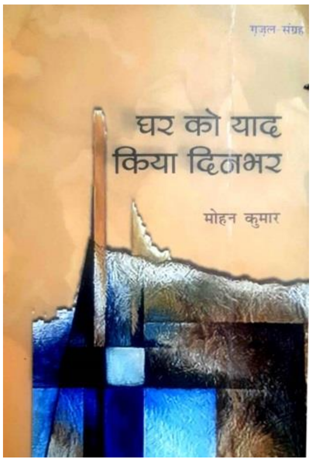

मोहन कुमार जी का पहला गजल संग्रह है ‘घर को याद किया दिनभर’, जो क़लमकार पब्लिशर्स प्रा.लि. नई दिल्ली से 2022 में प्रकाशित हुआ है, यह 120 पृष्ठों में विभक्त पुस्तक है। मोहनजी काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रो. वशिष्ठ अनूप सर के निर्देशन में शोधरत विद्यार्थी हैं। वह बहुत ही नेक–दिल एवं प्रतिभावान रचनाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिनके मनो–मस्तिष्क में चिंतन एवं विचारधारा की प्रज्वलित आग है। उनके इस ग़ज़ल संग्रह में 98 गजले संग्रहीत हैं साथ ही प्रो. वशिष्ठ अनूप सर का ‘जीवन राग की कविताएं’ एवं रचनाकार का ‘आत्म निवेदन’ शीर्षक से दो अध्याय और हैं। इस तरह से शीर्षक की दृष्टि से कुल 100 भागों में विभक्त यह गजल संग्रह अपनी सतकीय पारी पूर्ण करता है। उनकी जो गजलें हैं वे उनके जीवनानुभव के बनते, बिगड़ते एवं सॅवरते रूप–अपरूप का अंतर्जाल है। प्रेम की रागात्मकता में डूबा हुआ उनका मन कभी तैरता है तो कभी डुबकी लगाता है। कभी आकाश की अनंतता में उड़ता है तो कभी धरातल की रमणीयता में विश्राम पाता है। कभी कल्पना की उड़ाने भरता है तो कभी यथार्थ के अवलंबन से टकराता भी है। कभी स्थूल भावों की ओर आकर्षित होता है तो कभी सूक्ष्म भावों का निरूपण करता हुआ नजर आता है।

इन सब बातों में महत्वपूर्ण है कि इसमें युवा चेतस मन का प्रेम है, जीवन का यथार्थ है, मानवीय संवेदनाएं हैं, जीवन–राग के प्रति अपनत्व का भाव है, विराग के अनमयस्क (अचेतन) मन का अंतरिम सच भी है। स्वयं गजलकार ने लिखा है कि– ‘मैंने वही लिखा है, जो जिंदगी जीते हुए मैंने महसूस किया है। इसमें कहीं कोई बनावटीपन या चलाकी नहीं है।’ प्रो. वशिष्ठ अनूप भी लिखते हैं कि– मोहन कुमार एक प्रतिभाशाली और दृष्टिसंपन्न कवि हैं। वह नौजवान है, अध्ययनशील हैं तथा जागरुक है। इसलिए समय और समाज की हरकतों और हलचलों पर उनकी नज़र है। उनकी रचनाओं में हमारा समय धड़कता और बोलता है। इसमें एक तरफ राग–द्वेष, ईर्ष्या, नफरत, अलगाव, बिखराव और क्षोभ है तो दूसरी तरफ प्रेम, विश्वास, उम्मीद बदलाव का भाव और जुझारूपन भी है।’ इस संग्रह की कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं–

धीरे–धीरे जब हर चीज छूट जाती है।
फिर जो बचता है, जिंदगी कहलाती है।। (पृ–25)

फिर उसी की याद कर रहा हूं।
वक्त अपना बर्बाद कर रहा हूं।। (पृ–49)

दिल पर तेरी यादों की हुकूमत आज भी है।
मुझको तेरी मोहब्बत की ज़रूरत आज भी है।।(पृ–97)

जिंदगी को जीने का हुनर देता हूं।
जब मैं खुद को तुम्हारी ख़बर देता हूं।। (पृ–112)

वार करना है तो सीने पर कर।
इधर–उधर का बहाना बहुत हुआ।। (पृ–119)

जीतने की शर्त है ‘खूब झूठ बोलना’।
मुझे सच बोलना है और हार जाना है।। (पृ–120)

इस तरह से उनकी गजलों में प्रेम की भावनात्मक–संवेदना और समाज की संवेदनात्मक–भावना, एक–दूसरे से होड़ करती हुई– नजर आती है, दर्शन का एक नया अध्याय जोड़ती है कि– जैसा आप कहते हैं वैसा ही नहीं है/मेरी नजरों से देखो जो कहा हूं सही है। मोहनजी सच्चे सृजन–धर्म में तल्लीन एक होनहार गजलकार की भूमिका में रत हैं। निश्चित रूप से आने वाले समय में वह अपनी प्रतिभा से अपना और गजल नाम रोशन करेंगे। उन्हें इस गजल संग्रह के लिए बहुत–बहुत बधाई एवं शुभकामनाएं।

***अध्यक्ष : हिंदी विभाग, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)**

अयोध्या में प्रभु श्रीराम के बाल-रूप की प्राण-प्रतिष्ठा

(22 जनवरी, 2024)

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू।।
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।।

राम हमारी आत्मा हैं, हमारे प्राणतत्व हैं, जो हमेशा से हमें सत्-कार्य करने की प्रेरणात्मक ऊर्जा प्रदान करते रहे हैं, और करते रहेंगे। राम स्वयं- राम की महिमा से अभिभूत हुए हैं और महिमामंडित भी। किन्तु यह भी जानना चाहिए कि दशरथ पुत्र राम से बहुत पहले 'राम नाम के चिंतनधारा' की एक महान साधनात्मक परम्परा रही है। भगवान शिव भी इसी राम-नाम के परम भक्त रहे हैं, और हैं। कबीर आदि संतों में भी- राम के इसी भाव का गुणगान है। तुलसी के राम भी- इसी राम-नाम के मूल स्वरूप हैं।

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी।।

- डॉ. सुनील कुमार मानस

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर,
उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com